वर्ष : 44
अंक : 3

जुलाई - सितंबर 2023

मूल्य 200 रुपए
ISSN 2582-4481

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

सुभाष चंद्र बोस

विशेषांक

IndianOil

The name that's changed the way India sees Energy

IndianOil... Proud to be the Energy of India

From fuelling dreams to energizing the vision of *Aatmanirbar Bharat*, IndianOil symbolizes the essence of **Pehle Indian, Phir Oil**... in every way for over six decades now. As India's diversified energy major, the Corporation strives to optimize value for all its stakeholders, successfully tap opportunities focused on the future and spearhead sustainable energy innovation across industries.

₹ 200/-

अतिथि संपादक
श्री प्रदीप देसवाल

संपादक मंडल
श्री रामबहादुर राय
श्री अच्युतानंद मिश्र
श्री बलबीर पुंज
श्री अतुल जैन
डॉ. भारत दहिया
श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

वर्ष : 44, अंक : 3 जुलाई–सितंबर 2023

सुभाष चंद्र बोस विशेषांक

संपादक
डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

प्रबंध संपादक
श्री अरविंद सिंह
+91-9868550000
me.arvindsingh@manthandigital.com

सज्जा
श्री नितिन पंवार
nitin_panwar@yahoo.in

मुद्रण
ओसियन ट्रेडिंग को.
132, पटपड़गंज औद्योगिक क्षेत्र,
दिल्ली-110092

प्रकाशक
एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान
एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002
दूरभाष : 011–23210074; ईमेलः info@manthandigital.com
Website: www.manthandigital.com

अनुक्रम

1.	लेखकों का परिचय		03
2.	संपादकीय		04
3.	अतिथि संपादकीय		05
4.	नेताजी का संघर्ष पथ : अज्ञात में बड़ी छलाँग	राम बहादुर राय	16
5.	आजाद हिंद फौज का मुकदमा	डॉ. हरवंश दीक्षित	24
6.	एक योद्धा की तीर्थयात्रा: आध्यात्मिक व्यक्तित्व	डॉ. चंद्रपाल सिंह	28
7.	नेताजी सुभाष चंद्र बोस और सशस्त्र प्रतिकार	डॉ. चंदन कुमार	37
8.	नेताजी की दृष्टि में स्वतंत्र भारत	दीपेश चतुर्वेदी	42
9.	नेताजी सुभाष और महात्मा गांधी	प्रदीप देसवाल	48
10.	नेताजी और सावरकर	अंबरीष पुंडलीक	65
11.	सुभाष और श्यामा प्रसाद - एक चिंतन	डॉ. अनिर्बान गांगुली	69

आनुषंगिक आलेख

1.	मोदी सरकार की पहल		22
2.	आजादी के संघर्ष में गांधीजी का योगदान	नेताजी सुभाष चंद्र बोस	62
3.	नेताजी का सैन्याभियान	विनायक दामोदर सावरकर	73

देश के लिए किसी का मर जाना आसान है, कठिन तो जीना है।
- नेताजी सुभाष चंद्र बोस

लेखकों का परिचय

रामबहादुर राय पद्मश्री से सम्मानित। हिंदुस्तान समाचार के समूह संपादक और इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के अध्यक्ष। लोकनायक जयप्रकाश नारायण के साथ आपातकाल विरोधी आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।
संपर्क : rbrai118@gmail.com

डॉ. हरवंश दीक्षित काशी हिंदू विश्वविद्यालय से विधि में पी-एच.डी. के बाद कई विश्वविद्यालयों में अध्यापन कार्य। बतौर विधि शिक्षक कई क्षमताओं में लगभग तीन दशक का अनुभव। मुरादाबाद स्थित महाराजा हरिश्चंद्र पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज और के.जी.के. पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज के प्राचार्य के तौर पर कार्य, एम.जे.पी. रुहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली के विधि संकाय के अधिष्ठाता और उत्तर प्रदेश उच्चतर शिक्षा सेवा आयोग के पूर्व सदस्य के रूप में कार्य। फिलहाल मुरादाबाद स्थित तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय के विधि संकाय के अधिष्ठाता के रूप में कार्यरत।

डॉ. चंद्रपाल सिंह दिल्ली विश्वविद्यालय के पीजीडीएवी कॉलेज में इतिहास के शिक्षक। 'भगत सिंह रीविजिटेड: हिस्ट्रियोग्राफी, बायोग्राफी ऐंड आइडियोलॉजी ऑफ द ग्रेट मार्टायर' (2011) तथा 'नेशनल एजुकेशन मूवमेंट: अ सागा फॉर क्वेस्ट फॉर आल्टरनेटिव्ज टु कोलोनियल एजुकेशन' (2012) प्रकाशित। आपकी शोधरुचियों में क्रांतिकारी आंदोलन और शिक्षा के इतिहास के अलावा भारतीय संविधान का उद्‌गम एवं निर्माण तथा जनगणना अध्ययन भी समाविष्ट हैं।

डॉ. चंदन कुमार दिल्ली विश्वविद्यालय के जाकिर हुसैन दिल्ली कॉलेज (संध्या) में राजनीति विज्ञान विभाग में प्राध्यापक हैं। इनको दिल्ली विश्वविद्यालय से एम फिल और पीएचडी की उपाधि मिली है और इन्होंने सात से अधिक लेखों के अलावा तीन पुस्तकों में भी अध्याय लिखे हैं।

दीपेश चतुर्वेदी हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय में इतिहास के शोधछात्र हैं। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से इतिहास में स्नातकोत्तर अध्ययन किया है। उनकी विशेषज्ञता का मूल क्षेत्र प्राचीन इतिहास है। उन्होंने जेआरएफ अर्हता प्राप्त करने के बाद दिल्ली विश्वविद्यालय के कई एनसीडब्ल्यूईबी केंद्रों में अध्यापन कार्य भी किया है। अनुसंधान की दृष्टि से उनकी रुचि के क्षेत्र हैं बौद्धिक इतिहास, संस्कृति, पुरातत्व और धर्म।

प्रदीप देसवाल पेशे से इंजीनियर हैं और दिल्ली के द्वारका उपनगर में स्थित प्रतिष्ठित नेताजी सुभाष प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय में कार्यपालक अभियंता के पद पर तैनात हैं। वे भारत के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास, विशेष रूप से क्रांतिकारी आंदोलन, में गहन रुचि रखते हैं। 'राष्ट्र वंदना' के नाम से यूट्यूब चैनल भी चलाते हैं जहाँ भारत के स्वतंत्रता संग्राम पर प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध कराते हैं। भगत सिंह सहित अनेक क्रांतिकारियों पर सैकड़ों वीडियो बनाए हैं। वर्तमान में नेताजी सुभाष की गौरव गाथा पर वीडियोशृंखला चल रही है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रवादी कविताएँ लिखते हैं जिन्हें मंचों पर भी खूब सराहा जाता है।

अंबरीष पुंडलीक महाराष्ट्र स्टेट पावर जेनरेशन कंपनी में कार्यकारी अभियंता। नेताजी सुभाष चंद्र बोस पर लंबे समय से अध्ययनरत। मराठी में नेताजी की जीवनी पर आधारित 'सुभाष बावनी' प्रकाशित।

डॉ. अनिर्बान गांगुली संप्रति श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन के निदेशक हैं। जादवपुर विश्वविद्यालय से शिक्षा नीति पर पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त डॉ. गांगुली की प्रमुख कृतियाँ हैं -डिबेटिंग कल्चर : एजूकेशन, फिलॉसफी ऐंड प्रेक्टिस, स्वामी विवेकानंद, बुद्ध ऐंड बुद्धिज्म तथा द मोदी डॉक्ट्रीन: रीडिफाइनिंग गवर्नेंस।

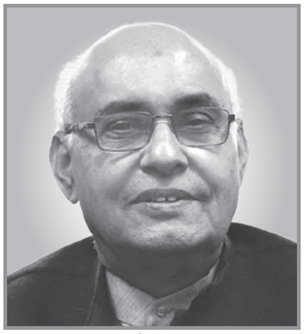

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

संपादकीय

नेताजी सुभाष चंद्र बोस भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अद्‌भुत नायक हैं। स्वातंत्र्य समर का सशस्त्र प्रतिकार ही भारत की आजादी का निर्णायक कारण बना। आजाद हिंद फौज का युद्ध तथा भारत की जल, थल एवं नभ सेना में आई नव-जागृति जब विद्रोह के रूप में प्रकट हो रही थी। भारत का जन भी इन बलिदानी रणबाँकुरों का बहुत आशा, उत्साह एवं श्रद्धा से स्वागत कर रहा था। द्वितीय महायुद्ध में जर्जरित हुआ ब्रिटिश साम्राज्य अब इन स्थितियों को सँभालने में सक्षम नहीं था। अत: उसने स्वाभाविक रूप से भारत में संवैधानिक सुधारों के नाम पर चलने वाले प्रयत्नों का साथ दे रहे सार्वजनिक आंदोलनकारियों के समक्ष, भारतीय स्वातंत्र्य का प्रस्ताव रख दिया। इस दौर में भी वह अपनी रणनीति को भूला नहीं उसने भारत को विभक्त कर दिया तथा सत्ताकांक्षी भारत के नेतृत्व ने उसे स्वीकार कर लिया। इस आजादी एवं विभाजन के कारण उत्पन्न संरचना वह नहीं थी, जिसकी सशस्त्र बलिदानी रणबांकुरों ने कल्पना की थी। कांग्रेस का भी आम कार्यकर्ता इन बलिदानी प्रयत्नों के साथ था, लेकिन नेतृत्व की दिशा भिन्न थी। नेताजी सुभाष चंद्र बोस की कहानी इस व्यापक इतिहास की एक लोमहर्षक घटना है। आने वाली पीढ़ियों को उसे समुचित रूप से जानना चाहिए, इसीलिए इस विशेषांक का संयोजन हुआ है।

इस विशेषांक के लिए हमें श्री प्रदीप देसवाल जैसे प्रखर अध्येता अतिथि संपादक के रूप में प्राप्त हुए। भारत के क्रांतिकारी आंदोलन के वे सुधी संशोधक हैं। इनके यू-टूब विडियोज ने इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया है। पिछले अंक सरदार भगत सिंह विशेषांक में भी इनकी सार्थक सहभागिता रही थी। पिछले अंक में अतिथि संपादक डॉ. चंद्रपाल सिंह जी भी इस अंक के साथ बहुत गहराई से जुड़े रहे। यह अंक इन दोनों वरिष्ठों के मार्गदर्शन में सुसज्ज हो सका है। मैं इनका हृदयपूर्वक आभार व्यक्त करता हूँ।

वर्ष 2023 का यह आखिरी अंक है। अगले वर्ष पुन: नई विचार शृंखला के साथ चार अंकों का संपादन होगा। अगला अंक अशफाक उल्ला खान विशेषांक होगा। शुभम्।

डॉ. महेश चन्द्र शर्मा
mahesh.chandra.sharma@live.com

अतिथि संपादकीय

प्रदीप देसवाल

आजादी के असली सूत्रधारः आजाद हिंद सरकार और आजाद हिंद फौज

वर्ष 1997 में भारत स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती और नेताजी सुभाष की जन्म शताब्दी मना रहा था। तब दिल्ली के लालकिले में तीन दिवसीय सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन हुआ जिनमें विश्व भर से आए सैंकड़ों आजाद हिंद फौज के पूर्व सैनिकों ने भाग लिया। उनके रहने की व्यवस्था दिल्ली छावनी में थी। मुझे भी आजादी के उन वीर योद्धाओं के सानिध्य का अवसर मिला। एक बार देर शाम उनके बीच बैठा उनके किस्से सुनकर आनंदित हो रहा था। जिस चारपाई पर मैं बैठा था, उसके साथ वाली चारपाई पर पाकिस्तान से आया एक पूर्व सैनिक लेटा था जिसका स्वास्थ्य कुछ अच्छा नहीं था, इसलिए कम ही बोलता था। बाकी 8-10 साथी इकट्ठे बैठकर पूरे जोश से बीते दिनों की कहानियाँ सुना रहे थे। तभी अचानक वह वृद्ध सैनिक उठा और फफक-फफक कर रोते हुए बोला - "बेटा, सौ बातों की एक बात यह है, यदि नेताजी होते तो बँटवारा नहीं होता और हमें अपना वतन नहीं छोड़ना पड़ता।" कितने लोगों को बँटवारे का वह दर्द सहना पड़ा था। सोचता हूँ कि क्या सच में नेताजी होते तो बँटवारा नहीं होता? इसका निश्चित उत्तर तो नहीं जानता पर नेताजी की आजाद हिंद सरकार और आजाद हिंद फौज ने भारत की स्वतंत्रता की राह की सभी रुकावटें अवश्य हटा दी थीं।

नेताजी के हाथ में इंडियन इंडिपेंडेंस लीग की कमान

9 फरवरी, 1943 को नेताजी सुभाष आबिद हसन के साथ जर्मन पनडुब्बी द्वारा पूर्वी एशिया के लिए निकले। 28 अप्रैल को मेडागास्कर के निकट महासागर में उठती ऊँची लहरों के बीच वे जर्मन पनडुब्बी से उतरकर रबड़ की डिंगी में बैठ जापानी पनडुब्बी में सवार हुए[1] और 6 मई को उत्तरी इंडोनेशिया के सबांग बंदरगाह पर सुरक्षित पहुँच गए। वहाँ से नेताजी जापान गए। 16 जून, 1943 को जापानी संसद में, नेताजी की उपस्थिति में, प्रधानमंत्री तोजो ने भारत की स्वतंत्रता के लिए हर संभव सहायता का वचन दिया।

2 जुलाई, 1943 को नेताजी सुभाष रासबिहारी बोस व आबिद हसन के साथ सिंगापुर पहुँचे। 4 जुलाई को सिंगापुर के मशहूर कैथे थिएटर में इंडियन इंडिपेंडेंस लीग के प्रतिनिधियों की बैठक हुई। थिएटर के अंदर और बाहर जबरदस्त भीड़ थी। वयोवृद्ध क्रांतिकारी रास बिहारी बोस ने इंडियन इंडिपेंडेंस लीग का नेतृत्व नेताजी के जवान व मजबूत कंधों पर डालते हुए कहा - "मैं आपके लिए यह तोहफा लाया हूँ।"[2] हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा था।

नेताजी ने हिंदुस्तानी में बोलते हुए कहा - "हम लालकिले, दिल्ली में जाकर विजयी परेड करेंगे। हमें अपना खून बहाना है, हमें कुर्बानी देनी है, सब रुकावटों का सामना करना है। हमारे रास्ते में आएँगी भूख, प्यास, तकलीफें, मुसीबतें। कोई नहीं कह सकता है जो लोग इस जंग में शरीक होंगे उनमें से कितने लोग निकलेंगे जिंदा होकर। कोई बात नहीं है। हम जिंदा रहेंगे या तो मरेंगे कोई बात नहीं है। बात तो ये है, सही बात ये है आम

बात ये है आखिर में हमारी कामयाबी होगी, हिंदुस्तान आजाद होगा।"[3]

नेताजी के एक एक शब्द पर तालियाँ बज रही थीं और इंकलाब जिंदाबाद के नारे गूँज रहे थे। 5 जुलाई को नेताजी ने इंडियन नेशनल आर्मी को संबोधित किया। सिंगापुर की म्युनिसिपल बिल्डिंग के सामने मैदान में एक ऊँचे प्लेटफार्म पर सैन्य वर्दी में नेताजी खड़े थे और 12000 जवान उनको सुनने के लिए बेताब थे। नेताजी ने INA के जवानों को **'चलो दिल्ली! चलो दिल्ली!'** का नारा देते हुए आह्वान किया - "अपनी ताकत और अपने खून की कीमत देकर आपको अपनी आजादी पानी है।"[4] उन्होंने कहा - "मैं हर अँधेरे में, उजाले में, दु:ख में, खुशी में, तकलीफ में, जीत में, सदा तुम्हारे साथ रहूंगा।"[5]

9 जुलाई 1942 को सिंगापुर में एक विशाल जनसभा को सम्बोधित करते हुए नेताजी ने कहा - "यदि देश में रहकर आंदोलन चलाने से ही देश आजाद हो सकता तो मैं यह अनावश्यक खतरा उठाने की मूर्खता नहीं करता।"[6] उस दिन उन्होंने रानी झाँसी रेजिमेंट बनाने की बात भी कही थी।"[7] यह कल्पना अपने समय से 50 वर्ष आगे की थी पर वे इसे भी साकार करने वाले थे। 25 अगस्त, 1943 को नेताजी ने इंडियन नेशनल आर्मी के सुप्रीम कमांडर के रूप में कार्यभार संभाला और इसका नाम बदल कर 'आजाद हिंद फौज' कर दिया।[8] ले. कर्नल जे के भोंसले, जो बाद में मेजर जनरल बने, को चीफ ऑफ स्टाफ नियुक्त किया गया।

नेताजी ने आजाद हिंद फौज में ब्रिटिश इंडियन आर्मी के जाति आधारित रेजिमेंट सिस्टम को खत्म कर दिया था। सभी धर्मों के सैनिकों को एकता के सूत्र में बाँधने के लिए कई क्रांतिकारी बदलाव किए गए। पूर्व में चली आ रही हिंदू और मुसलमानों की अलग-अलग रसोइयों को बंद करके सबके लिए सांझी रसोई चलाई गई जहाँ हिंदू, मुसलमान, ईसाई आदि एक साथ बैठ कर खाते थे। सभी धर्मों के त्योहारों को सब मिलजुल कर मनाने लगे थे।[9]

भाषा की जटिलता और विवाद को मिटाने के लिए भारत के अधिकांश क्षेत्रों में समझी जाने वाली हिंदुस्तानी को बढ़ावा दिया गया जो हिंदी और उर्दू का मिला जुला रूप था। इसे रोमन लिपि में लिखा जाता था। विशेष रूप से सैनिकों के लिए दो अखबार निकाले गए, अंग्रेजी में 'वॉइस ऑफ इंडिया' और हिंदुस्तानी में 'आवाजे-हिंद'।[10] सुप्रीम कमांडर के रूप में नेताजी सैनिकों के प्रशिक्षण में बहुत रुचि लेते थे और बैरकों में जाकर सैनिकों को मिलने वाली सुविधाओं का स्वयं निरीक्षण करते थे। उन्हें मिलने वाले भोजन को स्वयं चखते थे।[11]

नेताजी चाहते थे कि तीन लाख सैनिकों की फौज तैयार हो लेकिन जापानी केवल 30000 सैनिकों को हथियार और केवल 50000 के लिए राशन देने को तैयार थे।[12] नेताजी के आह्वान पर दक्षिण-पूर्वी देशों में बसे बहुत से भारतीय अपने काम-धंधे छोड़कर आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए थे। लक्ष्मी स्वामीनाथन ने, जो एक डॉक्टर थी, स्टैथोस्कोप छोड़कर बंदूक उठा ली थी। रानी झाँसी रेजिमेंट की कमान उन्हीं को सौंपी गई थी।

आजाद हिंद सरकार का गठन

फिर आया 21 अक्टूबर 1943 का दिन जो भारत के इतिहास में कभी न भुलाने वाला दिन था। उस दिन नेताजी ने सिंगापुर के कैथे थिएटर में प्रोविजनल गवर्नमेंट ऑफ आजाद हिंद यानी 'आरजी हकूमत-ए-आजाद हिंद' और साधारण शब्दों में कहें तो 'आजाद हिंद सरकार' के गठन की घोषणा की। यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटना थी। तालियों की गड़गड़ाहट से हॉल गूँज उठा था। नेताजी ने भारत के लिए सत्यनिष्ठा की शपथ ली - "भारत और अपने 38 करोड़ देशवासियों को स्वतंत्र करवाने के लिए मैं, सुभाष चंद्र बोस, ईश्वर को साक्षी मानकर यह शपथ लेता हूँ कि आजादी के पावन संघर्ष को अंतिम साँस तक जारी रखूँगा"। शपथ को पढ़ते-पढ़ते नेताजी एक से अधिक बार भावुक हो गए थे। उनके बाद उनकी कैबिनेट के प्रत्येक सदस्य ने यह शपथ ली।

आजाद हिंद सरकार की कैबिनेट में शामिल थे -

1. नेताजी सुभाष चंद्र बोस राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री थे। इसके अतिरिक्त उनके पास युद्ध मंत्री व विदेश मंत्री का प्रभार भी था।
2. ले. कर्नल ए सी चटर्जी वित्त मंत्री;
3. कैप्टन लक्ष्मी स्वामीनाथन महिला मामलों की मंत्री;
4. एस ए अय्यर प्रचार मंत्री;

सैन्य बलों के प्रतिनिधि के रूप में:

5. ले. कर्नल एन एस भगत;
6. लेफ्टिनेंट कर्नल जे के भोंसले;
7. ले. कर्नल गुलजारा सिंह;
8. कर्नल एम जेड कियानी;
9. ले. कर्नल ए डी लोगनाथन;
10. ले. कर्नल एहसान कादिर;
11. ले. कर्नल शाहनवाज खान;
12. आनंद मोहन सहाय, सचिव जिन्हें मंत्री का दर्जा प्राप्त था;
13. रास बिहारी बोस, प्रमुख सलाहकार;
14. अन्य सलाहकार - करीम गनी, देबनाथ दास, डी एम खान, वाई येल्लपा, जॉन थीवी, सरदार ईशर सिंह थे।
15. ए एन सरकार, कानूनी सलाहकार।

शीघ्र ही आजाद हिंद सरकार को जर्मनी, इटली, जापान, मलाया, सिंगापुर, फिलीपींस सहित 9 देशों ने मान्यता दे दी थी। 'जयहिंद' को राष्ट्रीय अभिवादन के रूप में स्वीकार किया गया और 'जन गण मन' के हिंदी रूप को राष्ट्रगान के रूप में स्वीकार किया गया जिसका पहला अंतरा इस प्रकार था -

शुभ सुख चैन की बरखा बरसे,
भारत भाग है जागा
पंजाब, सिंध, गुजरात, मराठा,
द्राविड़, उत्कल, बंगा
चंचल सागर, विंध्य, हिमालय,
नीला यमुना गंगा
तेरे नित गुण गाएँ, तुझसे जीवन पाएँ
सब तन पाएँ आशा
सूरज बनकर जग पर चमके, भारत नाम सुभागा,
जय हो! जय हो! जय हो! जय जय जय जय हो!

इस गीत तैयार करने वाले हुसैन नामक युवा को नेताजी ने 10000 डॉलर का इनाम दिया था।[13] बिना चरखे का तिरंगा राष्ट्रीय ध्वज के रूप में स्वीकार किया गया। आजाद हिंद सरकार की घोषणा में प्रत्येक नागरिक के लिए धार्मिक स्वतंत्रता, समान अधिकार व समान अवसरों की गारंटी दी गई थी।[14] दक्षिण-पूर्व एशिया में रहने वाले भारतीयों को आजाद हिंद सरकार के प्रति सत्यनिष्ठा की शपथ लेने के लिए आमंत्रित किया गया। जून 1944 तक अकेले मलाया में ही दो लाख तीस हजार भारतीय यह शपथ ले चुके थे।[15]

सेना में अलग-अलग रैंक के सैनिकों और अधिकारियों के वेतन बढ़ोतरी की गई। उदाहरण के लिए वेतनमान इस प्रकार थे[16]:

रैंक	मलाया	बर्मा
सिपाही	26 डॉलर	30 डॉलर
हवलदार	40 डॉलर	50 डॉलर
कैप्टन	100 डॉलर	120 डॉलर
कर्नल	280 डॉलर	300 डॉलर
मेजर जनरल	380 डॉलर	420 डॉलर

पेंशन की व्यवस्था भी की गई। सिपाही के लिए न्यूनतम पेंशन 20 रुपए मासिक थी। यह निर्णय भी लिया गया कि न केवल आजाद हिंद के शहीदों और नायकों के लिए नहीं बल्कि भारत में स्वतंत्रता संग्राम में बलिदान देने वाले सभी शहीदों के परिजनों को भी पेंशन दी जाएगी।[17] सिंगापुर के टैंक रोड़ स्थित चेट्टियार मंदिर के गर्भ गृह में नेताजी के साथ आजाद हिंद फौज के हिंदू, मुस्लिम, सिख और ईसाई अधिकारियों का प्रवेश और सबके मस्तक पर पुजारी द्वारा तिलक लगाना व प्रसाद देना ऐतिहासिक घटना थी जिसने सेना और सामान्य भारतीय नागरिकों में धार्मिक सद्भावना का अनोखा संदेश दिया था।[18] इसी तरह सभी धर्मों के पूजा स्थलों पर सभी धर्मों के अधिकारी मिल-जुल कर जाते थे।

नवंबर 1943 में टोक्यो में हुई ग्रेटर ईस्ट एशिया कॉन्फ्रेंस में नेताजी ने पर्यवेक्षक के रूप में भाग लिया। इस अवसर पर जापान के प्रधानमंत्री तोजो ने अपने भाषण में कह दिया कि स्वतंत्र भारत में नेताजी सर्वेसर्वा होंगे। नेताजी तुरंत खड़े हुए और तोजो के कथन पर आपत्ति करते हुए बोले कि जनरल तोजो को यह कहने का अधिकार नहीं है कि भारत में कौन क्या होगा, इसका निर्णय केवल भारत की जनता लेगी। नेताजी ने स्वयं को भारत का साधारण सेवक बताया था।[19] नेताजी सेना के सशक्तिकरण के लिए जी जान से लगे थे। उन्होंने टोक्यो में जापानी सेना प्रमुख सुगियामा से भेंट की और आजाद हिंद फौज की थल सेना के अनुरूप ही जल सेना व वायु सेना के गठन के लिए उपकरणों की मांग की। वे भारत के सम्मान व प्रतिष्ठा से समझौता करने के लिए कतई तैयार नहीं थे। इसलिए जापानी सहयोग को उपहार नहीं बल्कि ऋण के रूप में माँग रहे थे जो भारत की स्वतंत्रता के बाद लौटा देना था।[20]

सरकार व सेना के लिए धन की व्यवस्था

आजाद हिंद सरकार और आजाद हिंद फौज के संचालन के लिए करोड़ों रुपयों की आवश्यकता थी। नेताजी जानते थे कि धन जापान दे देगा लेकिन भारत के सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए आवश्यक था कि पूर्वी एशिया में बसे भारतीय अधिक से अधिक सहयोग दें। इसके लिए वित्त मंत्रालय के अंतर्गत एक बोर्ड ऑफ मैनेजमेंट का गठन किया गया। इस बोर्ड का कार्य पूर्वी एशिया में बसे भारतीयों से दान लेना, दान में मिली चल-अचल संपत्तियों का निपटारा करना तो था ही, इसके अतिरिक्त बचत खाता जमा पत्र भी जारी करने थे जो युद्ध की समाप्ति के तीन वर्ष के भीतर जमाकर्ता को देय थे।[21]

नेताजी ने भारतीयों से खुले दिल से आजाद हिंद सरकार के लिए दान देने की अपील की। गरीब मजदूर अपना सब कुछ न्योछावर करने के लिए बड़ी संख्या में आगे आ रहे थे। एक गरीब महिला जिसके पास सिर ढंकने के लिए भी कपड़ा नहीं था, नेताजी को तीन रुपए देने लगी। नेताजी की आँखों से मोटे-मोटे आँसू बरसने लगे। उन्होंने वे तीन रुपए ले लिए। बाद में नेताजी ने कहा था - "मैं जानता था कि वे तीन रुपए ही उसकी कुल संपत्ति थे और यदि वह भी मैंने ले ली तो उसे बहुत परेशानियां होंगी। लेकिन जब मैंने उसकी भावना के बारे में सोचा, वह अपना सर्वस्व भारत की स्वतंत्रता के लिए देना चाहती थी, मुझे लगा यदि मैंने मना किया तो उसकी भावना आहत होगी, मैंने वे रुपए ले लिए। उन तीन रुपयों का महत्व उन लाखों रुपयों से अधिक था जो करोड़पतियों ने दिए थे।"[22]

जब भी नेताजी मंच पर आकर लोगों से भारत की आजादी के संघर्ष के लिए दान करने की अपील करते, उनको बहुत सारी फूलों की मालाएँ पहनाई जाती और फिर वे मालाएँ नीलाम की जाती। एक एक माला 1 लाख रुपए से लेकर 5 लाख रुपए तक में नीलाम होती।[23] रंगून के रहने वाले हबीब ने अपनी सारी संपत्ति दान कर दी थी जिसका मूल्य लगभग 1 करोड़ रुपए था। नेताजी ने उन्हें 'सेवक-ए-हिंद' का सम्मान दिया। हबीब ने नेताजी से इसके बदले दो चीजें माँगी थीं - पहनने के लिए एक खाकी वर्दी और अपना पूरा समय भारत की आजादी के लिए समर्पित करने के लिए कोई भी काम।[24] अकेले बर्मा में रहने वाले भारतीयों ने ही नेताजी के आह्वान पर 25 करोड़ दान दिए थे।[25] लेकिन कुछ धनी भारतीयों की कंजूसी से नेताजी बहुत निराश भी हुए थे।

17 अक्तूबर, 1943 को नेताजी ने कहा - "मैं एक या दो सप्ताह और इंतजार करूंगा और देखूँगा और भारत के लिए जो भी कदम उठाने आवश्यक होंगे वो उठाऊँगा।"[26] 25

अक्तूबर को नेताजी के शब्द बेहद कठोर थे। उन्होंने कहा - "यदि कानून की बात करें तो जब कोई राष्ट्र युद्ध लड़ रहा होता है तब कोई संपत्ति व्यक्तिगत नहीं होती। यदि आपको लगता है कि आपकी दौलत व संपत्ति आपकी अपनी है तो आप भ्रम में हैं। आपका जीवन और आपकी संपत्ति आपकी अपनी नहीं हैं, वे सब भारत की हैं, केवल भारत की। यदि आप यह साधारण सत्य भी नहीं समझना चाहते हैं तो फिर आपके लिए हमने दूसरा रास्ता तय किया है - वह रास्ता जो अंग्रेजों के लिए चुना गया। उनके लिए यहाँ केवल एक स्थान है और वह है जेल। यदि आप भी चाहें तो आप भी जेल जा सकते हैं और अंग्रेजों के साथ रह सकते हैं।"[27]

नेताजी की धमकी ने अपना असर दिखा दिया था। धन का संकट दूर हो गया था। नेताजी ने कहा था कि करो सब न्यौछावर बनो सब फकीर। नेताजी के आह्वान पर अनेक लोगों ने न केवल रुपए, सोना-चांदी, घर आदि दान कर दिए थे बल्कि जीवन भी दाँव पर लगा दिया था।

आजाद हिंद सरकार द्वारा ब्रिटेन और अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा

23 अक्टूबर, 1943 की रात को आजाद हिंद सरकार की कैबिनेट की बैठक हुई जिसमें अमेरिका व ब्रिटेन के विरुद्ध युद्ध का निर्णय ले लिया गया और उसी रात इसकी घोषणा कर दी गई। कर्नल ए डी लोगनाथन ने अमेरिका को शामिल करने की आवश्यकता पर प्रश्न पूछा तो नेताजी ने कहा था - "भारत की धरती पर मौजूद अमेरिकी सेनाओं ने ब्रिटेन के विरुद्ध हमारे संघर्ष को बेहद कठिन बना दिया है। आजाद हिंद फौज को भारत की धरती पर ब्रिटिश और अमेरिकी फौजों से एक साथ लड़ना पड़ेगा।"[28]

29 दिसंबर, 1943 को जापान ने अंडमान व निकोबार द्वीप समूह का अधिकार आजाद हिंद सरकार को सौंप दिया। यह ऐतिहासिक क्षण था क्योंकि यह पहली भारतीय सरकार थी जिसका भारत की भूमि के एक हिस्से पर अधिकार था। नेताजी ने जिमखाना मैदान पर तिरंगा फहराया। उन्होंने अंडमान को नया नाम दिया 'शहीद' और निकोबार को 'स्वराज' दिया। ले. कर्नल ए डी लोगनाथन को, जो आगे चलकर मेजर जनरल बने, अंडमान व निकोबार का चीफ कमिश्नर नियुक्त किया। युद्ध की गंभीर स्थिति के चलते उन्हें इन द्वीपों का पूर्ण प्रशासन नहीं मिल पाया था, इसलिए उन्होंने अपना पूरा ध्यान शिक्षा, खाद्यान उत्पादन, हथकरघा, प्रचार, महिला मामले व नागरिक न्याय व्यवस्था पर केंद्रित कर दिया था।[29] नेताजी ने भारतीय और बर्मी लोगों के बीच संबंधों को प्रगाढ़ करने की दृष्टि से बर्मा की सरकार को बर्मी लोगों के कल्याण हेतु पाँच लाख रुपए दान किए थे।[30] चूँकि, आजाद हिंद फौज ब्रिटिश सेना से भारत-बर्मा सीमा पर युद्ध करने जा रही थी, इसलिए आजाद हिंद सरकार का मुख्यालय भी दिसंबर, 1943 के आखिरी दिनों में सिंगापुर से रंगून ले जाया गया ताकि युद्ध प्रबंधन अच्छे से किया जा सके।

रंगून में बेस अस्पताल

ले. कर्नल ए सी अलगप्पन, जो आगे चलकर मेजर जनरल बने, के नेतृत्व में आजाद हिंद फौज का मेडिकल डिपार्टमेंट खड़ा किया गया। रंगून के निकट मयांग में एक बड़ा बेस अस्पताल तैयार किया गया। रानी झाँसी रेजिमेंट के नर्सिज डिवीजन की लड़कियों ने बड़ी ही कुशलता से इस अस्पताल का नर्सिंग विभाग संभाला था। तमाम कठिनाइयों और जापानियों की ओर से अपेक्षित सहयोग में कमी के बावजूद सभी संभव सुविधाओं का इंतजाम किया गया।

आजाद हिंद दल

8 मार्च, 1944 को इम्फाल अभियान शुरू हुआ था। ब्रिटेन से मुक्त हो जाने वाले भारतीय क्षेत्रों का सामान्य प्रशासन संभालने के लिए नेताजी ने बृहद योजना बनाई थी। सिंगापुर स्थित पुनर्निर्माण महाविद्यालय में सिविल अधिकारियों का प्रशिक्षण कार्य चल रहा था। 16 मार्च को नेताजी ने ले. कर्नल ए सी चटर्जी, जो तब तक वित्त मंत्री थे, को स्वतंत्र क्षेत्रों

का मुख्य प्रशासक नियुक्त किया। इस कार्य में सहयोग के लिए 'आजाद हिंद दल' नाम के संगठन का गठन किया गया। जल्दी ही लगभग 70 प्रशासकों को सीमा के लिए रवाना कर दिया गया। इन्हें जो कार्य तुरंत करने थे उनमें शामिल थे - अंग्रेजों से मुक्त भारतीय क्षेत्रों में आवश्यक सेवाओं की बहाली, शरणार्थियों को राहत, भोजन सामग्री की व्यवस्था, कानून व्यवस्था कायम करना और भारत की जनता को सुरक्षा का भरोसा दिलाना।[31]

24 मार्च को रंगून में जापान के सैन्य अधिकारियों के साथ नेताजी की बैठक हुई जिसमें भारतीय क्षेत्रों के लिए आजाद हिंद सरकार व जापानी सैन्य अधिकारियों के संयुक्त श्रमिक व वितरण बोर्ड के गठन पर चर्चा हुई। जापानी चाहते थे कि बोर्ड की अध्यक्षता जापानी करे पर नेताजी किसी भी सूरत में ऐसे प्रस्ताव को मानने के लिए तैयार नहीं थे। इतना ही नहीं नेताजी ने जापानियों को बता दिया था कि भारत की धरती पर जापानी बैंक कार्य नहीं करेंगे बल्कि आजाद हिंद सरकार स्वयं अपने बैंक स्थापित करेगी।[32] 5 अप्रैल, 1944 को बर्मा में नेताजी ने दस लाख रुपयों की पूँजी से 'नेशनल बैंक ऑफ आजाद हिंद' के गठन की घोषणा की। जापानी इस घोषणा से बहुत हैरान थे। बैंक के प्रबंधन के लिए एक बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स का गठन हुआ। डी एन भादुड़ी को बैंक का प्रबंधन सचिव नियुक्त किया गया।[33]

राजस्व विभाग का गठन हुआ जिसके पहले मंत्री बने ए एन सरकार। स्वतंत्र भारत में प्रयोग के लिए आजाद हिंद सरकार ने अपनी करंसी की छपाई शुरू की। 2 आना, 4 आना, 8 आना, 1 रुपया, 5 रुपया और 50 रुपया मूल्य के नोट के डिजाइन नेताजी द्वारा स्वीकृत कर दिए गए।[34] नेताजी की स्वीकृति से दो पाई और एक आना मूल्य के डाक टिकट भी तैयार किए गए।[35] इन डाक टिकटों पर लाल किला छपा था जिस पर तिरंगा फहरा रहा था। सेना के लिए मोर्चे तक राशन, दवा, मच्छरदानी आदि सामान की समुचित सप्लाई सुनिश्चित करने के लिए वितरण विभाग व परिवहन विभाग को चुस्त किया गया। वह ऐसा मुश्किल समय था जब न परिवहन के साधन ही सुलभ थे और न ही राशन, दवा आदि ही पर्याप्त संख्या में उपलब्ध थे।

आजाद हिंद फौज का अभियान

फील्ड मार्शल काउंट तरौची साउथ ईस्ट एशिया में जापानी सेना के चीफ कमांडर थे। उन्होंने नेताजी से कहा कि आजाद हिंद फौज की भूमिका प्रचार तक ही सीमित रहनी चाहिए। नेताजी ने उन्हें साफ-साफ शब्दों में बता दिया कि भारत की भूमि पर अभियान की अगुवाई आईएनए ही करेगी। जापानियों के बलिदान से हासिल हुई आजादी से तो गुलामी अच्छी है।[36] नेताजी ने कहा कि भारत की धरती पर गिरने वाली रक्त की पहली बूँद भारतीय की होगी। तरौची को नेताजी की बात मानने के लिए विवश होना पड़ा।

7 जनवरी 1944 को बर्मा में जापानी सेना के कमांडर इन चीफ जनरल क्वाबे के साथ नेताजी की मीटिंग हुई। नेताजी ने क्वाबे को निम्नलिखित शर्तें मानने के लिए विवश कर दिया था[37]:

1. आजाद हिंद फौज के सैनिकों को केवल भारतीय अधिकारी ही आदेश दे सकेंगे, जापानी नहीं।
2. आजाद हिंद फौज बटालियन से छोटी यूनिट्स में नहीं लड़ेगी।
3. अंग्रेजों से मुक्त कराए गए क्षेत्र नागरिक प्रशासन स्थापित करने के लिए आजाद हिंद सरकार को सौंप दिए जाएँगे।
4. आजाद हिंद फौज जापानी सेना की अधीनस्थ नहीं बल्कि बराबर की सहयोगी सेना होगी।
5. आजाद हिंद फौज पर जापानी सेना कानून नहीं बल्कि इंडियन नेशनल आर्मी एक्ट लागू होगा।
6. यदि कोई भी सैनिक, चाहे वह जापानी ही क्यों न हो, किसी भी महिला के साथ बलात्कार का दोषी पाया गया, उसे तुरंत गोली से उड़ा दिया जाएगा।[38] जब जापानी सेना ने मलाया या बर्मा पर अधिकार किया तो उनके सैनिकों द्वारा स्थानीय महिलाओं के साथ कुकृत्य के अनेक मामले सामने आए थे। इसलिए नेताजी इस बात के लिए प्रतिबद्ध थे कि भारत की सीमा में

प्रवेश के बाद कोई जापानी ऐसा घिनौना कार्य न कर सके। नेताजी का दृष्टिकोण बहुत व्यापक था।

उनका प्रत्येक कदम न केवल भारत की स्वतंत्रता के लिए उठ रहा था बल्कि भारत के मान व प्रतिष्ठा को भी सुनिश्चित कर रहा था।

जब आजाद हिंद फौज की न. 1 डिवीजन मोर्चे के लिए जाने लगी तो नेताजी ने सैनिकों को संबोधित करते हुए कहा – "जहाँ तक भारत की आजादी का प्रश्न है, किसी पर भी भरोसा नहीं करना है, जापानियों पर भी नहीं। धोखा न हो इसके लिए सबसे पक्की गारंटी आपकी अपनी शक्ति है। यदि तुम्हें कभी ऐसा लगे कि जापानी किसी भी रूप में भारत पर नियंत्रण करने की कोशिश में हैं, मुड़कर उनके विरुद्ध उतनी ही ताकत से युद्ध करना जितनी ताकत से ब्रिटेन के विरुद्ध लड़ना है।"[39]

10000 सैनिकों से सुसज्जित आईएनए की न. 1 डिवीजन युद्ध के लिए तैयार थी। इसी तरह दूसरी और तीसरी डिवीजन की तैयारी भी तेजी से चल रही थी। न. 1 डिवीजन की गांधी ब्रिगेड, नेहरू ब्रिगेड और आजाद ब्रिगेड से सर्वश्रेष्ठ सैनिकों को लेकर न. 1 गुरिल्ला रेजिमेंट तैयार हुई जिसके कमांडर बने कर्नल शाहनवाज खान। इस रेजिमेंट के सैनिकों ने स्वयं ही इसे 'सुभाष ब्रिगेड' नाम दे दिया। नवंबर 1943 में सुभाष ब्रिगेड बर्मा के लिए रवाना हुई। नेताजी सेना के अनुशासन और भारतीय जनता के मान-सम्मान के प्रति इतने चिंतित थे कि उन्होंने अपने सैनिकों से कहा था कि यदि भारत की भूमि पर पहुँचने के बाद किसी सैनिक को लूट या बलात्कार जैसे अपराधों में शामिल देखो तो वह सैनिक भारतीय हो या जापानी, उसे तुरंत गोली मार देना।"[40]

कलादान घाटी व पहाड़ों की ठण्ड को सहने के लिए उनके वीर जवानों को सिर्फ एक सूती कंबल और एक गर्म कमीज मिली थी। मच्छरदानी भी अपर्याप्त थीं। लेकिन जवानों में गजब का जोश था। उन्होंने नेताजी से कहा – "हमें जल्दी मोर्चे पर जाने दें, राशन तो हम चर्चिल सप्लाई से ले लेंगे।"[41] यानी अंग्रेजों को मारने के बाद उनका राशन हमारे ही काम आएगा।

7 जनवरी 1944 को बर्मा में जापानी सेना के कमांडर इन चीफ जनरल क्वाबे से नेताजी की भेंट हुई। चर्चा में एक मुद्दा यह भी था कि जापानी सेना और आईएनए के जवानों/अफसरों द्वारा एक दूसरे को सैल्यूट करने का। कवाबे का कहना था कि यदि दोनों सैनिक समान रैंक के हों तो पहले भारतीय सैल्यूट करेगा। नेताजी ने इस पर सख्त ऐतराज किया और भारत के स्वाभिमान के साथ सौदा करने से साफ-साफ मना कर दिया। तब इस बात पर सहमति बनी कि ऐसी स्थिति में दोनों एक साथ सैल्यूट करेंगे।[42]

सुभाष ब्रिगेड में तीन बटालियन थीं। फरवरी 1944 में पहली बटालियन मेजर पी एस रतूड़ी के नेतृत्व में बर्मा में कलादान नदी के साथ-साथ आगे बढ़ रही थी जहाँ अंग्रेजों ने वेस्ट अफ्रीकन डिवीजन को तैनात कर रखा था। दूसरी और तीसरी बटालियन मेजर रण सिंह और मेजर पदम सिंह के नेतृत्व में चिन हिल क्षेत्र में मोर्चा संभाल रही थी। इनके मोर्चे पर पहुँचने से पहले ही न. 1 डिवीजन के बहादुर ग्रुप और इंटेलिजेंस ग्रुप के जवान जापानी सेना

सुभाष ब्रिगेड में तीन बटालियन थीं। फरवरी 1944 में पहली बटालियन मेजर पी एस रतूड़ी के नेतृत्व में बर्मा में कलादान नदी के साथ-साथ आगे बढ़ रही थी जहाँ अंग्रेजों ने वेस्ट अफ्रीकन डिवीजन को तैनात कर रखा था। दूसरी और तीसरी बटालियन मेजर रण सिंह और मेजर पदम सिंह के नेतृत्व में चिन हिल क्षेत्र में मोर्चा संभाल रही थी। इनके मोर्चे पर पहुँचने से पहले ही न. 1 डिवीजन के बहादुर ग्रुप और इंटेलिजेंस ग्रुप के जवान जापानी सेना के साथ मिलकर अपनी भूमिका को बखूबी अंजाम दे रहे थे। आग बरसते गोलों के बीच इन जवानों ने अपनी बहादुरी से नेताजी का दिल जीत लिया था

के साथ मिलकर अपनी भूमिका को बखूबी अंजाम दे रहे थे। आग बरसते गोलों के बीच इन जवानों ने अपनी बहादुरी से नेताजी का दिल जीत लिया था। अरकान सेक्टर में काम करने वाले मेजर एल एस मिश्रा और मेजर मेहर दास को सरदारे जंग से सम्मानित किया गया। लेफ्टिनेंट हरी सिंह को आईएनए का सर्वोच्च वीरता सम्मान शेरे हिंद मिला, उन्होंने अकेले ही 7 अंग्रेजों को मौत की नींद सुलाया था।[43]

14 अप्रैल 1944 को मेजर शौकत अली मलिक की टोली भारत-बर्मा सीमा पार करके इम्फाल के निकट मोइरंग जा पहुँची थी। यह पहला अवसर था जब आजाद हिंद फौज के जवानों ने भारत की भूमि पर तिरंगा फहराया था।[44] कोहिमा सेक्टर में मेजर मग्घड़ सिंह और अजमेर सिंह की टोलियों ने भी इतिहास गढ़ा था।[45] इनके साथ शहीद के. गुरबचन सिंह, शहीद ले. सोहन लाल, के. मोहम्मद हुसैन और ले. आसिफ का योगदान भी भुलाया नहीं जा सकता।

अप्रैल 1944 में सुभाष ब्रिगेड की प्रथम बटालियन ने कलादान घाटी में मेजर पी एस रतूड़ी के नेतृत्व में वेस्ट अफ्रीकन डिवीजन को करारी मात दी थी। शत्रु के कम से कम 250 सैनिक मारे गए थे।[46] मई 1944 में यह बटालियन भी पालेत्वा, दलातमे होते हुए मोडोक में भारत की धरती पर प्रवेश कर गई थी। दुश्मन इस हमले से पूरी तरह हतप्रभ था। अंग्रेजी सेना हथियार, गोला बारूद, आटा, घी, चीनी आदि छोड़कर भाग गई थी।[47]

दुर्भाग्यवश, बारिश का मौसम भी शुरू हो गया था। जवानों के लिए पालेत्वा के बेस कैंप से राशन की सप्लाई बहुत मुश्किल हो चुकी थी। दुश्मन के हवाई हमलों ने कलादान नदी मार्ग से आने वाली कई नौकाओं को ध्वस्त कर दिया था। उधर अंग्रेज सेना भी पूरी तरह तैयार होकर बार-बार जवाबी आक्रमण कर रही थी। आजाद हिंद फौज के जवानों के पास भारी हथियार भी नहीं थे क्योंकि ये गुरिल्ला रेजिमेंट का हिस्सा थे। अत्यंत कठिन परिस्थितियों में भी के. सूरजमल के जवानों ने अद्वितीय वीरता का परिचय दिया था। अंततः इंफाल अभियान की असफलता के बाद विवश होकर सितम्बर 1944 में नेताजी ने आजाद हिंद फौज के जवानों को वापिस लौटने का आदेश दिया तो इन रणबाँकुरों को भी भारी मन से लौटना पड़ा।

सुभाष ब्रिगेड की दूसरी और तीसरी बटालियन के जवानों ने पहले म्यांमार के चिन हिल क्षेत्र के हाका-फालम मोर्चे पर लुशाई ब्रिगेड के 3000 गुरिल्ला लड़ाकों[48] के विरुद्ध और बाद में भारत में प्रवेश करके कोहिमा के आस-पास अपनी बहादुरी का लोहा मनवाया था। मई में सुभाष ब्रिगेड को आदेश मिला कि कोहिमा की ओर कूच करे। जवानों की खुशी का कोई ठिकाना नहीं था। जो सैनिक बीमार थे और अस्पताल में भर्ती थे वे भी भागकर लारियों में चढ़ गए कि कहीं पीछे न रह जाएँ।[49]

जल्दी ही कोहिमा के चारों ओर की ऊँची पहाड़ियों पर तिरंगा फहराने लगा। आजाद हिंद दल के अधिकारियों ने आजाद क्षेत्रों का प्रशासन संभाल लिया। छोटे आपराधिक मामले और जमीन संबंधी विवादों का निपटारा किया गया।[50] किंतु शत्रु की भारी संख्या, साथ में वायुसेना, टैंक, भारी तोपें और मोर्टार का भी पूरा बंदोबस्त था। सुभाष ब्रिगेड के गिनती के जवानों के पास केवल मशीन गन, राइफलें और हैंड ग्रेनेड ही थे। मानसून भी मानो सारे रिकॉर्ड तोड़ने पर उतारू थी। एकमात्र पहाड़ी सड़क जिसके द्वारा राशन की सप्लाई आ सकती थी वह भी मूसलाधार बारिश में नष्ट हो चुकी थी। जवान भूख से मर रहे थे।

कर्नल शाहनवाज खान लिखते हैं – *"हमारा राशन खत्म हो चुका था, जवान उस थोड़े से धान के सहारे जिन्दा थे जो उन्हें खाली हो गए नागा गांवों से मिला था। वे इस धान को जंगली घास के साथ मिलाते और उबाल कर खा लेते। इसमें मिलाने के लिए उनके पास नमक तक भी नहीं था। सारी दवाएँ खत्म हो चुकी थीं। हालात को और खराब करने के लिए उन जंगलों में करोड़ों बड़ी-बड़ी मक्खियाँ थीं जो जरा सा घाव होने पर मानव हो या जानवर उन पर ऐसे आक्रमण करती थीं कि आधे घंटे में ही उन जख्मों में सैंकड़ों कीड़े चलने लगते और ज्यादातर ऐसे मामलों में उन घायल जवानों के पास एक ही उपाय होता कि 'जय हिंद' बोलकर खुद को गोली मार लेते।"*[51]

अत्यंत विषम परिस्थितियों में कई-कई दिनों तक भूखे पेट लड़ते हुए इम्फाल के मोर्चे

पर गांधी और आजाद ब्रिगेड का अभियान भी अधूरा रह गया था। सितंबर, 1944 के अंत तक न. 1 डिवीजन कोहिमा और इम्फाल के मोर्चे से वापिस लौट आई थी। 4000 सैनिकों ने रणक्षेत्र में बलिदान दिया था।[52] भूख और बीमारी से मरने वालों की संख्या भी कम नहीं थी।

घने जंगलों से गुजरते सैनिकों को घातक मलेरिया के मच्छरों, घुटनों तक कीचड़ और जहरीलों जोकों से भी निपटना था। रास्ते में गिरा एक घायल सैनिक मृत्यु का इंतजार कर रहा था। उसके जख्म में सैकड़ों कीड़े चल रहे थे। मरते समय उसने कहा – "नेताजी से 'जयहिंद' कहना और बताना कि मैंने जो वचन दिया था, वह निभाया है।"[53]

जापान ने इंडियन नेशनल आर्मी को न तो आवश्यक हथियार दिए थे, न परिवहन के साधन, न संचार का सामान और न ही पेट भर राशन। भारतीय सैनिकों को लग रहा था कि उनके साथ विश्वासघात हुआ था। मरते समय एक अफसर ने अपने साथी से कहा था "देखना, मेरी कब्र किसी जापानी की कब्र के साथ न हो।"[54]

वर्ष 1944 में प्रथम डिवीजन ने वीरता और सर्वोच्च बलिदान का इतिहास रचा था तो वर्ष 1945 में इर्रावाड़ी नदी के किनारे व पोपा हिल्स पर दूसरी डिवीजन ने। सुभाष ब्रिगेड के कमांडर रह चुके कर्नल शाहनवाज खान को न. 2 डिवीजनल कमांडर नियुक्त किया गया। न. 3 डिवीजन के कमांडर थे कर्नल जी आर नागर।

फरवरी 1945 में पोपा हिल्स पर लड़ रहे सैनिकों का सही हाल जानने नेताजी मेकटिला पहुँच गए। शत्रु सेना आगे बढ़ती हुई मेकटिला के बिलकुल निकट आ चुकी थी और किसी भी क्षण मेकटिला पर उसका अधिकार हो सकता था। वहाँ से नेताजी को वापिस जाने के लिए मनाने के लिए उनके सहयोगियों को पापड़ बेलने पड़े थे।

कर्नल शाहनवाज खान लिखते हैं कि मैंने नेताजी से कहा – "आपका जीवन आपका नहीं है; यह भारत की अनमोल धरोहर है, जो हमारे पास रखी है और मैं इसे खतरे में नहीं पड़ने दूंगा। यदि आपको कुछ हो गया तो आजाद हिंद फौज और भारत की आजादी के संघर्ष का क्या होगा। नेताजी मुस्कराए और बोले – शाहनवाज, तुम्हें मेरी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि मैं जानता हूँ ब्रिटेन ने अभी तक वह बम नहीं बनाया है जो सुभाष चंद्र बोस की जान ले सके।"[55]

उनकी यह बात तो बिलकुल सही थी क्योंकि जिस जगह नेताजी ठहरे हुए थे वहाँ उसी दिन दुश्मन के जहाजों ने बहुत बम गिराए थे। चारों ओर भयंकर तबाही मची थी और यह कल्पना करना मुश्किल था कि नेताजी को खरोंच तक नहीं आई थी।[56] इसके बाद भी कई अवसरों पर वे दुश्मन के हमलों में बाल-बाल बचे थे।

फरवरी, 1945 में मेजर गुरबख्श सिंह ढिल्लों के नेतृत्व में नेहरू ब्रिगेड के 1200 जवान इर्रावाड़ी नदी के तट पर दुश्मन की पूरी डिवीजन से लोहा ले रहे थे। ले. चंद्रभान के जवानों के पास गिनती की गोलियाँ थीं और नदी के दूसरे तट से ईस्ट लंकाशायर रेजिमेंट के अंग्रेज तोपों और मोर्टार की गोलाबारी की आड़ में नदी पार कर रहे थे। ले. चंद्रभान का आदेश था कि एक गोली भी बेकार नहीं जानी चाहिए। उस रात उन्होंने दुश्मन की कम से कम 20 नाव डुबो दी थी।[57] लेकिन ब्रिटिश सेना न केवल संख्या में कई गुणा बड़ी थी बल्कि आधुनिक हथियार थे। वायु सेना और आर्टलरी का भी उन्हें पूरा सहयोग मिल रहा था। आखिर नेहरू ब्रिगेड को पीछे हटना पड़ा। संकट की घड़ी में ले. हरिराम जैसे कुछ गद्दार भी साबित हुए और अंग्रेजों से जा मिले। गद्दारी के कुछ उदाहरण और भी सामने आए थे। तब 13 मार्च, 1945 को नेताजी ने आदेश जारी किया कि आजाद फौज के प्रत्येक अधिकारी और सैनिक को यह अधिकार होगा कि यदि युद्ध के मैदान में कोई सैनिक या अधिकारी कायरता का परिचय दे तो उस कायर को तुरंत गिरफ्तार कर लिया जाए और जो गद्दारी करे उसे गोली मार दी जाए।[58]

कर्नल प्रेम कुमार सहगल के नेतृत्व में न. 2 इन्फेंट्री रेजिमेंट भी पोपा हिल्स पर बड़ी हिम्मत से लड़ी थी। 20 अप्रैल, 1945 को कैप्टन बागड़ी और उनके 100 बहादुर सैनिकों ने हाथों में ग्रेनेड और पेट्रोल भरी बोतल लेकर दुश्मन के टैंकों पर धावा बोला था। कैप्टन बागड़ी शहीद हो गए थे। उनके बाकी बचे हुए साथियों ने भी अपने कमांडर का ही अनुसरण करते हुए वीरगति पाई थी। जापानी सेना मैदान छोड़ कर जा चुकी थी।

आजाद हिंद फौज के पास अब पीछे हटने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं बचा था। बर्मा पर पुनः अंग्रेजों का अधिकार हो गया था। उन हालात में विवश होकर 24 अप्रैल 1945 को नेताजी सुभाष को भी रानी झाँसी रेजिमेंट की लड़कियों और आजाद हिंद सरकार के प्रमुख सदस्यों सहित बर्मा छोड़ना पड़ा।

बर्मा छोड़ने से पहले उन्होंने सैनिकों को संबोधित करते हुए कहा था - "इंफाल और बर्मा में हम अपनी आजादी के संघर्ष का पहला राउंड हार गए हैं। लेकिन, यह केवल पहला राउंड था। हमें अभी कई और राउंड लड़ना है। मैं जन्म से ही आशावादी रहा हूँ और किसी भी परिस्थिति में हार नहीं मानूँगा। भारत आजाद होगा और शीघ्र आजाद होगा।"

हिरोशिमा और नागासाकी पर अमेरिका द्वारा गिराए गए परमाणु बमों के बाद 15 अगस्त 1945 को जापान ने हथियार डाल दिए। नेताजी ने संघर्ष के नए विकल्प की तलाश में 17 अगस्त 1945 को जापानी विमान से अपने सहयोगी कर्नल हबीबुर्रहमान और कुछ जापानी सैन्य अधिकारियों सहित साइगॉन से उड़ान भरी। फिर 23 अगस्त को जापान ने घोषणा की कि 18 अगस्त, 1945 को ताइहोकू में एक विमान दुर्घटना में नेताजी का देहांत हो गया।

नेताजी की मृत्यु भले ही सदैव एक रहस्य बनी रही लेकिन उनके व उनके वीर सैनिकों के अद्वितीय संघर्ष और बलिदान ने देश की आजादी की राह के तमाम काँटे हटा दिए थे। जब अंग्रेजों द्वारा युद्ध बंदी बनाकर नेताजी के हजारों सैनिकों को भारत लाया गया तो वह हुआ जिसकी कल्पना किसी ने नहीं की थी। सारा देश आजाद हिंद फौज के नायकों के समर्थन में एक जुट खड़ा हो गया था। ब्रिटिश कमांडर इन चीफ ने ब्रिटिश इंडियन आर्मी में सर्वेक्षण करवाया तो 80% भारतीय सैनिकों ने आजाद हिंद फौज के युद्धबंदियों के विरुद्ध कोई भी कार्रवाई नहीं करने के पक्ष में मत दिया था।[59]

ह्यु टोये अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सुभाष चंद्र बोस द स्प्रिंगिंग टाइगर' में लिखते हैं - "युद्ध के मैदान में भले ही आई एन ए को जीत नहीं मिली थी पर उनकी गर्जन ने भारत में अंग्रेजी राज का अंत तेज कर दिया था।"[60] नवंबर, 1945 में जब अंग्रेजों ने लाल किले में आजाद हिंद फौज के अफसरों के विरुद्ध मुकदमा शुरू किया तो कल तक नेताजी सुभाष के प्रयास की आलोचना करने वाले नेहरू भी वर्षों बाद काला गाउन पहनकर बचाव पक्ष के वकीलों के बीच खड़े थे। क्या आजाद हिंद फौज के लिए उपजा उनका यह सम्मान व समर्थन स्वाभाविक था या राजनीतिक अवसरवादिता, निर्णय करना कठिन है।

कांग्रेस के नेतृत्व के निर्देशानुसार आसफ अली ने भारत की जनता की भावना जानने के लिए भारत का भ्रमण किया था और पाया कि ज्यों-ज्यों वे दक्षिण से उत्तर की ओर आगे जाते गए आजाद हिंद फौज के सैनिकों के विरुद्ध कोई भी कार्रवाई न किए जाने और उन्हें रिहा किए जाने के पक्ष में जनमत मजबूत होता गया। इन ज्वलंत जनभावनाओं ने कांग्रेस को वह निर्णय लेने को विवश होना पड़ा।[61] भारत में ब्रिटिश साम्राज्य ब्रिटिश इंडियन आर्मी के भारतीय सैनिकों की ब्रिटेन के प्रति वफादारी की नींव पर टिका था, लेकिन आजाद हिंद फौज के मुकदमे ने न केवल कांग्रेस को समर्थन के लिए विवश कर दिया था बल्कि उस नींव को भी खोखला कर दिया था। फरवरी, 1946 में ब्रिटिश इंडियन नेवी के 20000 जवानों का सशस्त्र विद्रोह भी आजाद हिंद फौज से ही प्रेरित था।

एक विशाल मजबूत पत्थर को तोड़ने के लिए अनेक प्रहार करने पड़ते हैं। जिस अंतिम प्रहार से पत्थर टूटता है, वह अविस्मरणीय बन जाता है। पूर्व के प्रहार चाहे उतने ताकतवर न भी रहे हों, वे पत्थर को कमजोर तो करते ही हैं और उन सबका योगदान अपना महत्त्व रखता है। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पत्थर तोड़े कोई पर फोटो किसी और का खिंच जाता है। भारत की पराधीनता के विशालकाय पत्थर को तोड़ने के लिए भी असंख्य प्रहार हुए, अनेक हथोड़ों का प्रयोग हुआ और विभिन्न तकनीक आजमाई गई। कितने हथोड़े तो पत्थर तोड़ते-तोड़ते स्वयं ही टूट गए। पत्थर में कहीं-कहीं दरारें भी दिखाई दीं, कई बार यह लगा कि अब बस टूटने ही वाला है, किन्तु दशक बीतते रहे, निराशा बढ़ती रही और पत्थर जस का तस पड़ा था।

तब हिमालय से भी ऊँचे हौसले वाला फौलादी हाथ उठा, जिसने ऐसा भारी और अचूक हथोड़ा थामा था जिसे पहले नहीं आजमाया गया था। इसके अचूक प्रहार ने पत्थर के टुकड़े कर दिए। इसके बाद टूटे पत्थर के साथ फोटो खिंचवाने के लिए होड़ शुरू हो गई। जिस फौलादी हाथ के

प्रहार से पत्थर टूटा था वह अंतर्ध्यान हो गया था और फोटो खिंचवाने के लिए कुछ और लोग खड़े हो गए थे। जनता उनकी ही जय जयकार करने लगी। सच क्या था, किसी को पता ही नहीं लगा और पचहत्तर वर्ष बीतने के बाद भी सच से पर्दा नहीं उठ पाया। वह फौलादी हाथ था नेताजी सुभाष का और उनका हथोड़ा था आजाद हिंद फौज।

प्रदीप देसवाल

संदर्भः

1. His Majesty's Opponent, Sugata Bose, 235;
2. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 70;
3. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय, खंड 12, पृष्ठ 28;
4. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय, खंड 12, पृष्ठ 31;
5. His Majesty's Opponent, Sugata Bose, 245;
6. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय, खंड 12, पृष्ठ 35;
7. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय, खंड 12, पृष्ठ 38;
8. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 91-92;
9. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 88;
10. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 101;
11. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 103;
12. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 110;
13. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 147;
14. His Majesty's Opponent, Sugata Bose, 257;
15. His Majesty's Opponent, Sugata Bose, 259;
16. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 146;
17. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 146;
18. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 147-148;
19. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 151;
20. His Majesty's Opponent, Sugata Bose, 261;
21. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 153;
22. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page x;
23. https://www.s-asian.cam.ac.uk/archive/audio/collection/s-a-ayer/
24. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 160;
25. Unto Him A Witness, S A Ayer, Page 245;
26. The Springing Tiger, Hugh Toye, Page 96;
27. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय, खंड 12, पृष्ठ 126-127;
28. His Majesty's Opponent, Sugata Bose, 258;
29. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 155;
30. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 156;
31. His Majesty's Opponent, Sugata Bose, 271;
32. His Majesty's Opponent, Sugata Bose, 272;
33. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 211;
34. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 228;
35. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 169;
36. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 96;
37. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 104-105;
38. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 175;
39. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 175-76;
40. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 99;
41. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 103;
42. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 105;
43. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 111;
44. His Majesty's Opponent, Sugata Bose, 275;
45. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 112;
46. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 113;
47. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 114;
48. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 120;
49. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 132;
50. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 180;
51. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 132;
52. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 155;
53. [My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 138;
54. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 142;
55. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 175-176;
56. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 176;
57. My Memories of the INA and its Netaji, Shahnawaz Khan, Page 186;
58. Chalo Delhi: Writings and Speeches 1943-1945 (Netaji Collected Works, Volume 12, Page 314);
59. India's Struggle for Freedom, A C Chatterjee, Page 313;
60. Subhas Chandra Bose The Springing Tiger, Hugh Toye, Page 255;
61. Transfer of Power, Volume 6, Page 387;

रामबहादुर राय

नेताजी का संघर्ष पथ अज्ञात में बड़ी छलाँग

भारत की धरती से अंग्रेजों के पाँव उखाड़ने में नेताजी के पराक्रम का जो योगदान है उसकी किसी से तुलना नहीं की जा सकती। उन्होंने जिस तरह का जोखिम मोल लिया था, वह भी इतिहास में अप्रतिम है। एक विवरण

स्वतंत्रता संग्राम के निर्णायक मोड़ पर महात्मा गांधी के नेतृत्व की कांग्रेस हर तरह से विफल हो गई। वह अपनी योजना में भारत को स्वतंत्र नहीं करा सकी। लेकिन देश अंग्रेजों को भगाने में सफल हो गया, क्योंकि नेताजी सुभाष चंद्र बोस के पराक्रम से उत्पन्न राष्ट्रीय चेतना की लहर में अंग्रेजों के पाँव उखड़ गए। आजाद हिंद की अंतरिम सरकार के घोषणा पत्र में नेताजी ने लिखा कि "इस दुर्भाग्यपूर्ण (ब्रिटिश) शासन के अंतिम चिह्न को नष्ट करने के लिए केवल एक चिंगारी की जरूरत है। उस चिंगारी को पैदा करना हिंदुस्तान की मुक्ति सेना का दायित्व है।"[1] वह सचमुच पूरा हुआ। इसे यह घटना खूब अच्छे से समझाती है। बात मार्च, 1946 की है। महात्मा गांधी उरूलीकांचन में थे। पुणे के पास यह गाँव आज भी है। जहाँ प्राकृतिक चिकित्सा का केंद्र उन्होंने बनवाया था। उरूलीकांचन में एक फौजी छावनी भी थी।[2] प्यारे लाल ने लिखा है कि "शायद ही कोई दिन ऐसा बीतता होगा जब भारतीय सैनिकों का कोई दल गांधीजी के संपर्क में न आता हो।"[3] एक दिन सैनिकों के दो दल आए। वे बोले, "हम सैनिक हैं, परंतु भारत की आजादी के सैनिक हैं।"[4]

वहाँ आए सैनिकों और गांधीजी के बीच बहुत रोचक बातचीत हुई। इतिहास करवट ले चुका था। उस बातचीत से यही प्रकट होता है। लेकिन उसका वर्णन यहाँ न प्रस्तुत कर सिर्फ इस शोधलेख के काम की ही बातें बताना उचित है। उस बातचीत के क्रम में एक सैनिक गांधीजी से कहता है, "एक समय था जब हमें कोई अखबार नहीं पढ़ने दिया जाता था। लेकिन आज हम अपने अफसरों से जाकर कहते हैं कि हम अपने देश के सबसे बड़े नेता से मिलने जा रहे हैं और कोई हमें रोकने की हिम्मत नहीं करता।"[5] इस पर गांधीजी ने जो कहा वह वास्तव में इस बात की सहज स्वीकृति है कि देश ने अंगड़ाई ले ली थी। उसकी चेतना सर्वत्र स्वतंत्रतामय हो गई थी। गांधीजी के शब्द हैं, "मैं जानता हूँ कि सेना के सभी विभागों में आज एक नया जोश और नई जागृति आ गई है। इस परिवर्तन का बहुत कुछ श्रेय नेताजी सुभाष चंद्र बोस को है। मुझे उनकी कार्य-पद्धति पसंद नहीं है, परंतु भारतीय सैनिकों को एक नई दृष्टि और एक नया आदर्श देकर उन्होंने भारत की अनोखी सेवा की है।"[6]

इस पर 'एक बड़े पद वाला सैनिक'[7] बोल पड़ा, "हम सेना के आदमी यह समझ ही नहीं सकते कि कोई आदमी भारत के दो, तीन या अधिक टुकड़े करने की बात कैसे सोच सकता है। हम तो एक ही भारत को जानते हैं, जिसके लिए हम लड़े हैं और हमने अपना खून बहाया है।"[8] बारी गांधीजी की थी। वे बोले, "भाई! दुनिया में सब तरह के आदमी होते हैं।"[9] इस पर सैनिकों ने ठहाका लगाया। एक सैनिक ने पूछा, "क्या हम नारे लगा सकते हैं?"[10] गांधीजी ने कहा, "अच्छा लगाइए।"[11] प्यारे लाल ने अपने वर्णन में लिखा है कि "उन सबने छोटे बच्चों की तरह उत्साह में आकर 'जयहिंद', 'नेताजी की जय' आदि नारे बार-बार बोलकर गांधीजी के छोटे से कमरे की छत को हिला दिया।"[12] यह एक अल्पज्ञात छोटी सी घटना है। जिसे उन अनगिनत घटनाओं से जोड़ दिया जाए जो तब देश के हर हिस्से में हो रही थीं, तो उथल-पुथल के उन तूफानी दिनों का एक चमकदार बड़ा कोलाज उभरता है, जिसके केंद्र में नेताजी और आजाद हिंद फौज दिखती है। उससे उत्पन्न भावना की व्यापकता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। शर्त एक ही है, इसके लिए

कभी कभी दिल की बात ही मायने रखती है

हिन्दुस्तान पेट्रोलियम

HP

Delivering Happiness

Hindustan Petroleum Corporation Limited

Azadi Ka Amrit Mahotsav

G20 भारत 2023 INDIA

MoPNG e SEVA : For prompt action on any Oil & Gas related query, please contact /MoPNGeSeva | /MoPNG_eSeva

/hpcl | /hpcl | /hpcl www.hindustanpetroleum.com

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

प्रदेश सरकार ने बढ़ाया कदम
आत्मनिर्भर होंगी
लाड़ली बहना

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

मुख्यमंत्री लाड़ली बहना योजना

- सशक्त नारी
- सशक्त परिवार
- सशक्त समाज
- सशक्त प्रदेश
- सशक्त देश

"लाड़ली बहना योजना मेरे दिल से निकली योजना है। बहनें सशक्त होंगी तो परिवार, समाज, प्रदेश और देश सशक्त होगा। बहनों के जीवन को सरल, सुखद बनाना ही मेरे जीवन का ध्येय है। बहनें अपनी छोटी-मोटी जरूरतों और पैसों की आवश्यकता के लिए परेशान न हों, इसलिए हर महीने बहनों को एक-एक हजार रुपए उपलब्ध कराने की व्यवस्था योजना में की गई है।"

- शिवराज सिंह चौहान

पात्र लाभार्थी को
₹ 1000/-
मासिक

हर वर्ष
₹ 12000/-

अगले 5 वर्ष में
₹ 60000/-
तक की प्राप्ति संभव

उद्देश्य

- महिलाओं के स्वावलंबन एवं उनके आश्रित बच्चों के स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर में सतत सुधार को बनाये रखना।
- महिलाओं को आर्थिक रूप से अधिक स्वावलंबी बनाना।
- परिवार के स्तर पर निर्णय लिये जाने में महिलाओं की प्रभावी भूमिका को प्रोत्साहित करना।

अधिक जानकारी के लिये

जिला कार्यक्रम अधिकारी, महिला एवं बाल विकास, स्थानीय निकाय/ग्राम पंचायत से संपर्क करें
वेबसाइट - cmladlibahna.mp.gov.in पर विजिट करें।

बहनों के हित में मध्यप्रदेश सरकार का विनम्र प्रयास

कल्पना के आकाश में थोड़ी ऊँची उड़ान भरनी होगी।

नेताजी सुभाष चंद्र बोस पर बहुत किताबें हैं। लेकिन उनकी राजनीतिक जीवनी पर एक ऐसी किताब है, जो अपने एक अध्याय में यह प्रश्न उठाती है कि क्या नेताजी एशिया में बहुत देर से पहुँचे। इस प्रश्न में अनेक प्रश्न हैं। इसलिए कि बड़ी उलझी हुई क्षण-क्षण बदलती वैश्विक परिस्थितियों में भारत की स्वतंत्रता का लक्ष्य कैसे पूरा हो, इस बारे में नेताजी सुभाष चंद्र बोस को सिर्फ अर्जुन की भाँति चिड़िया की आँख ही दिख रही थी। लेकिन उस महत प्रयास और पराक्रम को इतिहास की किस नजर से देखा-दिखाया गया है, यह इस प्रश्न का एक छोटा सा पक्ष है। महत्त्वपूर्ण पक्ष है कि नेताजी की भारत को स्वतंत्र कराने की समर नीति क्या थी? इसे 'द इंडियन स्ट्रगल' के पन्ने स्पष्ट करते हैं। इस पुस्तक से सुभाष चंद्र बोस की वैचारिक आधारभूमि प्रकट होती है। उनका वह रूप सामने आता है जो कहीं छिप सा गया था। रवींद्र नाथ ठाकुर ने उन्हें सही ही देशनायक कहा था। सुभाष चंद्र बोस इतिहास की उस नियति को मानते और अनुभव करते थे जो उनके लिए नियत था। ऐसी साफ समझ विरले लोगों में पाई जाती है। इसीलिए वे भारतीय इतिहास के ऐसे नायक हुए हैं जो अपनी अलग पहचान और अमिट छाप बनाए रख सके हैं। 'दी इंडियन स्ट्रगल' उसी समय लिखी गई जब नेहरू ने अपनी जीवनी लिखी थी।

सुभाष चंद्र बोस की पुस्तक में इतिहास दृष्टि है। उससे सबसे पहला सिद्धांत स्थापित होता है कि भारत एक लोकतांत्रिक गणराज्य रहा है। इसकी अंग्रेजों ने उपेक्षा की। पर यह ऐतिहासिक सत्य है। इस आधार पर उन्होंने स्वतंत्रता संग्राम के नेताओं को बोध दिया कि उन्हें पश्चिम की ओर लोकतंत्र के मूल्यों के लिए निहारने की जरूरत नहीं है। अपने भीतर झाँकना काफी है। अपने इतिहास की सही समझ इसके लिए जरूरी है। यह बात कभी जवाहरलाल नेहरू ने नहीं कही। यही नेहरू और सुभाष का अंतर था। पर सिर्फ इतना ही नहीं था। भारतीय जनजीवन में आज नेताजी उस स्थान पर हैं, जिसके वे हकदार थे। ऐसे समय में यह जानने की जरूरत है कि किन परिस्थितियों में उन्हें देश छोड़ने के लिए विवश होना पड़ा? यह सच है कि नेताजी सिर्फ 27 माह ही एशिया में रहे। लेकिन उसे उनके एशिया में पहुँचने से पहले के दो सालों को अलग करके नहीं देखा जा सकता। यहाँ यह दर्ज करना चाहिए कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस 6 मई, 1943 को सुमात्रा पहुँचे थे। 1 जुलाई, 1943 को उन्होंने आजाद हिंद फौज की कमान संभाली। यहीं यह भी याद करें कि महात्मा गांधी और पंडित जवाहरलाल नेहरू से आजादी की लड़ाई के सवाल पर निराश होकर उन्हें भारत से बाहर की राह तलाशनी पड़ी। यह उनकी मजबूरी नहीं थी। हाँ, अनिश्चित पथ पर एक बड़ी छलाँग अवश्य थी। 1941 में वे भारत से निकल पड़े।

https://www.youthkiawaaz.com/2021/09/the-tale-of-reorganization-of-azad-hind-fauj-by-means-of-netaji-subhash-chandra-bose/

उनका जीवन एक महाकाव्य है। महर्षि अरविंद ने आई.सी.एस. पद ठुकरा दिया था। उस ऐतिहासिक घटना के तीस साल बाद नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने भी सोच-समझकर आई.सी.एस. बनना छोड़ा। यह 1921 की बात है। वे भारत लौटे। स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। 1921 से 1945 के दौरान छः साल उन्होंने जेलों में बिताए। सात साल देश निकाला में गुजारा। सिर्फ ग्यारह साल उन्हें स्वतंत्रता की अलख जगाने के लिए मिले। वे उस थोड़ी से अवधि में स्वतंत्रता की एक प्रबल धारा प्रवाहित कर सके। उनसे अंग्रेजी शासन भयाक्रांत था। वे दो बार कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। अगर वे आई.सी.एस. हो जाते तो क्या भारत का इतिहास दूसरा होता? आज हम जानते हैं कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने आजाद हिंद फौज के प्रधान सेनापति के रूप में साम्राज्यवाद को जितने जोश से ललकारा, उस प्रेरक अनुगूँज ने हर भारतीय को स्वतंत्रता की गहरी भावना से भर दिया। आई.सी.एस. अफसर होकर वे यह नहीं कर पाते। इसे वे जानते थे। इसीलिए उन्होंने आत्मत्याग की राह चुनी।

इसमें संदेह नहीं है कि आजाद हिंद फौज ने हर भारतीय के सोचने के ढंग को पूरी तरह बदल दिया। जब नेताजी ने आजाद हिंद फौज की कमान संभाली तो उसमें बारह हजार वे भारतीय सैनिक थे जो जापानी सेना के युद्धबंदी थे। आजाद हिंद फौज के प्रभाव पर गांधीजी के कथन से हम अवगत हैं। अब हम यह भी जानते हैं कि 'भारतीय सेना 450 भारतीय अधिकारियों से बढ़कर 1939 से 1945 की अवधि के दौरान 12,000 भारतीय अधिकारियों तक जा पहुँची थी। ऐसा युद्ध के समय आपात भर्ती के कारण हुआ था। उसी अवधि में सैनिकों की संख्या डेढ़ लाख से बढ़कर 22 लाख हो चुकी थी।'[14] भारतीय सैनिकों ने उस युद्ध में अफ्रीका और यूरोप के मोर्चों पर अपने शौर्य का डंका बजाया था। वही समय है जब दक्षिण पूर्व एशिया में जापान की सैनिक बढ़त ने नेताजी के सपनों की मुक्ति सेना के लिए भारत के पूरब में एक

अवसर उपस्थित किया।

लेकिन जवाहरलाल नेहरू इसे एक खतरे के रूप में देख रहे थे। उन्होंने प्रेस को एक इंटरव्यू दिया। जिसमें कहा कि "मैं सुभाष चंद्र बोस और उनकी मुक्ति सेना से लड़ूंगा, अगर वे भारत की सीमा पर आए।"[15] उसी समय कुछ महीने बाद बैंकाक सम्मेलन हुआ। उसकी अध्यक्षता क्रांतिकारी नेता रास बिहारी बोस कर रहे थे। नेताजी ने अपना संदेश भेजा। भारत से स्टैफोर्ड क्रिप्स के प्रस्थान के बाद हमारे राष्ट्रीय संघर्ष का अंतिम चरण शुरू हो गया है। इस ऐतिहासिक संघर्ष में, सभी राष्ट्रवादी, चाहे वे भारत में हों या बाहर, अपना कर्तव्य अवश्य पूरा करें। पिछले अठारह महीनों के अपने अनुभव से मुझे विश्वास हो गया है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ हमारी लड़ाई में त्रिपक्षी शक्तियाँ भारत से बाहर हमारी सबसे अच्छी मित्र और सहयोगी हैं, तथा नि:संदेह वे हमें जैसी भी सहायता की जरूरत होगी, खुशी-खुशी देंगे। किंतु भारत की मुक्ति का काम मुख्यतया स्वयं भारतीयों का ही होगा।'[16]

भारत की स्वतंत्रता के प्रश्न पर उस समय की अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव बड़ा था। यह प्रश्न आज भी जटिल बना हुआ है कि उन अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों का भारत की स्वतंत्रता के संदर्भ में सही आंकलन किसका था? क्या महात्मा गांधी सही थे? क्या पंडित नेहरू सही थे? क्या सुभाष चंद्र बोस सही थे? ये महापुरुष एक त्रिकोण बनाते हैं। कौन सही था, यह किस दृष्टिकोण से देखा जा रहा है, इससे ही निर्धारित होगा। इसलिए जरूरी है कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस के प्रयासों को भी जानें। वे 1943 के शुरू में जर्मन अधिकारियों को यह समझा पाने में सफल रहे कि जापानियों के साथ एशिया में सशस्त्र संघर्ष चलाकर ही वे भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अपनी भूमिका बेहतर तरीके से निभा सकते हैं।'[17] यह भी एक संयोग था कि उसी समय जापान के आधिकारी भी जर्मन अधिकारियों को यह संदेश दे रहे थे कि सुभाष को एशिया या प्रशांत की युद्धभूमि में होना चाहिए। इससे उन्हें और मदद मिल गई।'[18]

नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने 6 जुलाई, 1944 को एक रेडियो प्रसारण में महात्मा गांधी को संदेश दिया। वह काफी लंबा है। जिसमें बहुत सारी सूचनाएँ हैं। इसे पढ़ते हुए अनुभव होता है कि वे उस दुष्प्रचार से परिचित थे, जो भारत में उनके बारे में किया जा रहा था। उन्होंने स्पष्ट किया कि वे जापान कब और क्यों आए। मैं जापान तब तक नहीं आया जब तक इंग्लैंड और जापान के बीच संधि रही। मैं जापान तब तक नहीं आया जब तक दोनों देशों के बीच सामान्य कूटनीतिक संबंध थे। जब जापान ने इंग्लैंड और अमेरिका के खिलाफ युद्ध की घोषणा की, जिसे मैं उसके इतिहास का सबसे महत्त्वपूर्ण कदम मानता हूँ, तब मैंने अपनी मर्जी से जापान जाने का फैसला किया।'[19] उन्होंने उसी संदेश में यह भी बताया कि अंतरिम आजाद हिंद सरकार को जापान, जर्मनी और सात अन्य मित्र देशों ने मान्यता दी है जिसके कारण सारी दुनिया में भारतीयों को एक नया महत्त्व और प्रतिष्ठा मिली है। अंतरिम सरकार का एक लक्ष्य है, और वह है सशस्त्र संघर्ष द्वारा भारत को अंग्रेजों की गुलामी से आजाद करना। एक बार जब हमारे दुश्मन देश से निकाल दिए जाते हैं और शांति और व्यवस्था कायम हो जाती है, तो अंतरिम सरकार का मिशन पूरा हो जाएगा।'[20]

आजाद हिंद फौज को अपने युद्ध मोर्चे पर भले ही पूरी सफलता न मिली हो, लेकिन नेताजी सुभाष चंद्र बोस की समर नीति सफल रही। उस दौर में पंडित नेहरू के बयान बताते हैं कि वे नेताजी को अपना प्रतिद्वंदी नहीं, शत्रु समझने लगे थे। इसे वामपंथियों ने गहरा रंग दिया। उन्हें जापानी प्रधानमंत्री तोजो से जोड़कर गालियाँ दी गईं। वह राजनीति का मनगढ़ंत खेल था। सच तो यह था कि 'नेताजी सुभाष चंद्र बोस की योजना में भारत की स्वतंत्रता स्वायत्त होनी थी।'[21] वह योजना पूरी तरह साकार नहीं हो सकी। लेकिन नेताजी ने आत्मबलिदान कर भारत को आजादी दिला दी। उनकी भूमिका उत्प्रेरक बनी। सफलता तो महात्मा गांधी को भी वैसी नहीं मिली जैसी वह चाहते थे। लेकिन यह कह सकते हैं कि अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों का जो आंकलन गांधीजी ने किया था, वह ज्यादा सही था। पंडित नेहरू तो बहुत पहले ही खुद को अंग्रेजों जैसा बता चुके थे। यहाँ एक प्रश्न और पैदा होता है। क्या महात्मा गांधी ने 'भारत छोड़ो' का नारा नेताजी के अंतरराष्ट्रीय प्रयासों के दबाव में दिया? इसके बारे में अपने-अपने खयाल हो सकते हैं। एक तथ्य अवश्य है कि गांधीजी ने तीन आंदोलन चलाए। पहला 1920 में था। दूसरा एक दशक बाद था। तीसरा एक दशक बाद होता अगर नेताजी की बात वे मान लेते। लेकिन महात्मा गांधी ने तीसरी लड़ाई ठीक 12 साल बाद छेड़ी। वह 1942 की अगस्त क्रांति कहलाई।

राजमोहन गांधी मानते हैं कि सुभाष चंद्र बोस की गांधी से असहमति 1920 के दशक में ही शुरू हो गई और सुभाष ने अहिंसा के सिद्धांत पर अपनी असहमति भी जता दी।[22] नेताजी सुभाष चंद्र बोस की असहमति का आधार उनकी ईमानदार निष्ठा थी। फिर भी उन्होंने युद्धक्षेत्र से अपने रेडियो प्रसारण में हमेशा गांधी को राष्ट्रपिता कहकर संबोधित किया। असहमति तो नेहरू की भी थी। लेकिन वे चतुर राजनीतिक थे और महात्मा गांधी के प्रति निष्ठा का दिखावा उनकी रणनीति थी। इसके बारे में उनके जीवनी लेखकों ने भी लिखा है। जापान पहुँचकर नेताजी ने एक मार्मिक अपील की। उन्होंने अपने रेडियो संदेश में कहा कि भारत अपनी

भारत की स्वतंत्रता के प्रश्न पर उस समय की अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों का प्रभाव बड़ा था। यह प्रश्न आज भी जटिल बना हुआ है कि उन अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों का भारत की स्वतंत्रता के संदर्भ में सही आंकलन किसका था? क्या महात्मा गांधी सही थे? क्या पंडित नेहरू सही थे? क्या सुभाष चंद्र बोस सही थे? ये महापुरुष एक त्रिकोण बनाते हैं। कौन सही था, यह किस दृष्टिकोण से देखा जा रहा है, इससे ही निर्धारित होगा। इसलिए जरूरी है कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस के प्रयासों को भी जानें

आजादी तभी प्राप्त कर सकेगा जब देशभक्त भारतीय का रक्त बहेगा।[23] ऐसा ही हुआ भी। ब्रिटिश सेना से लड़ते हुए आजाद हिंद फौज के 60 हजार सैनिकों में से 26 हजार सैनिकों ने अपने प्राण त्याग दिए।[24]

विश्वयुद्ध के अंत में ब्रिटिश भारत के प्रधान सेनापति अचिन लेक ने दर्ज किया है कि आजाद हिंद फौज और युद्ध के दौरान भर्ती किए गए सेना के सैनिक हथियार बंद होकर घूम रहे हैं। सेना के मुख्यालय ने निष्कर्ष निकाला कि भारतीय अफसर और सैनिक भरोसेमंद नहीं हैं। सच तो यह था कि भारत में अंग्रेज बागी सैनिकों से घिर गए थे और आशंकित थे। उनकी आशंका सही निकली जब नौसेना विद्रोह हुआ। कराची से कलकत्ता तक के तटीय ठिकानों के 66 नौसैनिक जहाजों में सवार 10 हजार नौसैनिकों ने बगावत कर दी।'[25] यह मारक घटना शुरू हुई, 18 फरवरी, 1946 को। जिसके अगले ही दिन ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लार्ड क्लीमेंट एटली को यह घोषणा करनी पड़ी कि सत्ता हस्तांतरण के लिए कैबिनेट मिशन भारत जाएगा। इस समय हम जानते हैं कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस की आजाद हिंद फौज कारक थी।

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के निर्णयों से नेताजी सुभाष चंद्र बोस राष्ट्रीय जनजीवन में सम्मान के ऊँचे स्थान पर विराजमान किए जा सके हैं। इतिहास की एक बड़ी भूल सुधारी जा चुकी है। इससे एक उत्सुकता भी पैदा हुई है। लोगों में इस बात को जानने की जिज्ञासा उभरी है कि स्वतंत्रता आंदोलन के उस कालखंड की कहानियाँ कैसी थीं। इसे जानने के लिए हमें सीधे उस कथालेखक की मदद लेनी चाहिए, जिसका नाम है, सुभाष चंद्र बोस। उनकी दो किताबें हैं। एक, आत्मकथा (जो अधूरी ही रही)। दूसरी, दी इंडियन स्ट्रगल। इन किताबों से वह जानकारी मिलती है जिसे नेताजी बताते हैं। इसलिए किसी दूसरे की गवाही गैरजरूरी है। 1940 में नेताजी अंतिम बार गांधीजी से मिले।

इसका वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है- "जेल जाने से कुछ दिन पहले जून, 1940 में मेरी महात्मा गांधी और उनके सहायकों से अंतिम और लंबी बातचीत हुई। उस समय भारत में फ्रांस के हथियार डाल देने की खबर पहुँच चुकी थी। जर्मन सेनाएँ बड़े विजयोल्लास के साथ पेरिस में दाखिल हो चुकी थीं। इंग्लैंड और भारत में ब्रिटिश का मनोबल नीचा था। एक ब्रिटिश मंत्री ने ब्रिटिश जनता को मायूस और मातमी शक्लें बनाए रहने पर बड़ा लताड़ा था। भारत में फारवर्ड ब्लाक ने जो सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया था वह चल रहा था और ब्लाक के बहुत से नेता जेल जा चुके थे। अतः मैंने महात्मा जी से आगे आकर अपना सत्याग्रह आंदोलन शुरू करने की भावभरी अपील की क्योंकि यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश साम्राज्य अब खत्म हो जाएगा और यह भारत के लिए युद्ध में अपनी भूमिका अदा करने का सबसे अच्छा मौका है।"[26]

उस बातचीत से नेताजी ने जो समझा, उसका वर्णन उन्होंने इन शब्दों में किया है, लेकिन महात्मा जी अब भी कुछ करने का वचन देने को तैयार नहीं थे। उन्होंने फिर अपनी वही रामकहानी दुहरा दी कि मेरी दृष्टि में देश संघर्ष के लिए तैयार नहीं है और इस समय यदि संघर्ष की नौबत लाई गई तो लाभ के बजाय भारत को हानि अधिक उठानी पड़ेगी। खैर, बहुत लंबी और खुली बातचीत के बाद उन्होंने कहा कि यदि भारत को आजाद करने के तुम्हारे प्रयत्न सफल होते हैं तो मैं तुम्हें बधाई का तार भेजने वाला सबसे पहला आदमी होऊँगा।'[27]

ऐसा नहीं है कि वे सिर्फ गांधीजी से मिले। उन्होंने दूसरे नेताओं से मिलने का वर्णन भी किया है, "इस मौके पर मैंने अन्य संगठनों के नेताओं से भी बातचीत की, जैसे कि ऑल इंडिया मुस्लिम लीग के प्रधान मि. जिन्ना से, अ.भा. हिंदू महासभा के अध्यक्ष विनायक दामोदर सावरकर से। उस समय जिन्ना अंग्रेजों की मदद से पाकिस्तान की अपनी योजना को पूरा करने की सोच रहे थे। कांग्रेस के साथ मिलकर भारत की आजादी के लिए राष्ट्रीय संघर्ष शुरू करने के मेरे सुझाव का जिन्ना पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा। यद्यपि मैंने सुझाव दिया था कि यदि इस प्रकार मिल-जुलकर संघर्ष किया गया तो स्वतंत्र भारत के पहले प्रधानमंत्री वही बनेंगे। सावरकर अतंरराष्ट्रीय स्थिति से बिलकुल अनभिज्ञ दिखाई देते थे और बस यही सोच रहे थे कि ब्रिटेन की भारत में जो सेना है उसमें घुसकर हिंदू किस प्रकार सैनिक प्रशिक्षण प्राप्त करें। इन मुलाकातों के बाद मैं इसी नतीजे पर पहुँचा कि मुस्लिम लीग या हिंदू महासभा से किसी प्रकार की कोई आशा नहीं की जा सकती।'[28]

नेताजी ने यह याद दिलाया है कि 20 मई, 1940 को पंडित नेहरू ने तो एक बड़ा ही आश्चर्यजनक व्यक्तव्य दे डाला, जिसमें उन्होंने कहा कि ऐसे वक्त में जब ब्रिटेन जीवन और मृत्यु के संघर्ष में लिप्त है उस समय सत्याग्रह या सविनय अवज्ञा आरंभ करना भारत के सम्मान के लिए घातक होगा। इसी प्रकार महात्मा जी ने भी कहा कि हम ब्रिटेन के विनाश के बदले अपनी आजादी नहीं लेना चाहते। यह अहिंसा का तरीका नहीं है। यह साफ हो गया था कि गांधीवादी लोग अंग्रेजों से समझौता करने की हर संभव कोशिश कर रहे थे।'[29]

इसीलिए वे भारत से निकले। 'दिल्ली चलो' का नारा दिया। इसे बड़े मार्मिक शब्दों में नेताजी ने अपने संदेश में गांधीजी को बताया। "यदि मुझे इसकी थोड़ी भी आशा होती कि विदेश में रहकर काम किए बिना हम अपनी आजादी पा सकते थे, तो मैं भारत कभी नहीं छोड़ता।"[30] जब देखा कि परिस्थितियाँ विपरीत हो रही हैं, तो उन्होंने 15 अगस्त, 1945 को एक विशेष आदेश आजाद हिंद फौज को दिया, "साथियों, मैं यह महसूस करता हूँ कि इस संकट के समय अड़तीस करोड़ भारतीय हमारी, भारत की मुक्ति वाहिनी के सदस्यों की, ओर देख रहे हैं। इसलिए भारत के प्रति सच्चे बने रहिए और एक क्षण के लिए भी भारत के भविष्य में अपना विश्वास मत खोइए। दिल्ली जाने के कई मार्ग हैं और दिल्ली अब भी हमारा लक्ष्य है।"[31] नेताजी ने उसी दिन दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में रह रहे भारतीयों को एक संदेश दिया। उस छोटे से संदेश का अंतिम वाक्य है, "दुनिया की कोई भी ताकत भारत को गुलाम नहीं रख सकती। भारत आजाद होगा और बहुत जल्द होगा।"[32]

यह ऐतिहासिक तथ्य है कि दूसरे विश्व युद्ध के समाप्त होने पर भारत में आजादी की लड़ाई बिखर गई थी। उस समय आजाद हिंद फौज के सैनिक वरदानस्वरूप दिल्ली के लालकिले में पहुँचे। नेताजी का नारा

मोदी सरकार की पहल

नेताजी सुभाष चंद्र बोस के बारे में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की पहल और निर्णयों का विवरण।

1. 23 जनवरी, 2016 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने नेताजी की जयंती पर उनके परिजनों और अपने कैबिनेट के सहयोगियों की उपस्थिति में राष्ट्रीय अभिलेखागार में नेताजी के जीवन से जुड़ी 100 गोपनीय फाइलों को आम लोगों के लिए सार्वजनिक कर दिया। अब तक 400 गोपनीय फाइलें सार्वजनिक कर दी गई हैं। इसकी माँग आजादी के बाद से ही हो रही थी।
2. इन फाइलों से पहली बात निकली कि नेताजी का देहांत विमान दुर्घटना में 18 अगस्त, 1945 को हुआ था। दूसरी बात यह कि नेताजी के अंतिम शब्द थे, 'लोगों को बताना कि मैं अपने देश की आजादी के लिए आखिरी साँस तक लड़ा। उन्हें यह लड़ाई जारी रखनी है और मुझे पूरा भरोसा है कि भारत जल्द ही आजाद हो जाएगा। अब भारत को कोई भी गुलाम बनाकर नहीं रख सकता।'
3. आजाद हिंद सरकार की 75वीं वर्षगाँठ पर 21 अक्टूबर, 2018 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने साल में दूसरी बार लालकिले पर तिरंगा फहराया। ये वही लालकिला है, जहाँ पर विजय परेड का सपना नेताजी ने 75 वर्ष पूर्व देखा था।
4. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 31 दिसंबर, 2018 को अंडमान निकोबार के तीन द्वीपों के नाम बदले। रॉस द्वीप का नाम नेताजी सुभाष चंद्र बोस द्वीप किया गया। नील द्वीप को अब से शहीद द्वीप और हैवलॉक द्वीप को स्वराज द्वीप के नाम से जाना जाएगा।
5. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 23 जनवरी, 2019 को सुभाष चंद्र बोस आपदा प्रबंधन पुरस्कार की शुरुआत। आपदा प्रबंधन के क्षेत्र में व्यक्तिगत और संगठन स्तर पर योगदान को सम्मानित करने के लिए सुभाष चंद्र बोस आपदा प्रबंधन वार्षिक पुरस्कार स्थापित किया गया। नेताजी सुभाष चंद्र बोस की जयंती पर हर साल 23 जनवरी को इस पुरस्कार की घोषणा की जाती है। पुरस्कार के रूप में संस्थान को 51 लाख रुपए नकद तथा एक प्रमाण पत्र एवं व्यक्तिगत स्तर पर 5 लाख रुपए नकद तथा एक प्रमाण पत्र प्रदान किए जाते हैं।
6. 23 जनवरी, 2019 को लालकिले में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने सुभाष चंद्र बोस संग्रहालय का उद्घाटन किया। इस संग्रहालय में सुभाष चंद्र बोस और आजाद हिंद फौज से जुड़ी चीजों को रखा गया है। नेताजी द्वारा इस्तेमाल की गई लकड़ी की कुर्सी और तलवार के अलावा आई.एन.ए. से संबंधित पदक, वर्दी और अन्य वस्तुएँ शामिल हैं। आई.एन.ए. के खिलाफ जो मुकदमा दर्ज किया गया था, उसकी सुनवाई लाल किले में ही हुई थी। इसी के चलते यहाँ पर संग्रहालय बनाया गयाहै।
7. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 21 जनवरी, 2021 को नेताजी सुभाष चंद्र बोस की जयंती को पराक्रम दिवस के रूप में मनाने का ऐलान किया। 23 जनवरी, 2021 को नेताजी सुभाष चंद्र बोस की 125वीं जयंती थी। भारत सरकार के संस्कृति मंत्रालय ने इस बारे में 19 जनवरी, 2021 को अधिसूचना जारी की थी।
8. प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 8 सितंबर, 2022 को इंडिया गेट पर नेताजी सुभाष चंद्र बोस की 28 फुट ऊँची प्रतिमा का अनावरण किया। 23 जनवरी, 2022 को नेताजी की होलोग्राम प्रतिमा का प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अनावरण किया था। अभी जो नेताजी की भव्य प्रतिमा लगाई गई है, वह 280 मीट्रिक टन वनज वाले ग्रेनाइट के एक एकाष्म खंड से उकेरी गई। इस प्रतिमा का वजन 65 मीट्रिक टन है। इस एकाष्म ग्रेनाइट पत्थर को 1665 किलोमीटर की दूरी तय करके तेलंगाना के खम्मम से नई दिल्ली लाने के लिए 140 पहियों वाले और 100 फीट लंबे एक ट्रक को विशेष रूप से डिजाइन किया गया था। प्रधानमंत्री नेताजी की प्रतिमा के अनावरण के लिए पारंपरिक मणिपुरी शंख वाद्यम और केरल के पारंपरिक पंच वाद्यम और चंदा के उद्घोष के बीच छतरी तक पहुँचे। नेताजी की प्रतिमा का अनावरण आजाद हिंद फौज (आई.एन.ए.) के पारंपरिक गीत - कदम-कदम बढ़ाए जा... की धुन के साथ किया गया। सेंट्रल विस्टा एवेन्यू में राष्ट्रपति भवन से इंडिया गेट तक लगभग 101 एकड़ में फैले इस नए रूप में राजपथ के दोनों ओर लॉन शामिल है। अब इसका नाम बदलकर कर्तव्य पथ कर दिया गया है।
9. 23 जनवरी, 2023 को प्रधानमंत्री ने पराक्रम दिवस के मौके पर नेताजी सुभाष चंद्र बोस द्वीप पर बनने वाले नेताजी को समर्पित राष्ट्रीय स्मारक के मॉडल का अनावरण किया। इस दौरान अंडमान और निकोबार में 21 अनाम द्वीपों का नामकरण 21 परमवीर चक्र विजेताओं के नाम पर रखा। नेताजी सुभाष चंद्र बोस को बताया स्वतंत्रता संग्राम के दौरान चमकने वाले ध्रुव तारा।

था, दिल्ली चलो। वह अपने ढंग से साकार हुआ। लाल किले में मुकदमा चला। हर घर में आजाद हिंद फौज और नेताजी की वीरगाथा पहुँच गई। महात्मा गांधी ने भी माना कि "सारा देश जग गया है। एक नई राजनीतिक चेतना ने सेना के नियमित सैनिकों को भी आंदोलित कर दिया है। वे भी आजादी के बारे में सोचने लगे हैं।"[33] नेताजी विमान दुर्घटना में मारे गए, इसे नेताजी के परिवारीजन भी अब स्वीकार करने लगे हैं। नेताजी के प्रपौत्र चंद्र कुमार बोस ने इसे एक दिन बातचीत में स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि "नेताजी की मृत्यु की जाँच के लिए दस आयोग बने हैं। एक ने ही वह भी भ्रमवश रिपोर्ट दी कि नेताजी 1945 की दुर्घटना में बच गए थे। वह मुखर्जी आयोग था।"[34]

आशय यह कि नेताजी पर बनाया गया भ्रम दूर हो गया है। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि "अटल बिहारी वाजपेयी और नरेंद्र मोदी की सरकारों ने नेताजी को राष्ट्रीय जीवन में उनका सम्मान वस्तुत: कायम किया।"[35] ऐसा क्यों नहीं पहले हुआ? इसका सटीक उत्तर शरत चंद्र बोस के पत्र में है - "ज्यादातर प्रमुख कांग्रेसी नेता मेरे भाई के राजनैतिक शत्रु थे और उन्हें नीचा दिखाने की भरपूर कोशिश करते रहे थे।"[36] लेकिन उन्होंने महात्मा गांधी से जो कामना की थी, उसकी ओर ध्यान प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने दिया। नेताजी चाहते थे कि 'अपने प्रयासों, कष्टों, और बलिदान के लिए हम केवल एक ही पुरस्कार चाहते हैं, और वह है भारत की आजादी।'[37] नेहरूकालीन भारत और नरेंद्र मोदीयुगीन भारत का अंतर समझने के लिए नेताजी सुभाष चंद्र बोस का उदाहरण काफी है। नेहरूयुगीन भारत में नेताजी को भुलाने के प्रयास ज्यादा किए गए, याद करने के कम किए।

कोई महान नेता जब इतिहास का अंग हो जाता है तो उसे उसका उचित स्थान कई बार देर से मिलता है। राष्ट्र के जीवन में उसे किस पायदान पर रखा जाना चाहिए, यह प्रश्न उठता तो है, लेकिन उसका निर्धारण इस पर निर्भर करता है कि देश का नेतृत्व कौन कर रहा है, उसकी चिंतन दिशा क्या है, क्या वह अपने महापुरूषों को राजनीति के चश्में से ही देखता है, और क्या वह आत्मविश्वास से भरापूरा है। यह धारणा पक्की हो गई है और इसमें सचाई भी है कि नेताजी सुभाष चंद्र बोस को भारत के राष्ट्रजीवन में अपना उचित स्थान पाने के लिए लंबा इंतजार करना पड़ा है हालांकि वे भारत के जन-जन में शुरू से ही आदर के स्थान पर रहे हैं। लेकिन केंद्र की सरकारों ने उनकी उपेक्षा की है। वे सरकारें नेहरूधारा की रही हैं। पहली बार उन्हें गर्व और गौरव से नरेंद्र मोदी की सरकार ने याद किया। ऐसा भी नहीं है कि किसी समूह ने इसकी माँग की हो। सच यह है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का राष्ट्रनायकों के प्रति एक विजन है। वह कृतज्ञता का है।

वही आधार बना जब नेताजी की 125वीं जयंती आ रही थी तो प्रधानमंत्री ने अपनी पहल पर संस्कृति मंत्रालय को निर्देश दिए। फिर एक सिलसिला शुरू हुआ। उसी क्रम में प्रतीकस्वरूप नेताजी की मूर्ति इंडिया गेट पर लगाई गई है। राजपथ अब कर्तव्य पथ हो गया है। भारत को राष्ट्रीयता का एक नया महातीर्थ उपलब्ध हो गया है। यह आजादी के अमृत महोत्सव काल में संभव हो सका। जो अमृतकाल की संकल्प यात्रा का सूचक है।

संदर्भ

1. नेताजी संपूर्ण वांगमय, खंड-12, भूमिका, पृष्ठ-XIII
2. महात्मा गांधी पूर्णाहुति, प्यारेलाल, खंड-1 पृष्ठ-228,
3. वही
4. वही
5. वही, पृष्ठ-229
6. वही
7. वही
8. वही
9. वही
10. वही
11. वही
12. वही, पृष्ठ-229
13. सुभाष, ए पॉलिटिकल बायोग्राफी, सीतांशु दास
14. नेताजी सुभाष की रहस्यमय कहानी, किंशुक नाग, पृष्ठ-10
15. नेहरू का बयान, सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहरलाल नेहरू, एस. गोपाल, खंड-12, पृष्ठ-262-263
16. नेताजी संपूर्ण वांगमय, खंड- 11, पृष्ठ-97
17. बोस बंधु और भारतीय स्वतंत्रता, एक करीबी का विवरण, माधुरी बोस, पृष्ठ-218
18. वही, पृष्ठ-218
19. नेताजी संपूर्ण वांङ्मय, खंड-12, हमारे राष्ट्रपिता, महात्मा गांधी को संदेश, पृष्ठ-203
20. वही, पृष्ठ-206-207
21. सुभाष, ए पॉलिटिकल बायोग्राफी, सीतांशु दास, पृष्ठ-556
22. बोस बंधु और भारतीय स्वतंत्रता, एक करीबी का विवरण, माधुरी बोस, पृष्ठ-XIII
23. नेताजी संपूर्ण वांङ्मय, खंड-12 स्तत्रंता प्रेमी भारतीयों का रक्त, टोकियो से प्रसारण, जून 1943, पृष्ठ- 12
24. नेताजी सुभाष की रहस्यमय कहानी, किंशुक नाग, पृष्ठ-12
25. वही, पृष्ठ-14
26. नेताजी संपूर्ण वांङ्मय, खंड-2, अध्याय-22, पृष्ठ-271-272
27. वही, पृष्ठ-271-272
28. वही, पृष्ठ-271-272
29. वही, पृष्ठ-271-272
30. नेताजी संपूर्ण वांङ्मय, खंड-12, पृष्ठ-201
31. नेताजी संपूर्ण वांङ्मय, खंड-12, पृष्ठ-396-397
32. वही, पृष्ठ-398
33. महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी, खंड-VII, 1945 से 1947, डी.जी तेंदुलकर (नई दिल्ली-प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पुनर्मुद्रण, 1988) पृष्ठ-113
34. चंद्र कुमार बोस से इसी माह लेखक की फोन पर बातचीत के अंश
35. वही
36. बोस बंधु और भारतीय स्वतंत्रता, एक करीबी का विवरण, 10 अप्रैल, 1948 को मैडम शेंकल को लिखे पत्र का अंश, पृष्ठ-230
37. नेताजी संपूर्ण वांगमय, खंड-12, हमारे राष्ट्रपिता, महात्मा गांधी को संदेश, 6 जुलाई, 1944 को प्रसारित, पृष्ठ-207

डॉ. हरवंश दीक्षित

आजाद हिंद फौज का मुकदमा

दिल्ली के लाल किले में सन् 1945 में आजाद हिंद फौज के वीर सिपाहियों पर चला मुकदमा केवल अंतरराष्ट्रीय कानून ही नहीं, जनभावनाओं की भूमिका के लिहाज से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इस मुकदमे और स्वतंत्रता से ठीक पहले की घटनाओं पर एक दृष्टि

पाँच नवंबर 1945 की सुबह आम दिनों की ही तरह थी। दिल्ली का लाल किला भी उसी तरह खड़ा था जिस तरह पिछले 300 वर्षों से था। अंतर था तो यह कि लाल किले की प्राचीरें एक अलग तरह के मुकदमे की साक्षी बनने जा रही थीं। वहाँ उस मुकदमे की शुरुआत होने जा रही थी जिसे हम आजाद हिंद फौज के मुकदमे का नाम देते हैं। यह दूसरे मुकदमों से कई मायने में अलग था। यह कैप्टन शाहनवाज खान, कैप्टन प्रेम कुमार सहगल तथा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह ढिल्लो के खिलाफ आर्मी ऐक्ट के अधीन चलाए जाने वाली कोर्ट मार्शल की कार्यवाही मात्र नहीं थी। यह राष्ट्रीयता की प्रतीक थी। जनमानस की दृष्टि में तथाकथित अभियुक्तों की छवि उनके सर्वोच्च नायकों की तरह थी। जनता उन्हें आजादी के संघर्ष का प्रतीक मानती थी। मुकदमे की कार्यवाही की लोकप्रियता का आलम यह था कि लोग रोज की कार्यवाही की खबर जानने के लिए उतावले रहते थे। अखबारों ने उन पर नियमित रूप से लेख और समाचार देना शुरू कर दिया। बचाव पक्ष के वकीलों में से एक पंडित जवाहर लाल नेहरू का मानना था कि किसी अदालती कार्यवाही ने आम जनता का ध्यान इस तरह से आकृष्ट नहीं किया जितना इस मुकदमे ने किया था -

"भारत में कभी भी किसी सैन्य या दीवानी मुकदमे ने जनता की न तो इतनी अभिरुचि जागृत की जितनी इस मुकदमे ने की, न ही कभी राष्ट्रीय हित के इतने महत्वपूर्ण बिंदुओं पर कभी चर्चा हुई। कानूनी प्रश्न इतने महत्वपूर्ण जरूर थे कि वे अंतरराष्ट्रीय कानून के अस्पष्ट सिद्धांतों से ताल्लुक रखते थे किंतु कानून के तकनीकी पक्ष के पीछे कुछ ऐसा था जो बहुत गहरा और अत्यंत महत्पूर्ण था। वह ऐसा कुछ था जिसने भारतीय मन के अचेतन हिस्से को झकझोर दिया। आजाद हिंद फौज, हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई की प्रतीक बन गई। बाकी सब कानूनी मुद्दे हल्के पड़ गए, यहाँ तक कि उन तीनों के व्यक्तित्व भी धुँधले पड़ गए जिनके खिलाफ ऐसे अपराध के लिए मुकदमा चल रहा था जिसमें सजा-ए-मौत भी हो सकती थी। मुकदमे की कार्यवाही भारत बनाम इंग्लैंड के पारंपरिक विवाद का जीवंत प्रस्तुति बन गया। यद्यपि इसमें तमाम जटिल कानूनी विषय भी थे लेकिन मात्र उन तकनीकी बिंदुओं पर बहस होने के बजाय भारतीयों और शासन करने वाले लोगों की इच्छा शक्ति की जोर-आजमाइश था। और अंत में भारतीयों की इच्छाशक्ति को विजय मिली।"[1]

आजाद हिंद फौज का मुकदमा किसी एक पंथ या संप्रदाय का मुकदमा नहीं अपितु भारतीय गौरव की लड़ाई का मुकदमा बन गया था। नेताजी सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिंद फौज की स्थापना हुई थी। इसका उद्देश्य भारत को स्वतंत्र कराना था। एक समय ऐसा भी आया जब विजय अत्यंत पास लगने लगी थी किंतु हिरोशिमा पर परमाणु बम गिराए जाने के बाद परिस्थितियाँ बिल्कुल बदल गईं। प्रतिरोध समाप्त हो गया। आजाद हिंद फौज को जापानी सेना के साथ ही हथियार डालने पड़े।

कैप्टन प्रेम सहगल, कैप्टेन शाहनवाज खान तथा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह ढिल्लों मूलतः ब्रिटिश इंडियन आर्मी के अधिकारी थे। सन् 1943 में वे नेताजी सुभाष चंद्र बोस द्वारा स्थापित आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए थे। नेताजी द्वारा निर्वासन में सरकार की स्थापना करने के बाद उसे जर्मनी, इटली, क्रोएशिया तथा थाईलैंड सहित कुछ देशों द्वारा मान्यता भी दे दी गई थी। उन्हें अंडमान और निकोबार का अधिकार भी दे दिया गया था। इसी आजाद हिंद फौज के अधिकारी के रूप में सेवा करते हुए तीनों अधिकारियों को युद्धबंदी बना लिया गया और उन पर कोर्ट मार्शल की कार्यवाही करने का निर्णय लिया गया।

ब्रिटिश सरकार ने उन पर पारंपरिक कोर्टमार्शल के बजाय सार्वजनिक मुकदमा चलाने का निर्णय लिया।

इसके राजनैतिक और सामाजिक महत्व को देखते हुए इसे लाल किले में चलाने का निर्णय लिया गया। इस मुकदमे से जुड़े विषयों के कानूनी, सामाजिक व राजनैतिक महत्व को देखते हुए इंडियन आर्मी ऐक्ट के नियम 82(क) के अंतर्गत अभियोजन तथा प्रतिरक्षा के लिए वकील नियुक्त करने की व्यवस्था की गई। भारत सरकार के तत्कालीन एटार्नी जनरल सर एन. पी. इंजीनियर को सरकार की और से पैरवी करने के लिए नियुक्त किया गया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने आजाद हिंद फौज का साथ देने का निर्णय लिया। इसके लिए सन् 1945 में कांग्रेस ने आजाद हिंद फौज प्रतिरक्षा समिति का गठन किया। बचाव पक्ष की ओर से मुकदमा लड़ने के लिए उस समय के सभी नामी गिरामी लोगों की टीम बनायी गई; जिसमें सर्वश्री भूलाभाई देसाई, आसिफ अली, शरत चंद्र बोस, जवाहर लाल नेहरू, तेज बहादुर सप्रू, कैलाश नाथ काटजू और होरीलाल वर्मा जैसे लोग शामिल थे।

कैप्टन शाहनवाज खान, कैप्टन प्रेम कुमार सहगल तथा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह ढिल्लो पर, हिज मैजेस्टी, किंग एंपरर आफ इंडिया के खिलाफ युद्ध छेड़ने का आरोप था। इसके अलावा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह पर हरी सिंह, दुली चंद, दुर्याव सिंह तथा धरम सिंह की हत्या करने का भी आरोप था। तीनों अभियुक्तों के विरुद्ध आरोप पत्र दायर किया गया जिसमें कुल दस आरोप थे।

आरोप सं. 1: कैप्टन शाहनवाज खान, कैप्टन पी.के. सहगल तथा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह ढिल्लों पर सितंबर 1942 से 26 अप्रैल 1945 के बीच मलाया तथा बर्मा में हत्याएँ करना तथा हिज मैजेस्टी दी किंग एंपरर ऑफ इंडिया के खिलाफ युद्ध छेड़ने का आरोप

आरोप सं. 2: यह आरोप केवल लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह के खिलाफ था जिसमें उनके ऊपर इंडियन आर्मी ऐक्ट की धारा 41 तथा बर्मा में पोपा पहाड़ियों में या उसके आसपास 6 मार्च 1945 या उसके आसपास हरी सिंह की हत्या करने के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आरोप।

आरोप सं. 3: यह आरोप केवल कैप्टेन पी. के. सहगल के खिलाफ था। इंडियन आर्मी ऐक्ट की धारा 41 तथा बर्मा की पोपा पहाड़ियों या उसके आसपास 6 मार्च 1945 को या उसके आसपास हरि सिंह की हत्या करने के लिए लेफ्टिनेंट ढिल्लो को उकसाने के लिए भारतीय दंड संहिता के अंतर्गत धारा 109/302 के अंतर्गत आरोप।

आरोप सं. 4: यह आरोप केवल लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह ढिल्लो के विरुद्ध था। इंडियन आर्मी ऐक्ट की धारा 41 तथा बर्मा की पोपा पहाड़ियों या उसके आसपास 16 मार्च 1945 को या उसके आसपास दुलीचंद की हत्या करने के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अपराध का आरोप।

आरोप सं. 5: यह आरोप केवल कैप्टेन सहगल के खिलाफ था। इंडियन आर्मी ऐक्ट की धारा 41 तथा बर्मा की पोपा पहाड़ियों या उसके आसपास 6 मार्च या उसके आसपास ले. गुरुबख्श सिंह ढिल्लो को दुलीचंद की हत्या करने के लिए उकसाने के आधार पर भारतीय दंड सहिंता की धारा 109/302 के अंतर्गत आरोप।

आरोप सं. 6: यह आरोप केवल लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह के खिलाफ था। इंडियन आर्मी ऐक्ट की धारा 41 तथा बर्मा की पोपा पहाड़ियों या या उसके आसपास 6 मार्च 1945 या उसके आसपास दर्याव सिंह की हत्या करने के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत आरोप।

आरोप सं. 7: यह आरोप केवल कैप्टन सहगल के विरुद्ध था। इंडियन आर्मी ऐक्ट की धारा 41 तथा बर्मा की पोपा पहाड़ियों में या उनके आसपास, 6 मार्च 1945 को या उसके आसपास, लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह को दर्याव सिंह की हत्या के लिए उकसाने के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 109/302 के अंतर्गत आरोप।

आरोप सं. 8: यह आरोप केवल लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह ढिल्लों के खिलाफ था। इंडियन आर्मी ऐक्ट की धारा 41 के अलावा, बर्मा की पोपा पहाड़ियों के या उसके आसपास, 6 मार्च 1945 को या उसके आसपास धरम सिंह की हत्या करने के कारण भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए आरोप।

आरोप सं. 9: यह आरोप केवल कैप्टेन पी. के. सहगल के खिलाफ था। इंडियन आर्मी ऐक्ट की धारा 41 तथा बर्मा की पोपा पहाड़ियों या उनके आसपास 6 मार्च 1945 को या उसके आसपास लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह ढिल्लों को धरम सिंह की हत्या करने के लिए उकसाने के कारण भारतीय दंड संहिता की धारा 109/302 के अंतर्गत दंडनीय अपराध के लिए आरोप।

आरोप सं. 10: यह आरोप केवल कैप्टन शाहनवाज खान के विरुद्ध था। इंडियन आर्मी ऐक्ट की धारा 41 के अलावा, बर्मा की पोपा पहाड़ियों में या उनके आसपास 29 मार्च 1945 को या उसके आसपास गनर मुहम्मद हुसैन की हत्या के लिए खाजिन शाह तथा अया सिंह को उकसाने के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 109/302 के अंतर्गत अपराध कारित करने के लिए आरोप।

(नोट - इंडियन आर्मी ऐक्ट 1991 की धारा 41 के अंतर्गत यह व्यवस्था थी कि भारतीय सेना का कोई सदस्य यदि कोई अपराध करता है तो उसके ऊपर कोर्ट मार्शल की अदालत में उसी प्रकार मुकदमा चलाया जा सकता है जैसे कि सिविल अदालत में चल सकता था)

कैप्टन शाहनवाज खान, कैप्टन पी.के. सहगल

तथा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह ने अपने को दोषी मानने से इनकार कर दिया और मुकदमे की पैरवी में भाग लेने का निर्णय लिया।

आजाद हिंद फौज का मुकदमा कई मामलों में आम मुकदमों से अलग था। यह कानून के तकनीकी निर्वचन और उसके निर्णय तक सीमित नहीं था। इसका गहारा राजनैतिक, सामाजिक और अंतरराष्ट्रीय प्रभाव-क्षेत्र था। सन् 1945 के कालखंड में पूरी दुनिया में आजादी का प्रचंड आभामंडल तैयार हो चुका था। द्वितीय विश्वयुद्ध में परमाणु बम के प्रयोग ने मित्र राष्ट्रों के नैतिक प्रभाव को निस्तेज कर दिया था। ब्रिटेन का प्रभाव भी क्षीण हो रहा था। अंतरराष्ट्रीय कानून में आजादी के लिए संघर्षरत समूहों को मान्यता दी जा रही थी। ऐसे समय में आजाद हिंद फौज की ओर से मुख्य दलील यह थी कि वे ब्रिटिश शासक के अधीन नहीं, अपितु अपनी सरकार के लिए युद्ध कर रहे थे। इसलिए उनके ऊपर न तो राजद्रोह का मुकदमा चलाया जा सकता था और न ही उनके खिलाफ कोर्ट मार्शल की अदालत में मुकदमा चल सकता था।

आम तौर पर कोर्ट मार्शल की प्रक्रिया सिविल अदालतों की पारंपरिक तकनीकियों की पाबंद नहीं होती लेकिन इस मुकदमे की कार्यवाही में सभी प्रक्रियात्मक सिद्धांतों का पालन किया गया। सरकार की ओर से अभियोजन पक्ष को अपनी बात कहने का मौका देने के बाद बचाव पक्ष को अपना पक्ष रखने का मौका मिला। गवाहों से जिरह और फिर बहस का भी सभी पक्षों को पूरा मौका मिला।

अभियोजन का पक्ष तत्कालीन एटार्नी जनरल सर एन. पी. इंजीनियर को रखना था। उन्होंने इंडियन इंडिपेंडेंस लीग और आजाद हिंद फौज की स्थापना का सिलसिलेवार ब्यौरा देकर यह साबित करने का प्रयास किया कि तीनों अभियुक्त हिज मैजेस्टी की सेवा में उनकी फौज के अधिकारी थे। इसलिए उनके द्वारा किया गया कार्य राजद्रोह माना जाए तथा दूसरे आपराधिक मामलों में भी इसी न्यायाधिकरण द्वारा विचार करके कठोर सजा दी जाए। अपने पक्ष को साबित करने के लिए सरकार की ओर से कुल 30 साक्षियों को पेश किया गया। उनका बयान लेने के बाद बचाव पक्ष की ओर से जिरह की गई और तीनों अभियुक्तों के बयान लिए गए।

कैप्टन शाहनवाज खान ने उन परिस्थितियों का सिलसिलेवार वर्णन किया जिसमें आजाद हिंद फौज की स्थापना हुई और वे उसमें शामिल हुए। उन्होंने कहा कि मेरे सामने दो ही विकल्प थे कि मैं ब्रिटेन के राजा का पक्ष लूँ या अपने देश के लिए काम करूँ। मैंने अपने देश को चुना और नेताजी सुभाष चंद्र बोस को दिए गए अपने वचन को निभाया कि मैं अपने देश के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर दूँगा। कैप्टन शाहनवाज खान ने इस बात को स्वीकार किया कि उन्होंने ब्रिटिश आर्मी के खिलाफ युद्ध में हिस्सा लिया है लेकिन उन्होंने स्पष्ट किया कि उन्होंने अपनी सरकार की नियमित सेना के सदस्य के रूप में भाग लिया और अपने देश को पूरी तरह आजाद करने के लिए युद्ध लड़ा। उन्होंने यह भी कहा कि युद्ध के दौरान उन्होंने युद्ध के नियमों का पालन किया है और चूँकि वे एक देश की नियमित फौज के हिस्से के रूप में युद्ध किया है, इसलिए इस अदालत को उन पर मुकदमा चलाने का अधिकार नहीं है।

कैप्टन पी.के. सहगल ने भी अदालत के क्षेत्राधिकार को चुनौती देते हुए कहा कि उस अदालत को उनके ऊपर मुकदमा चलाने का कोई अधिकार नहीं है। उन्होंने स्पष्ट किया कि वे आजाद हिंद फौज में किसी दबाव या लालच की वजह से शामिल नहीं हुए थे अपितु अपनी मातृभूमि को आजाद कराने के लिए शामिल हुए। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि आजाद हिंद फौज में उन्हें केवल 80 डालर प्रतिमाह मिलते थे जबकि यदि वे ब्रिटिश सरकार की फौज में रहे होते तो उन्हें 120 डालर प्रतिमाह मिलते। उन्होंने कहा कि वे अपने देशभक्ति के उदात्त भावों के अनुरूप आजाद हिंद फौज में अपनी मातृभूमि के लिए अपना खून देने के लिए शामिल हुए थे। कैप्टन सहगल ने अपने बयान में यह साफ किया कि उन्होंने अपने स्ततंत्र देश की अस्थाई सरकार की नियमित सेना के सदस्य रूप में युद्ध में भाग लिया और सभ्य देशों द्वारा स्वीकार किए गए युद्ध के सभी नियमों का पालन किया। इसलिए उन्होंने कोई अपराध नहीं किया है, बल्कि इसके ठीक उलट उन्होंने पूरी क्षमता से अपने राष्ट्र की सेवा की।

कैप्टन शाहनवाज खान तथा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह ने भी अदालत के क्षेत्राधिकार पर सवाल उठाते हुए उन परिस्थितियों को स्पष्ट किया जिसमें वे आजाद हिंद फौज में शामिल हुए। उन्होंने कहा कि उन्होंने जो कुछ भी किया वह स्वतंत्र देश की अस्थाई सरकार के नियमित फौज के अधिकारी के रूप में किया इसलिए उन्होंने न तो कोई अपराध किया और न ही उस अदालत को उन पर मुकदमा चलाने का अधिकार ही है।

लाल किले में जिस समय आजाद हिंद फौज का मुकदमा चल रहा था उस समय उसके पक्ष में पूरे देश में प्रदर्शन हो रहे थे। लाल किले के सामने कांग्रेस का तिरंगा और मुस्लिम लीग का हरे रंग का झंडा - दोनों एक साथ देखे जाते थे। "आजाद हिंद फौज के देशभक्तों को रिहा करो" तथा "वे देशभक्त हैं - देशद्रोही नहीं" जैसे बैनर लेकर प्रदर्शन हो रहे थे। पूरा देश एकजुट होकर आजाद हिंद फौज के पक्ष में खड़ा हो गया था। कोलकाता इस तरह के प्रदर्शनों का केंद्र बिंदु था किंतु दक्षिण भारत भी इससे अछूता नहीं था। मदुरई में प्रदर्शनकारियों को नियंत्रित करने के लिए पुलिस को गोली चलानी पड़ी जिसमें पाँच लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। कोलकाता सहित अन्य शहरों में भी प्रदर्शनकारियों पर पुलिस को गोली चलानी पड़ी। 23 नवंबर 1945 तक देशभर में पुलिस की गोली से 97 प्रदर्शनकारियों की मौत हो चुकी थी।[2]

अभियोजन पक्ष द्वारा साक्ष्य पेश करने के बाद अब बचाव पक्ष को अपनी दलीलें देनी थीं। आजाद हिंद फौज की ओर से पैरवी करने के लिए अदालत में उस समय 16 वकील थे जिनका नेतृत्व भूलाभाई जे. देसाई द्वारा किया गया। शुरुआत करते हुए उन्होंने कहा कि मूल प्रश्न यह है कि अभियुक्तगण इंडियन आर्मी ऐक्ट के अंतर्गत राजद्रोही हैं या आजाद हिंद फौज कानून के अंतर्गत उसके सिपाही और ऐसे स्वतंत्र देश के नागरिक हैं जिन्हें अपने देश की ओर से युद्ध में भाग लेने का अधिकार है। उनके शब्दों में, "अदालत के सामने विचारण का मूल प्रश्न यह है कि किसी देश के नागरिक को अपनी आजादी के लिए युद्ध की घोषणा का अधिकार है या नहीं। मैं अंतरराष्ट्रीय कानून के अधिकृत स्रोतों के माध्यम से यह साबित करूँगा कि कोई देश या उसका कोई भाग कभी ऐसे मुकाम पर पहुँचता है जब उसे अपनी आजादी के लिए युद्ध छेड़ने का अधिकार होता है।"[3]

अपने तर्कों को आगे बढ़ाते हुए भूलाभाई देसाई ने कहा - "आजाद हिंद फौज, एंग्लो-अमेरिकन आजादी के उदात्त सिद्धांतों के अनुरूप स्वप्रेरित रूप में विकसित हुई। आजाद हिंद फौज और उसकी मातृसंस्था 'आजाद हिंद की अस्थाई सरकार' अंतरराष्ट्रीय

कानून के अंतर्गत स्वतंत्र राज्य और उसकी फौज की परिभाषा में आते हैं। इसी कानून के अंतर्गत 'आजाद हिंद की सरकार' को फौज रखने का, प्रशासन करने तथा राजनयिक संबंध विकसित करने का अधिकार था। भूलाभाई देसाई ने अपने तर्कों को आगे बढ़ाते हुए साबित करने का प्रयास किया कि अंतरराष्ट्रीय कानून के स्थापित सिद्धांतों के आधार पर आजाद हिंद फौज को उस देश की फौज के रूप में मान्यता मिलनी चाहिए। उन्हें जापानी प्रभुत्व से अलग एक ऐसे स्वतंत्र निकाय के रूप में स्वीकार किए जाने के योग्य हैं जो राज्य अंतरराष्ट्रीय कानून में स्वतंत्र राज्य और फौज के रूप में युद्ध कर सकें तथा प्रशासनिक व राजनयिक गतिविधियों को अंजाम दे सकें।"[4]

आजाद हिंद फौज की ओर से उनके वकील भूलाभाई देसाई ने उन आरोपों को सिरे से खारिज कर दिया कि अभियुक्त अधिकारियों ने अपने ही लोगों के खिलाफ ज्यादती की, अत्याचार किया। जो भी तथाकथित अत्याचार उनके द्वारा तथाकथित रूप से किया गया वह सभी, 'आजाद हिंद फौज कानून' के अंतर्गत दी गई सजा थी। 'आजाद हिंद फौज कानून' अमेरिका के 'यूनिफार्म कोड आफ मिलिट्री जस्टिस' के समतुल्य था जो किसी भी फौज के लिए जरूरी कानून होता है।

'आजाद हिंद फौज कानून' को 'इंडियन आर्मी ऐक्ट की तर्ज पर बनाया गया था। भूलाभाई देसाई ने कहा कि इस अदालत के सामने 'आजादी हिंद फौज अधिनियम और उसकी प्रतिष्ठा' दाँव पर लगी है। उपनिवेशवाद विरोधी अमेरिकी प्रेक्षकों को इंगित करते हुए उन्होंने कहा कि आजाद हिंद फौज का वही उद्देश्य था जो ब्रिटिश दमन का विरोध करने वाली जॉर्ज वाशिंगटन की कांटिनेंटल आर्मी का था।[5]

कैप्टन शाहनवाज कैप्टन सहगल तथा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह को कोर्ट मार्शल के मुकदमे की कार्यवाही 3 जनवरी 1946 को पूरी हो गई। कैप्टन शाहनवाज खान, कैप्टन सहगल तथा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह पर सम्राट के विरुद्ध युद्ध शुरू करने का आरोप था। इसके अलावा लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह पर हत्या करने तथा कैप्टन शाहनवाज और कैप्टन सहगल पर हत्या को उकसाने का भी आरोप था। सभी तथ्यों व साक्ष्यों तथा कानूनी दलीलों को सुनने के बाद अदालत ने तीनों अभियुक्त अधिकारियों को सम्राट के खिलाफ युद्ध छेड़ने के आरोप का दोषी पाया। इसके अलावा कैप्टन शहनवाज खान को हत्या के अपराध को उकसाने के लिए भी दोषी पाया गया जबकि लेफ्टिनेंट गुरुबख्श सिंह को हत्या के आरोप से तथा कैप्टन सहगल को हत्या के लिए उकसाने के आरोप से बरी कर दिया गया।[6] सम्राट के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के अपराध का दोषी पाए जाने के बाद दो विकल्प थे। उन्हें या तो शेष जीवन के लिए देशनिकाला कर देना या फायरिंग दस्ते द्वारा गोलियों से भूनकर मृत्युदंड दे देना। इस मामले में अदालत ने उदार रुख अपनाते हुए तीनों अधिकारियों को शेष जीवन के लिए देश निकाला, नौकरी से बर्खास्तगी तथा वेतन व भत्तों को जब्त किए जाने की सजा सुनाई।

कोर्ट मार्शल द्वारा दिया गया निर्णय या सजा तब तक अंतिम नहीं मानी जाती जब तक कि 'कन्फर्मिंग आफिसर' द्वारा उसकी पुष्टि न हो जाए। आजाद हिंद फौज के मुकदमे के मामले में 'कन्फर्मिंग आफिसर' का अधिकार कमांडर इन चीफ, फील्ड मार्शल सर क्लाउड आचिनलेक के पास था। वे आजाद हिंद फौज के प्रति आम भारतीय के सम्मान-भाव से सुपरिचित थे। इसके अलावा वे उन कुछ गोरे अधिकारियों में से थे जिन्हें भारतीयों की आजादी की आकांक्षा के प्रति समानुभूति का भाव था। भारतीय सेना के अधिकारी के रूप में अपने अनुभव के आधार पर वे मानते थे कि हर भारतीय अधिकारी राष्ट्रवादी है, जो सही भी है। सर आचिनलेक ने अपने अनुभव और भारतीय जनमानस को ध्यान में रखते हुए यह महसूस किया कि ब्रिटिश राज के हित में जरूरी है कि भारतीयों की आकांक्षाओं को नजरअंदाज न किया जाए। इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने कैप्टन शाहनवाज खान, कैप्टन सहगल तथा लेफ्टिनेंट जी.एस. ढिल्लों को दी गई सजा को स्थगित कर दिया। उन्हें छोड़ दिया गया किंतु फौज से बर्खास्त कर दिया गया। पूरे देश ने इस निर्णय का स्वागत किया।

आजाद हिंद फौज के मुकदमे ने भारतीयों की स्वतंत्रता की आकांक्षा को पहले से भी अधिक मजबूत कर दिया। अदालत की कार्यवाही की रिपोर्टिंग ने समाज में अलग तरह की जागरूकता पैदा कर दी। यह मुकदमा बहुत संतुलित तरीके से पूरी निष्पक्षता के साथ चलाया गया। अदालत के सामने कानून की बारीकियों पर व्यापक बहस हुई। इससे ब्रिटिश राज की न्यायप्रियता के प्रति लोगों में भरोसा बढ़ा किंतु आजादी के प्रति लोगों की आकांक्षा में कोई कमी नहीं आई। बल्कि वह पहले से भी अधिक तीव्र हो गई। इसी बीच फरवरी 1946 में रॉयल इंडियन नेवी में विद्रोह हो गया, जिसमें 20000 लोगों ने भाग लिया। ब्रिटिश राज के लिए यह बहुत बड़ा झटका था। उन्होंने महसूस कर लिया कि भारतीयों पर शासन जारी रखना संभव नहीं रहा। इस बात पर बहस की पूरी गुंजाइश है कि आजादी की लड़ाई में विजय किसके कारण मिली किंतु 1947 में ब्रिटेन के प्रधानमंत्री रहे क्लीमेंट एटली का कथन बहुत महत्वपूर्ण है। सन् 1956 में उन्होंने कहा था कि "ब्रिटेन के भारत छोड़ने में गाँधी के सविनय अवज्ञा आंदोलनों का नहीं, अपितु आजाद हिंद फौज की सबसे बड़ी भूमिका थी।"[7]

संदर्भ

1. बी.आर. अग्रवाल, 'ट्रायल्स आफ इंडिपेंडेंस 1858-1946' (नेशनल बुक ट्रस्ट: भारत, 1991) पृ. 156-157
2. द हिंदू, नवंबर 7, 1945 पृ. 4
3. एल.सी. ग्रीन, 'द इंडियन नेशनल आर्मी ट्रायल्स', माडर्न ला रिव्यू 11 (जनवरी 1948): पृ. 56
4. उपरोक्त, 55
5. भूलाभाई देसाई, 'आई.एन.ए. डिफेंस (दिल्ली, भारत: आई.एन.ए. डिफेंस कमेटी, 1954)', पृ. 78-82
6. मोतीराम, 'टू हिस्टोरिक ट्रायल्स ऐट रेडफोर्ट: ऐन आथेंटिक अकाउंट ऑफ द ट्रायल बाई जनरल कोर्ट मार्शल आफ कैप्टन शाहनवाज खान, कैप्टन पी.के. सहगल एंड लेफ्टिनेंट जी. एस. ढिल्लो, एंड ट्रायल बाई ए यूरोपियन मिलिटरी कमीशन आफ एंपरर बहादुर शाह'' (दिल्ली, भारत: शक्सी, 1946), 304
7. डेविड टामिल्सन, 'हाऊ एक्यूरेट वाज क्लीमेंट एटली, इन हिज असर्सन दैट दी इंडियन नेशनल आर्मी वाज द प्रीन्सिपल रीजन रीजन फार ब्रिटेन्स विथड्राल फाम इंडिया इन 1947?' अनपब्लिश्ड बी.ए. आनर्स पेपर्स (यूनिवर्सिटी आफ लीड्स, यू.के. 2013), 2

डॉ. चंद्रपाल सिंह

एक योद्धा की तीर्थयात्रा आध्यात्मिक व्यक्तित्व

बाहरी दुनिया में सुभाष चंद्र बोस का संघर्ष जितना महत्त्वपूर्ण है, उनकी बनावट में उनके आत्मसंघर्ष की भूमिका उससे भी कहीं अधिक मूल्यवान है। उनकी अंतर्यात्रा पर एक शोधपूर्ण दृष्टि

नवंबर 1937 में, कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में अपना कार्यभार संभालने से पहले, सुभाष चंद्र बोस एमिली शेंकल के साथ ऑस्ट्रिया में अपने पसंदीदा स्वास्थ्य केंद्र बडगास्टीन में कुछ सप्ताह बिताने के लिए यूरोप की यात्रा पर गए। वहाँ दिसंबर 1937 में दस दिनों के दौरान उन्होंने 'एन इंडियन पिलग्रिमः सुभाष चंद्र बोस'[1] नामक अपनी अधूरी आत्मकथा के दस अध्याय लिखे। उनकी आत्मकथा के शीर्षक में 'तीर्थयात्री' शब्द यह स्पष्ट करता है कि सुभाष चंद्र बोस अपनी जीवन यात्रा को एक तीर्थयात्रा के रूप में देखते थे। एक 'तीर्थयात्री', जैसा कि उन्होंने स्वयं के बारे में कहा, सही मायने में एक साधक होता है जो जानबूझकर कठिनाइयों का रास्ता चुनता है और अपने गंतव्य तक पहुँचने के लिए स्वैच्छिक कष्ट और बलिदान सहन करता है। यह आम जानकारी की बात है कि भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गांधीजी के रूप में एक महात्मा थे। लेकिन यह बात कम ही लोग जानते हैं कि सुभाष चंद्र बोस न केवल एक ऐसे योद्धा थे, जिन्होंने भारतीय राष्ट्रीय सेना द्वारा शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य को सैनिक चुनौती देने का साहस किया, बल्कि एक ऐसे नेता भी थे, जिन्होंने आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण किया और विवेकानंद की तरह, अपने लिए मोक्ष को त्याग अपना जीवन मातृभूमि की सेवा में समर्पित कर दिया। इस लेख के माध्यम से योद्धा सुभाष की तीर्थयात्रा या आध्यात्मिक यात्रा का वर्णन करने का प्रयास किया गया है, जो अधिकतर उनकी अधूरी आत्मकथा और पत्रों के माध्यम से उनके अपने शब्दों में है।

पारिवारिक परिवेश

सुभाष का जन्म एक संपन्न और बड़े परिवार में हुआ था जिसमें कई सगे और चचेरे भाई-बहन, चाचा और नौकर आदि थे। बालक सुभाष को कभी-कभी भीड़ में खोया हुआ सा महसूस होता था लेकिन बड़े परिवार में रहने से उन्हें सामाजिकता विकसित करने और आत्मकेंद्रितता से बचने में भी मदद मिली। हालाँकि, जैसा कि उन्होंने लिखा, सुभाष अपना शर्मीलापन नहीं त्याग सके और वे अंतर्मुखी ही रहे। उनके पिता कटक के जाने-माने वकील थे, उन्हें 1912 में राय बहादुर की उपाधि मिली थी, जिसे उन्होंने अंग्रेज सरकार की दमनकारी नीति के विरोध में 1930 में त्याग दिया था। सुभाष इस बात पर गर्व कर सकते थे कि पिता और माता दोनों की ओर से उनके पारिवारिक संबंधियों में कई प्रमुख लोग उच्च सरकारी और प्रशासनिक पदों पर आसीन थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि सुभाष के पास प्रेरणा लेने के लिए बहुत कुछ अपने आसपास ही था। "मैंने जीवन की शुरुआत एक विनीत भाव के साथ की - इस भावना के साथ कि मुझे उस ऊँचाई को तो प्राप्त करना ही है जो मेरे परिवार के बड़ों ने प्राप्त की है।"[2] यह उल्लेखनीय है कि भौतिक रूप से संपन्न कुल में जन्मे सुभाष ने बड़े होने पर त्याग और कष्ट का मार्ग चुन लिया।

बचपन

अपने बड़े भाइयों और बहनों की तरह, सुभाष को एक मिशनरी स्कूल में भर्ती कराया गया, जो मुख्य रूप से यूरोपीय और आंग्ल-भारतीय बच्चों के लिए था। इस स्कूल में भारतीयों के लिए सीटें सीमित थीं। जैसा कि सुभाष ने लिखा, उनके परिवार के बच्चों के लिए इस स्कूल को इसलिए चुना गया था ताकि वे "दूसरे स्कूलों की अपेक्षा वहाँ अंग्रेजी भाषा में बेहतर और जल्दी महारत हासिल कर सकेंगे, ... उन दिनों अंग्रेजी

का ज्ञान रखना बड़ी विशेष बात समझी जाती थी।"[3] यह स्कूल ब्रिटिश स्कूलों की तर्ज पर चलता था। पाठ्यक्रम इस प्रकार तैयार किया गया था कि विद्यार्थियों की मानसिक संरचना यथासंभव अंग्रेजों जैसी हो। उन्हें ग्रेट ब्रिटेन के इतिहास और भूगोल के बारे में तो बहुत कुछ सिखाया जाता था लेकिन आनुपातिक रूप से भारत के बारे में बहुत कम पढ़ाया जाता था। स्कूल में कोई भी भारतीय भाषा नहीं पढ़ाई जाती थी और यहाँ तक कि भारतीय नामों का उच्चारण भी ऐसे किया जाता था मानो छात्र विदेशी हों। लेकिन जैसा कि बाद में सुभाष ने लिखा,

"कुछ वर्षों तक सभी कुछ सहज ढंग से चलता रहा और ऐसा प्रतीत होने लगा कि हम सब अपने नए परिवेश में भली-भाँति रम गए हैं, लेकिन फिर क्रमश: वातावरण में एक प्रकार की विषमता प्रवेश करने लगी। कुछ ऐसा हुआ जिसने हमें हमारे परिवेश से अलग कर दिया... हम दो अलग-अलग संसारों में रह रहे थे और जैसे-जैसे हमारी चेतना विकसित हुई, हमें धीरे-धीरे एहसास होने लगा कि ये दोनों संसारों में कोई साम्य नहीं है।"[4]

बाबू बेनी माधव दास

1909 में, उन्हें चौथी कक्षा में कटक के रेवेनशॉ कॉलेजिएट स्कूल में भर्ती कराया गया। यह स्कूल सुभाष के लिए अधिक अनुकूल साबित हुआ जहाँ उन्होंने बांग्ला और संस्कृत सीखी और स्थायी मित्रता भी की। यहाँ उनकी मुलाकात प्रधानाध्यापक बाबू बेनी माधव दास से हुई, जो उनके पहले आदर्श बने और जिन्होंने उनके युवा मन पर स्थायी छाप छोड़ी। सुभाष ने लिखा कि बाबू बेनी माधव "एक अमूल्य भावना जगाने में सफल रहे कि मानव जीवन में नैतिक मूल्यों को किसी भी अन्य चीज से अधिक महत्व दिया जाना चाहिए"। सुभाष ने पत्राचार के माध्यम से कई वर्षों तक बाबू बेनी माधव से संपर्क बनाए रखा। उन्होंने उनसे सीखा कि "प्रकृति से कैसे प्रेम करें और न केवल सौंदर्य की दृष्टि से, बल्कि नैतिक रूप से भी उससे प्रेरित हों"[5]। सुभाष ने स्वीकार किया कि प्रकृति की उपासना से उन्हें अपने मन को एकाग्र करने में मदद मिली। "मैं कालिदास की कविता में प्रकृति सौंदर्य और महाभारत की वर्णनात्मकता का अब मैं सहजता से आनंद लेने लगा था और वर्ड्सवर्थ की कविताएँ अब मेरे लिए अलग से महत्व रखती थीं।"

स्वामी विवेकानंद और रामकृष्ण परमहंस का प्रवेश

मानसिक स्तर पर देखें तो रेवेनशॉ कॉलेजिएट स्कूल में पढ़ाई के पाँच-छह वर्ष सुभाष के जीवन की 'सबसे तूफानी अवधियों में से एक' थे। सुभाष ने अपनी आत्मकथा में लिखा, "यह तीव्र मानसिक संघर्ष का दौर था जो अनकही त्रासदी के साथ-साथ गहरी पीड़ा दे रहा था।" अंतर्मुखी होने के कारण उन्होंने इसे किसी मित्र से साझा नहीं किया और न ही बाहर से किसी ने इसे देखा। युवा सुभाष का इससे पीड़ित होना उनकी कम उम्र के लिए एक असामान्य बात थी। जिस उम्र में उन्हें फुटबॉल खेलना चाहिए था, उस उम्र में वह सांसारिक जीवन के प्राकृतिक आकर्षणों के विरुद्ध अपने उच्च स्व के विद्रोह से जूझ रहे थे और साथ ही, वह अपनी यौन-चेतना को अप्राकृतिक और अनैतिक मानते थे, इसलिए उन्होंने इसे दबाने या उससे आगे निकलने के लिए संघर्ष किया।[6]

"मैं अनजाने में जिस चीज की तलाश कर रहा था - वह एक मौलिक सिद्धांत था, जिसको अपना पूरा पूरा जीवन में टाँगने के लिए मैं एक खूंटी के रूप में उपयोग कर सकता, और जो एक ऐसे दृढ संकल्प की तरह काम करता जिसके रहते किसी भटकाव की गुंजाइश न रह जाती।"[7]

जिस 'मौलिक सिद्धांत' की खोज सुभाष कर रहे थे वह उन्हें शीघ्र ही विवेकानंद से मिला। 15 वर्षीय सुभाष की नजर संयोगवश स्वामी विवेकानन्द के वाङ्मय पर पड़ी और वे उसे महीनों तक पढ़ते-समझते रहे।

"मेरा रोम-रोम रोमांचित था। मेरे प्रधानाध्यापक ने मेरे सौंदर्य बोध और नैतिक बोध को जगाया था - मेरे जीवन को एक नई प्रेरणा दी थी - लेकिन उन्होंने मुझे कोई आदर्श नहीं दिया था जिसके लिए मैं अपना संपूर्ण अस्तित्व दे सकूँ। वह विवेकानंद ने मुझे दिया। .... 'आत्मनो मोक्षार्थ जगहिताय'[8] - अपने उद्धार के लिए और मानवता की सेवा के लिए जीयो - यही मेरे जीवन का लक्ष्य बनना था।"[9]

मातृभूमि के प्रति विवेकानंद के समर्पण को महसूस कर सुभाष बहुत प्रसन्न थे। विवेकानंद द्वारा प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली की आधुनिक व्याख्या, दलित जनता से उनकी उच्च उम्मीदें और देशवासियों को आध्यात्मिक ज्ञान देने से पहले भौतिक उत्थान पर जोर के उनके विचार ने सुभाष को गहराई से प्रभावित किया।

"जब विवेकानंद ने मेरे जीवन में प्रवेश किया...तो मेरे भीतर एक क्रांति आ गई और हर चीज उलट-पुलट सी गई... बहुत से प्रश्न जो मेरे मन को अस्पष्ट रूप से उद्वेलित कर रहे थे, और जिनके बारे में मुझे बाद में सचेत होना था, उनका मुझे विवेकानंद में संतोषजनक समाधान मिल गया। मेरे प्रधानाध्यापक का व्यक्तित्व इतना बड़ा नहीं रहा कि वे मेरे आदर्श बने रह सकें... अब मैंने उस रास्ते के बारे में सोचने लगा जो विवेकानंद ने बताया था।"[10]

विवेकानंद से रामकृष्ण परमहंस की ओर मुड़ना स्वाभाविक होता है और ऐसा ही सुभाष के साथ भी हुआ। जैसा कि सुभाष ने महसूस किया, रामकृष्ण भारतीय सभ्यता में निहित आध्यात्मिकता के सार का प्रतीक थे। सांसारिक इच्छाओं के त्याग और विशेष रूप से वासना और धन (कामिनी-कंचन) के त्याग पर उनके जोर ने सुभाष पर गहरा प्रभाव डाला।

स्कूल में रहते हुए ही सुभाष ने मित्रों की एक टोली बनाई जो विवेकानंद और रामकृष्ण में रुचि रखते थे। जैसे-जैसे इस मित्र-मंडली का आकार बढ़ता गया और इसकी गतिविधियाँ बढ़ती गई, पढ़ाई में लापरवाही बरतने के लिए सुभाष को उनके माता-पिता की फटकार लगने लगी। जितना अधिक माता-पिता ने उन्हें रोकने का प्रयास किया, वह उतने ही अधिक विद्रोही होते गए। अब सुभाष एक मातृ-पितृभक्त से एक ऐसे बालक में परिवर्तित हो गए थे जो स्वयं के उद्धार के लिए और सभी सांसारिक इच्छाओं को त्यागकर मानवता की सेवा करने के अपने आदर्श के लिए अपने माता-पिता की अवहेलना कर सकता था। उन्हीं के शब्दों में:

"मुझे नहीं लगता कि मैं अपने जीवन में कभी इससे अधिक कठिन दौर से गुजरा हूँ। रामकृष्ण के त्याग और पवित्रता के उदाहरण ने चेतना के निचले तल की सभी शक्तियों के साथ एक दिव्य युद्ध सा छेड़ दिया था। और विवेकानंद से मिले आदर्शों के चलते मौजूदा पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था के साथ मेरा संघर्ष-सा छिड़ गया।"[11]

यह वह समय था जब सुभाष और उनके समूह ने आत्म-नियंत्रण को साकार करने के लिए सभी प्रकार के प्रयोग किए। किसी के मार्गदर्शन के बिना ही उन्होंने ब्रह्मचर्य अथवा यौन नियंत्रण, ध्यान और योग पर पुस्तकों की तलाश की। लेकिन जब ऐसे सभी प्रयोग वांछित परिणाम देने में विफल रहे, तो उन्होंने सही गुरु की तलाश शुरू कर दी, इतना कि वे अपने शहर में आने वाले हर साधु में दिलचस्पी लेने लगे। कुछ महीनों तक एक महात्मा के निर्देशों का भी कर्तव्यपूर्वक पालन किया, लेकिन सुभाष को संतुष्टि नहीं मिली और इसलिए उन्होंने इसे छोड़ दिया। "मैं रामकृष्ण और विवेकानंद की शिक्षाओं पर वापस गया। त्याग के बिना कोई बोध नहीं - मैंने खुद से कहा",[12] सुभाष ने याद किया। शायद विवेकानंद से प्रेरणा लेकर उन्होंने यह भी महसूस किया कि आध्यात्मिक विकास के लिए समाज सेवा आवश्यक है। विवेकानंद ने अपने देशवासियों को गरीबों की सेवा करने का आदेश दिया था। विवेकानंद ने दरिद्रनारायण के आदर्श का प्रचार किया था अर्थात गरीबों की सेवा करना भगवान की सेवा करना है। युवा सुभाष तुरंत अपने इलाके में भिखारियों, फकीरों और साधुओं की मदद करने लगे। विवेकानंद के संदेश में निहित मानवता की सेवा का आदर्श जीवन के अंत तक उनके साथ रहा। सुभाष और उनके लड़कों के समूह ने आस-पास के गाँवों के पुनर्निर्माण कार्यों में भी अपना हाथ आजमाया। जैसे-जैसे सुभाष अपने स्कूली करियर के अंत के करीब पहुँचे, उनका धार्मिक आवेग और अधिक तीव्र हो गया।[13]

1912-13 के दौरान अपनी माँ को लिखे गए सुभाष के पत्र 15-16 साल के बच्चे के मन में आदर्शवाद, ईश्वर के प्रति समर्पण, मातृभूमि के प्रति प्रेम और सांस्कृतिक चेतना की गहरी झलक दिखाते हैं। एक पत्र में उन्होंने आध्यात्मिक कारणों से शाकाहारी बनने के अपने प्रयासों को साझा किया है। एक और पत्र ईश्वर की भक्ति से सराबोर है। ईश्वर के प्रति अपनी उत्कंठा व्यक्त करने के लिए वह महाभारत की कुंती का हवाला देते हुए कहते हैं, हे भगवान! कृपया मुझे हर समय विपत्ति में रखें, ताकि मैं पूरे दिल से हमेशा आपकी प्रार्थना करता रहूँ। प्रसन्नता मुझे तुम्हें भूलने पर मजबूर कर सकती है; तो मुझे प्रसन्न मत होने दो

अपनी माँ को सुभाष के पत्र (1912-13)

1912-13 के दौरान अपनी माँ को लिखे गए सुभाष के पत्र 15-16 साल के बच्चे के मन में आदर्शवाद, ईश्वर के प्रति समर्पण, मातृभूमि के प्रति प्रेम और सांस्कृतिक चेतना की गहरी झलक दिखाते हैं। एक पत्र में उन्होंने आध्यात्मिक कारणों से शाकाहारी बनने के अपने प्रयासों को साझा किया है।[14] एक और पत्र ईश्वर की भक्ति से सराबोर है। ईश्वर के प्रति अपनी उत्कंठा व्यक्त करने के लिए वह महाभारत की कुंती का हवाला देते हुए कहते हैं, "हे भगवान! कृपया मुझे हर समय विपत्ति में रखें, ताकि मैं पूरे दिल से हमेशा आपकी प्रार्थना करता रहूँ। प्रसन्नता मुझे तुम्हें भूलने पर मजबूर कर सकती है; तो मुझे प्रसन्न मत होने दो।"[15]

"बोध और दिव्य रहस्योद्घाटन के बिना जीवन व्यर्थ है। मनुष्य जिस उपासना, ध्यान, प्रार्थना, चिंतन आदि में संलग्न होता है उसका एक ही लक्ष्य होता है-ईश्वर की प्राप्ति। यदि यह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ तो सब व्यर्थ है। जिसने एक बार इस अलौकिक आनंद का स्वाद चख लिया, वह कभी भी पाप से भरे भौतिक संसार की ओर नहीं जाएगा। .... अगर मैं उस तक नहीं पहुँच सकता, तो मेरा जीवन कहाँ होगा - मैं खुद को किसमें व्यस्त रखूंगा - मैं किसके साथ संवाद करूंगा - मैं खुशी कहाँ ढूँढूँगा।"[16]

"उसे केवल साधना, गहन ध्यान और गहन प्रार्थना के माध्यम से ही प्राप्त किया

सुभाष ने अपने जीवन के नियामक सिद्धांत तय किए। आध्यात्मिकता संबंधी प्रयोगों आदि के कारण पढ़ाई में कुछ नुकसान होने के बावजूद, मार्च 1913 में सुभाष ने पूरे विश्वविद्यालय में दूसरे स्थान पर रहकर मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद उन्हें आगे की पढ़ाई के लिए प्रेसीडेंसी कॉलेज, कलकत्ता भेजा गया। कलकत्ता भेजते समय, उनके माता-पिता ने आशा की थी कि वह अपने कटक की मित्रमंडली से दूर रहेंगे। वे नहीं जानते थे कि और बड़ा खिंचाव, और बड़ी मित्रमंडली वहाँ उनका इंतजार कर रही थी

जा सकता है।"[17]

अपनी माँ को लिखे कुछ पत्रों में आत्मबोध और दैवीय रहस्य को जानने के लिए अपनी लालसा के अलावा, उन्होंने भारत को 'भगवान की प्रिय भूमि' बताते हुए इसकी महान नदियों, इसके महान अतीत, इसके महान महाकाव्यों और वेदों की भी स्पष्ट रूप से प्रशंसा की है। वह अपने पत्रों में महाकाव्यों की एक कल्पना रचते हैं लेकिन उसका संवेदनशील मन जल्द ही विलाप करना शुरू कर देता है:

"यह हृदयविदारक स्थिति है। हमने अपना धर्म और बाकी सब कुछ - यहाँ तक कि अपना राष्ट्रीय जीवन भी खो दिया है। हम एक कमजोर, दास, अधार्मिक और अभिशप्त राष्ट्र हैं! हे भगवान! वही भारत ऐसे बुरे दिनों में आ गया है! क्या तुम आकर हमें पुनर्जीवित नहीं करोगे?"

आरामदायक परिवेश में रहने वाले युवा सुभाष ने देश, समाज और धर्म की गिरी हुई स्थिति को कितनी गहराई से महसूस किया, इसका अंदाजा अपनी माँ को कही गई उनकी इन पंक्तियों से आसानी से लगाया जा सकता है:

"माँ, केवल देश ही दयनीय स्थिति में नहीं है। हमारे धर्म की हालत देखो! हिंदू धर्म कितना पवित्र और सनातन था और अब हमारा धर्म कितना पतित हो गया है!... देखो, नास्तिकता, आस्था की कमी और कट्टरता कैसे व्याप्त हो गई है... माँ, अपने बच्चों की दयनीय स्थिति पर ध्यान दो। पाप, सभी प्रकार के कष्ट, भूख, प्रेम की कमी, ईर्ष्या और सबसे बढ़कर, धर्म की कमी ने उनके अस्तित्व को वास्तव में नरक बना दिया है... माँ, हम कब तक सोते रहेंगे? कब तक हम गैर जरूरी चीजों से खेलते रहेंगे? क्या हम अपने राष्ट्र के विलाप को अनसुना करते रहेंगे? हमारा प्राचीन धर्म आसन्न मृत्यु की पीड़ा झेल रहा है - क्या यह हमारे हृदयों को उद्वेलित नहीं करता।"

हम कब तक हाथ पर हाथ धरे बैठे अपने देश और धर्म की यह हालत देखते रहेंगे? हम और अधिक इंतजार नहीं कर सकते - हम और सो नहीं सकते, - हमें अब अपनी स्तब्धता और सुस्ती को दूर करना चाहिए और कार्रवाई में लग जाना चाहिए। लेकिन, ओह! इस स्वार्थी युग में, माँ के कितने निस्वार्थ पुत्र अपने व्यक्तिगत हितों को पूरी तरह से त्याग कर माँ के लिए कदम उठाने के लिए तैयार हैं? माँ, क्या आपका यह बेटा अभी तक तैयार है?"[18]

यहाँ सुभाष के माध्यम से विवेकानंद और भगत सिंह को बोलते हुए सुना जा सकता है।

अपनी माँ को लिखे एक अन्य पत्र में उन्होंने आश्चर्य जताया कि क्या शिक्षा और उस पर खर्च किया गया पैसा सार्थक है। "मुझे किताबी ज्ञान से सख्त नफरत है। मुझे चरित्र-बुद्धि-कर्म चाहिए। चरित्र सर्वसमावेशी है, इसमें ईश्वर के प्रति समर्पण, देश के प्रति प्रेम - उस तक पहुँचने की लालसा शामिल है।"[19]

सुभाष ने अपने जीवन के नियामक सिद्धांत तय किए। आध्यात्मिकता संबंधी प्रयोगों आदि के कारण पढ़ाई में कुछ नुकसान होने के बावजूद, मार्च 1913 में सुभाष ने पूरे विश्वविद्यालय में दूसरे स्थान पर रहकर मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद उन्हें आगे की पढ़ाई के लिए प्रेसीडेंसी कॉलेज, कलकत्ता भेजा गया। कलकत्ता भेजते समय, उनके माता-पिता ने आशा की थी कि वह अपने कटक की मित्रमंडली से दूर रहेंगे। वे नहीं जानते थे कि और बड़ा खिंचाव, और बड़ी मित्रमंडली वहाँ उनका इंतजार कर रही थी।

कलकत्ता पहुँच कर सुभाष ने अपने आगे के जीवन के बारे में कुछ निर्णय लिए। उन्होंने संकल्प लिया कि सामान्य लड़कों के विपरीत, वह शिक्षा और सांसारिक करियर के घिसे-पिटे रास्ते पर नहीं चलेंगे, चाहे कुछ भी हो जाए।

"मैं अपने आध्यात्मिक कल्याण और मानवता के उत्थान के लिए अनुकूल जीवन जीने जा रहा था; मैं दर्शनशास्त्र का गहन अध्ययन करने जा रहा था ताकि जीवन की मूलभूत समस्याओं का समाधान कर सकूँ; व्यावहारिक जीवन में मैं जहाँ तक संभव हो सके रामकृष्ण और विवेकानंद का अनुकरण करने जा रहा था और, किसी भी स्थिति में, मैं कोई सांसारिक कैरियर नहीं बना रहा था।"[20]

सुभाष ने इस बात पर जोर दिया है कि यह निर्णय एक रात के विचार या किसी एक व्यक्तित्व के आदेश का परिणाम नहीं थे। इसके साथ ही उन्हें एक साथ दो मोर्चों पर संघर्ष करना पड़ा: पहला, अपनी चेतना के निम्न स्तर द्वारा खींचे जाने के खिलाफ और दूसरा, पारिवारिक प्रभाव के विरुद्ध। वे एक लंबे और गहन आंतरिक संघर्ष से वह गुजरे, अंततः उसका सकारात्मक परिणाम सामने आया। उनमें आत्मविश्वास आया और वे अपने भावी जीवन के बारे में स्पष्टता प्राप्त करने में सक्षम हुए। "[अब] मुझे विश्वास हो गया कि जीवन का एक अर्थ और एक उद्देश्य है। उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए शरीर और दिमाग की नियमित शिक्षा आवश्यक थी।"[21]

कामवृत्ति के विरुद्ध उनका संघर्ष तीव्र हो गया। उन्होंने रामकृष्ण परमहंस की शिक्षा को अपनाया था कि आध्यात्मिक विकास के मार्ग में दो सबसे बड़ी बाधाएँ हैं - कामिनी और कंचन। लेकिन 1930 के दशक के मध्य तक सुभाष ने यौन संबंधी अपने विचारों में संशोधन कर लिया था। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा कि "अब यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि क्या हमें अपना इतना समय और ऊर्जा उस वृत्ति को मिटाने

या उन्नत करने में खर्च करनी चाहिए जो मानव जीवन में उतनी ही अंतर्निहित है जितनी कि पशु जीवन में।"[22] लेकिन उन्हें अपनी किशोरावस्था के दौरान इस दिशा में किए गए अपने कठिन प्रयासों पर कभी अफसोस नहीं हुआ।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, सुभाष, रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद की शिक्षाओं से प्रभावित छात्रों की एक बड़ी मंडली का हिस्सा थे। सुभाष ने अपने समूह को नव-विवेकानंद मंडली कहा। उनका मुख्य उद्देश्य धर्म और राष्ट्रवाद के बीच समन्वय लाना था। मंडली के सदस्यों ने दर्शन, इतिहास और राष्ट्रवाद पर खूब पुस्तकें पढ़ीं। उनके लिए कॉलेज की छुट्टियाँ एक सच्चे गुरु को पाने की आशा के साथ पवित्र स्थलों पर जाने के लिए होती थीं। कुछ लोग ऐतिहासिक महत्व के स्थानों का दौरा करते और मौके पर ही इतिहास का अध्ययन करते। इस मंडली के सदस्य के रूप में सुभाष ने सीखा कि समाज सेवा योग का एक अभिन्न अंग है और इसका मतलब आधुनिक तर्ज पर राष्ट्र का पुनर्निर्माण है, न कि केवल गरीबों और जरूरतमंदों की मदद करना।

अरविंद घोष

सुभाष ने लिखा है कि बीसवीं सदी के दूसरे दशक में बंगाल में अरविंद घोष सबसे लोकप्रिय नेता थे, खासकर युवाओं के बीच, हालांकि उन्होंने 1909 में स्वैच्छिक रूप से आत्म-निर्वासन कर लिया था। उन्होंने स्वतंत्रता के निडर समर्थक के रूप में राजनीति में शामिल होने के लिए सिविल सेवा से इस्तीफा दे दिया था। क्रांतिकारी बारिन्द्र कुमार घोष के भाई के रूप में तो उनकी प्रसिद्धि थी ही लेकिन अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आध्यात्मिकता और राजनीति के मिश्रण ने उन्हें रहस्यवाद की आभा दी थी और उनके व्यक्तित्व को उन लोगों के लिए और अधिक आकर्षक बना दिया था जिनका धार्मिकता की ओर झुकाव था।[23] उस समय यह आम अफवाह थी कि अरविंद 12 साल की साधना के बाद एक प्रबुद्ध व्यक्ति के रूप में सक्रिय जीवन में लौटेंगे क्योंकि ब्रिटिश शासकों से मुकाबला करने के लिए अलौकिक शक्ति आवश्यक थी। दिलचस्प बात यह है कि सुभाष ने यह स्पष्ट कर दिया कि यह श्री अरविंद का रहस्यवाद नहीं था जिसने उन्हें आकर्षित किया, बल्कि उनकी मासिक पत्रिका 'आर्य' में उनका लेखन था और पत्र थे। श्री अरविंद बंगाल के कुछ गिने-चुने लोगों को पत्र लिखा करते थे जो एक से दूसरे हाथ में पहुँचा करते थे। श्री अरविंद के बारे में सुभाष लिखते हैं:

"मैं उनके गहन दर्शन से प्रभावित हुआ। शंकर का मायावाद मुझे बहुत कष्टदायक सिद्धांत लगता था। मैं अपने जीवन को उसके अनुरूप नहीं ढाल पा रहा था, न ही इससे आसानी से छुटकारा ही पा रहा था। मुझे इस सिद्धांत की जगह लेने के लिए एक और दर्शन की आवश्यकता थी। रामकृष्ण और विवेकानंद ने एक और अनेक के बीच, ईश्वर और सृष्टि के बीच मेल-मिलाप का जो उपदेश दिया था, उसने वास्तव में मुझे प्रभावित किया था, लेकिन तब तक वह मुझे मायावाद के जाल से मुक्त करने में सफल नहीं हुआ था। मुक्ति के इस कार्य में अरविंद से अतिरिक्त सहायता मिली। उन्होंने दार्शनिक स्तर पर आत्मा और पदार्थ के बीच, ईश्वर और सृष्टि के बीच, आध्यात्मिक पक्ष पर समन्वय सिद्ध किया और सत्य की उपलब्धि कि विभिन्न विधियों के समन्वय द्वारा, जिसे उन्होंने योग-समन्वय कहा - उसकी परिपुष्टि की।... इसमें कोई संदेह नहीं है कि विवेकानंद ने व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए ज्ञान, भक्ति और और कर्म की आवश्यकता की बात की थी, लेकिन योग-समन्वय के बारे में अरविंद की अवधारणा में मौलिक और अद्वितीय था। उन्होंने यह दिखाने का प्रयास किया कि विभिन्न योगों का उपयुक्त सहारा लेकर कोई व्यक्ति मंजिल दर मंजिल उच्चतम सत्य तक पहुँच सकता है।... मेरी दृष्टि में यदि वे सक्रिय जीवन में लौट सकते तो आदर्श गुरु के लिए मानवता की खोज का उत्तर मिल सकता था।"[24]

सुभाष ने लिखा है कि बीसवीं सदी के दूसरे दशक में बंगाल में अरविंद घोष सबसे लोकप्रिय नेता थे, खासकर युवाओं के बीच, हालांकि उन्होंने 1909 में स्वैच्छिक रूप से आत्म-निर्वासन कर लिया था। उन्होंने स्वतंत्रता के निडर समर्थक के रूप में राजनीति में शामिल होने के लिए सिविल सेवा से इस्तीफा दे दिया था। क्रांतिकारी बारिन्द्र कुमार घोष के भाई के रूप में तो उनकी प्रसिद्धि थी ही लेकिन अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि आध्यात्मिकता और राजनीति के मिश्रण ने उन्हें रहस्यवाद की आभा दी थी और उनके व्यक्तित्व को उन लोगों के लिए और अधिक आकर्षक बना दिया था जिनका धार्मिकता की ओर झुकाव था

मायावाद से व्यावहारिकता की ओर

इंटरमीडिएट परीक्षा के लिए कॉलेज में सुभाष को व्याख्यान अरुचिकर लगे। पढ़ाई के बजाय उन्होंने खुद को यथासंभव अधिक से अधिक धार्मिक गुरुओं से मिलने और समाज सेवा में लगा दिया। हैजा की महामारी के दौरान उन्होंने और उनके दोस्तों ने बिना अपनी परवाह किए मरीजों की मदद की। गुरु खोजने की उनकी इच्छा उन्हें अपने माता-पिता को बताए बिना उत्तर भारत के पवित्र स्थानों - ऋषिकेश, हरिद्वार, मथुरा, वृंदावन, बनारस और गया की लगभग दो महीने की तीर्थयात्रा पर ले गई। उनकी यह तीर्थयात्रा एक मिश्रित अनुभव साबित हुई, सुभाष को जातिवाद और अन्य प्रकार के भेदभाव का सामना करना पड़ा और साधु-संतों के प्रति उनकी अत्यधिक श्रद्धा कम हो गई।[25]

सुभाष के अनुसार, 1914-16 के दौरान उनके अंदर बड़े बदलाव आए। अब तक योगियों और संन्यासियों से उनका कुछ मोहभंग हो चुका था। इसके अलावा, जब भी वह नस्ली भेदभाव और अंग्रेजों को ट्राम और सड़कों पर भारतीयों को अपमानित

करते देखते, तो शंकर के मायावाद के सिद्धांत से उनका विश्वास हिल जाता। उन्होंने लिखा, "खुद को यह समझाना बिलकुल असंभव था कि किसी विदेशी द्वारा अपमानित होना एक भ्रम था जिसे नजरअंदाज किया जा सकता था।"[26] उन्हें यह भी एहसास हुआ कि अंग्रेज केवल भौतिक बल का सम्मान करते हैं और किसी का नहीं। वे भारतीयों के साथ तभी सम्मानपूर्वक व्यवहार करते थे जब उन पर पलटवार किया जाता था। मायावाद के सिद्धांत से सुभाष की अंतिम विदाई कॉलेज की एक घटना के बाद हुई जिसमें भारतीय छात्रों ने एक अंग्रेज प्रोफेसर की जमकर धुनाई कर दी थी क्योंकि उसने कई बार भारतीय छात्रों के साथ बदसलूकी और मारपीट की थी। यह स्पष्ट नहीं है कि सुभाष वास्तव में इस घटना में शामिल थे या नहीं, लेकिन उन्होंने कॉलेज हड़ताल का नेतृत्व किया और जाँच समिति के समक्ष छात्रों का मामला निर्भीकता से प्रस्तुत किया। जाँच समिति ने सुभाष को उस हमले में शामिल होने का दोषी पाया और उचित सुनवाई किए बिना ही उन्हें प्रेसीडेंसी कॉलेज से निष्कासित कर दिया गया। सुभाष ने अपनी आत्मकथा में घटना का वर्णन करते हुए टिप्पणी की – "शंकराचार्य के मायावाद ने अंतिम साँस ली।"[27] उनका अभिप्राय था – बहुत हो गए सूक्ष्म आध्यात्मिक सिद्धांत; परिस्थितियाँ जीवन की वास्तविकताओं के प्रति अधिक यथार्थवादी और व्यावहारिक दृष्टिकोण की माँग कर रही थीं।

कॉलेज से निष्कासन भविष्य के सुभाष के निर्माण में एक मील का पत्थर था। दो दशक से अधिक समय के बाद इस घटना को याद करते हुए उन्होंने लिखा:

"मेरे प्रिंसिपल ने मुझे निकाल दिया था, लेकिन उन्होंने ऐसा करके भविष्य के जीवन का पथ प्रशस्त कर दिया था। मैंने अपने लिए एक मिसाल कायम कर ली थी जिससे मैं भविष्य में आसानी से नहीं हट सकता था। मैं एक संकट का साहस और संतुलन के साथ सामना कर सका था और मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया। मुझमें आत्मविश्वास भी विकसित हुआ और पहल करने की क्षमता भी, जिसका लाभ मुझे भविष्य में मिलने वाला था। मुझे नेतृत्व का पूर्व अनुभव था ही .... और इसमें बलिदान भी अपेक्षित होता है। संक्षेप में, मैंने अनेक चारित्रिक विशेषताएँ हासिल कीं जिनके बल पर मैं भविष्य का सामना संतुलन से कर सका।"[28]

सुभाष के व्यक्तित्व में आलोचनात्मक दृष्टिकोण, तर्कवाद और व्यावहारिकता के समावेश ने उनके आदर्शवाद को दृढ़ किया। अपने पिता की इच्छा का सम्मान करने के लिए, सुभाष अनिच्छा से भारतीय सिविल सेवा परीक्षा में शामिल हुए और कम समय की तैयारी के बावजूद इस प्रतिष्ठित सेवा के लिए चयनित होकर खुद को आश्चर्यचकित कर दिया। लेकिन आईसीएस और इसके साथ मिलने वाले सभी भत्ते, प्रसिद्धि और सुख-सुविधाएँ एक पल के लिए भी सुभाष को अपने रास्ते से नहीं भटका सकीं। "मैंने जीवन में शुरू से ही घिसी-पिटी लीक पर न चलने का संकल्प ले लिया था और इसके अलावा, मेरे कुछ आदर्श थे जिनके साथ मैं जीना चाहता था

1914 में प्रथम विश्वयुद्ध आरंभ हो गया था। विश्वयुद्ध की घटनाओं ने सुभाष के विश्वास को दृढ़ किया कि कोई राष्ट्र भौतिक विकास और सैन्य ताकत को नजरअंदाज करता है तो वह अपने विनाश को नहीं टाल सकता। यही बात भारत पर भी लागू होती है।

"अगर भारत को एक आधुनिक सभ्य राष्ट्र बनना है, तो उसे इसकी कीमत चुकानी होगी और वह किसी भी तरह से भौतिक, यानी सैन्य समस्या से बच नहीं सकता। जो लोग देश की के लिए काम कर रहे हैं, उन्हें नागरिक और सैन्य प्रशासन दोनों की जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार रहना होगा। राजनीतिक स्वतंत्रता अविभाज्य है और इसका अर्थ विदेशी नियंत्रण और स्वामित्व से संपूर्ण मुक्ति। विश्व युद्ध ने दिखा दिया है कि अगर किसी राष्ट्र के पास सैन्य शक्ति नहीं है तो वह अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखने की आशा नहीं कर सकता।"[29]

यह जानना दिलचस्प है कि आजाद हिंद फौज के भावी कमांडर-इन-चीफ सुभाष को अपने युवा दिनों से ही सैन्य प्रशिक्षण का शौक था। कॉलेज में रहते हुए उन्होंने नियमित सेना में भर्ती होने की कोशिश की लेकिन नेत्र दृष्टि जाँच में असफल रहे। लेकिन वे प्रादेशिक सेना के विश्वविद्यालय विंग में भारत रक्षा बल (इंडिया डिफेंस फोर्स) में भर्ती हो गए, जहाँ शारीरिक जाँच के पैमाने इतने कड़े नहीं थे और उन्होंने प्रशिक्षण पूरा किया। "मुझे इसमें (सैन्य-जीवन में) एक सकारात्मक आनंद मिला। ट्रेनिंग से मुझे वह सब कुछ मिला जिसकी मुझे आवश्यकता थी या जिसकी मेरे पास कमी थी। शक्ति और आत्मविश्वास की भावना और सुदृढ़ हुई।"[30]

एक अन्य कारक जिसने सुभाष को अधिक तर्कसंगत बनाने में मदद की वह डिग्री स्तर पर दर्शनशास्त्र का अध्ययन था। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, सुभाष को बचपन से ही दर्शनशास्त्र के अध्ययन की इच्छा थी – उन्हें इस विषय का अध्ययन करके जीवन और दुनिया के मूलभूत प्रश्नों को हल करने की आशा थी। लेकिन विश्वविद्यालय स्तर पर दर्शनशास्त्र के अध्ययन ने उन्हें एक भिन्न अनुभव दिया – "उससे मेरी तार्किक प्रतिभा का विकास हुआ, संशय की भावना पनपी और बौद्धिक अनुशासन बढ़ा, लेकिन उसने मेरी किसी भी बुनियादी समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं किया। मेरी समस्याएँ तो मेरे अपने ही प्रयासों से हल होने वाली थीं।"[31] सुभाष ने उच्चतर अध्ययन के लिए दर्शन शास्त्र के स्थान पर व्यावहारिक मनोविज्ञान पढ़ने का निश्चय किया।

आईसीएस में करियर अस्वीकार

सुभाष के व्यक्तित्व में आलोचनात्मक दृष्टिकोण, तर्कवाद और व्यावहारिकता के समावेश ने उनके आदर्शवाद को दृढ़ किया।

अपने पिता की इच्छा का सम्मान करने के लिए, सुभाष अनिच्छा से भारतीय सिविल सेवा परीक्षा में शामिल हुए और कम समय की तैयारी के बावजूद इस प्रतिष्ठित सेवा के लिए चयनित होकर खुद को आश्चर्यचकित कर दिया। लेकिन आईसीएस और इसके साथ मिलने वाले सभी भत्ते, प्रसिद्धि और सुख-सुविधाएँ एक पल के लिए भी सुभाष को अपने रास्ते से नहीं भटका सकीं। "मैंने जीवन में शुरू से ही घिसी-पिटी लीक पर न चलने का संकल्प ले लिया था और इसके अलावा, मेरे कुछ आदर्श थे जिनके साथ मैं जीना चाहता था। इसलिए मेरे लिए सिविल सेवा में जाना तब तक असंभव था जब तक कि मैं अपने पिछले जीवन को भुला नहीं लेता।"[32] अपने बड़े भाई शरत चंद्र बोस को लिखे एक पत्र में, सुभाष ने स्पष्ट किया कि उनकी 'राष्ट्रीय और आध्यात्मिक आकांक्षाएँ सिविल सेवा शर्तों के अनुकूल नहीं हैं।'[33]

सुभाष ने शरत चंद्र बोस को लिखे एक पत्र में सिविल सेवा की पेशकश को अस्वीकार करने के अपने कारणों को संक्षेप में बताया:

"मेरी परिकल्पना और मेरे रुझान के अनुकूल आकर्षण के केंद्र हैं - आरंभ से ही त्याग की वृत्ति, सादा जीवन और उच्च विचार तथा देश-सेवा के लिए धार्मिक अनुरक्ति। इसके अलावा, एक विदेशी नौकरशाही के अधीन काम करना मेरे लिए नितांत त्याज्य है। मेरी दृष्टि में अरविंद घोष का मार्ग कहीं अधिक महान, अधिक प्रेरणादायक, अधिक निःस्वार्थ है, यद्यपि यह मार्ग रमेश दत्त के मार्ग से अधिक कंटकाकीर्ण है। मैंने पिताजी को और माँ को लिख दिया है कि वे मुझे गरीबी और सेवा का व्रत लेने की अनुमति दे दें।"[34]

सुभाष के दार्शनिक विचार

सुभाष ने 1937 में अपनी अधूरी जीवनी में अपने दार्शनिक विश्वासों को बताते हुए एक अलग अध्याय लिखा।

"एक समय था जब मेरा मानना था कि पूर्ण सत्य मानव मस्तिष्क की पहुँच के अंदर था और मायावाद का सिद्धांत ज्ञान की सर्वोत्कृष्टता का प्रतिनिधित्व करता था। आज, मैं यह दोहराने में संकोच करूंगा। मैं परमतत्ववादी नहीं रह गया हूँ... और उससे कहीं अधिक व्यावहारिक हूँ। जिसको मैं जीवन में नहीं उतार सकता, और जो कुछ व्यावहारिक नहीं है, उसे मैं त्यागने के लिए तैयार रहता हूँ। शंकर के मायावाद के सिद्धांत ने मेरे कुतूहल को बहुत समय तक जगाए रखा, लेकिन अंततः मैंने पाया कि मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता क्योंकि मैं इसके अनुसार जीवन नहीं जी सकता।"[35]

"अगर संसार सत्य है तो ... तो जीवन दिलचस्प हो जाता है और सार्थक तथा सोद्देश्य बनता है।"[36]

1920 के दशक से 1940 के दशक की शुरुआत तक सुभाष, तर्कवादी दर्शन और समाजवादी विचार के सभी प्रकारों से अवगत हुए। उनके राजनीतिक चिंतन और भारत की आजादी के पश्चात उनके द्वारा योजनाबद्ध विकास की रूपरेखा पर समाजवादी विचारों का प्रभाव स्पष्ट है। फिर भी इन प्रभावों ने उनकी आध्यात्मिकता को किसी भी हद तक क्षीण नहीं किया।[37]

21 जनवरी 1939 को शांतिनिकेतन में रवींद्रनाथ टैगोर के स्वागत भाषण के जवाब में, सुभाष ने 'आंतरिक जीवन की गरीबी' के गहरे मुद्दे के निवारण के लिए महाकवि टैगोर के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त की। इस संदर्भ में बोलते हुए, उन्होंने व्यक्तिगत लक्ष्यों को पूरा करते हुए जीवन में आध्यात्मिक प्राप्ति की व्यापक खोज की अपरिहार्यता पर प्रकाश डाला, "आज हम निस्संदेह राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए अथक प्रयास कर रहे हैं, लेकिन हमारा आदर्श इससे भी बड़ा है। हम व्यक्तिगत एवं राष्ट्रीय जीवन में पूर्ण परिपूर्णता चाहते हैं। हम चाहते हैं कि देश के प्रत्येक नर-नारी और पूरे राष्ट्र को हर दृष्टि से सत्य का एहसास हो। इस खोज में, इस साधना में, राजनीतिक स्वतंत्रता मात्र एक साधन है।"[38] अपने पूरे जीवन में सुभाष चंद्र बोस सत्य के अन्वेषक और कर्मयोगी बने रहे जिन्होंने अपने आदर्शों को स्वयं से ऊपर रखा और इस यात्रा में उन्होंने भारतीय आध्यात्मिक परंपराओं का गहरा रसपान किया।

संदर्भ-

1. सुभाष चंद्र बोस, ऐन इंडियन पिल्ग्रिम, नेताजी रिसर्च ब्यूरो, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1977, पृ. Xi.
2. वही, पृ. 5.
3. वही, पृ. 21.
4. वही, पृ. 25.
5. वही, पृ. 34.
6. वही, पृ. 36.
7. वही
8. 'आत्मनो मोक्षार्थ जगहिताय' के आदर्श की शिक्षा स्वामी विवेकानंद को उनके गुरु रामकृष्ण परमहंस ने प्रदान की थी। यही रामकृष्ण मिशन का ध्येय वाक्य भी बना।
9. सुभाष चंद्र बोस, ऐन इंडियन पिल्ग्रिम, पूर्वोक्त, पृ. 37.
10. वही, पृ. 38.
11. वही, पृ. 39-40.
12. वही, पृ. 44.
13. वही, पृ. 46.
14. वही, पृ. 130.
15. वही, पृ. 132.
16. वही, पृ. 146.
17. वही
18. वही, पृ. 142-43
19. वही, पृ. 148.
20. वही, पृ. 52.
21. वही, पृ. 53.
22. वही, पृ. 55.
23. वही, पृ. 61.
24. वही, पृ. 63।
25. वही, पृ. 69.
26. वही, पृ. 73.
27. वही, पृ. 78.
28. वही, पृ. 80.
29. वही, पृ. 74.
30. वही, पृ. 92.
31. वही, पृ. 93.
32. वही, पृ. 107.
33. पूर्वोक्त में लेटर टु शरत चंद्र बोस, 22 सितंबर 1920, पृ.108.
34. पूर्वोक्त में लेटर टु शरत चंद्र बोस, 16 फरवरी 1921, पृ. 111.
35. वही, पृ. 118.
36. वही, पृ. 121.
37. सीतांशु दास, सुभाषः अ पोलिटिकल बायोग्राफी, रूपा ऐंड कंपनी, नई दिल्ली, 2001, पृ. 5-6.
38. द स्टेट्समैन, 23 जनवरी, 2019

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

सुराज से होंगे जनता के सपने साकार

मध्यप्रदेश में सरकारी जमीन को अतिक्रमण से मुक्त कराने के बाद खाली हुई भूमि पर आवासहीन, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (ई.डब्ल्यू.एस.) के लिए आवास निर्माण के लिए सुराज नीति-2023 लागू की गई है।

सरकार ने माफिया से मुक्त कराई गई सरकारी जमीन पर सुराज कॉलोनी बनाने का निर्णय लिया है। यहाँ लोगों को सभी जरूरी सुविधाएँ प्रदान की जाएंगी। नीति का उद्देश्य बिना सरकारी बजटीय सहायता के पुनर्धनत्वीकरण नीति के अनुरूप सुराज कॉलोनी के तहत ई.डब्ल्यू.एस. श्रेणी के आवासहीनों के लिए किफायती आवास प्रदान करना और अतिक्रमण से मुक्त की गई भूमि का शहर के विकास के लिए सर्वोत्तम उपयोग करना है।

सुराज नीति के मुख्य बिंदू...

- 1 अप्रैल 2020 के बाद अतिक्रमण से मुक्त कराई गई शासकीय भूमि पर आवासहीन तथा आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के लिए आवास निर्माण की योजना।
- अतिक्रमण से मुक्त कराई गई भूमि का एक टुकड़ा निजी डेवलपर को सौंपा जाएगा, जिसके बदले शेष भूमि में ईडब्ल्यूएस आवास के लिए सुराज टॉवर बनेगा।
- निजी डेवलपर को दिए जाने वाले भू-खंड के आरक्षित मूल्य की गणना लोक परिसंपत्ति प्रबंधन विभाग की स्थापित नीति के अनुसार खुली निविदाओं के आधार पर की जाएगी।
- छोटे शहरों में मल्टी स्टोरी के स्थान पर 450 वर्ग फीट तक के आवासीय पट्टे भी कॉलोनी विकसित कर दिए जा सकेंगे।
- सुराज कॉलोनी में सड़क, जल-प्रदाय, बिजली, बगीचा आदि की सुविधा होगी।
- निर्माण होने के बाद इकाइयों का आवंटन कमजोर आय वर्ग के आवासहीन को नगरीय निकाय द्वारा किया जायेगा।
- संबंधित भूमि के एक भाग का उपयोग आवासहीन आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए सुराज कॉलोनी के अंतर्गत भवन/ प्रकोष्ठ/ भूखण्ड के निर्माण के लिए किया जायेगा। सुराज कॉलोनी की अनुमानित परियोजना लागत के अनुरूप मूल्य के सीएलपी को निजी विकासकर्ता द्वारा 'भू-स्वामी अधिकार' में उपयोग किया जायेगा।
- योजना के क्रियान्वयन के लिए अन्य सभी प्रक्रियाएँ राज्य में स्थापित रिडेंसीफिकेशन नीति-2022 के अनुसार की जाएगी।
- सुराज टॉवर/कॉलोनी का निर्माण समय-सीमा और गुणवत्ता से करने के प्रावधान किए गए हैं। सुराज टॉवर कॉलोनी निर्माण के बाद अगले पाँच वर्ष तक डिफेक्ट लायबिलिटी पीरियड का दायित्व और 3 वर्ष तक कॉलोनी का रख-रखाव संचालन एवं मरम्मत का दायित्व निजी डेवलपर का रहेगा।

"मुख्यमंत्री आवासीय भू-अधिकार योजना के अंतर्गत गाँव में चिन्हित करके हर परिवार को जमीन का टुकड़ा उपलब्ध कराया जाएगा। मध्यप्रदेश में 23000 एकड़ से ज्यादा जमीन माफियाओं से मुक्त कराई गई है। हम उस जमीन पर सुराज कॉलोनी की स्थापना कर गरीबों को उस जमीन पर बसाएंगे।

- शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

35000 लोगों को मिले भूखंड

टीकमगढ़ और सिंगरौली जिले में सरकार ने माफिया से मुक्त कराई जमीन भूमिहीनों को दी है। मुख्यमंत्री भू-अधिकार योजना में दोनों जिले में 35 हजार से अधिक लोगों को योजना का लाभ दिया गया है।

सरकार के प्रयासों से बढ़ता मध्यप्रदेश

जनसंपर्क विभाग

MAHARATNA

Bharat Petroleum
energising lives

अवसर दिलाएं, जीवन को ऊर्जामय बनाएं.

भारत पेट्रोलियम के पास इस समय 21,000 से अधिक रीटेल आउटलेट्स का सुदृढ़ नेटवर्क है, जो सतत गति से बढ़ता जा रहा है. 9.1 करोड़ से अधिक परिवार रसोई के लिए भारत गैस का इस्तेमाल करते हैं. जबकि हाई-टेक ल्युब्रिकेन्ट्स तथा इंडस्ट्रियल प्रोडक्ट्स राष्ट्र को गतिमान रखते हैं, एविएशन फ्युअल्स वायुयानों को आकाश चूमने की ऊर्जा प्रदान करते हैं. समूह की मुंबई, कोच्ची और बीना में स्थित तीन रिफाइनरियां पर्यावरण-शुभचिन्तक फ्युअल्स का उत्पादन करती हैं. पांच महाद्वीपों में एक्सप्लोरेशन ब्लॉक्स में हितों के साथ, बीपीसीएल की सम्पूर्ण मूल्य श्रृंखला में उललेखनीय मौजूदगी है.

हमारे विविध कार्य-प्रचालन मौजूदा और संभावित अंशधारकों के लिए अपनी लाभप्रदता व वृद्धि को और बढ़ाने के लिए अनगिनत अवसर प्रदान करते हैं.

हम नए गठबंधन, विविधिकरण और उत्कृष्टता के लक्ष्य के साथ उत्तमता की राह पर बढ़ते रहना चाहते हैं.

www.bharatpetroleum.in

SmartLine
Toll-free 1800 22 4344
Ek Call...Sab Solve

डॉ. चंदन कुमार

नेताजी सुभाष चंद्र बोस और सशस्त्र प्रतिकार

नेताजी के क्रांतिकारी जीवन का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन तो शेष है ही, उनके अवदान के अधिकांश की जानकारी भी आमजन तक नहीं पहुँच सकी है। एक विवेचन

स्वतंत्रता संग्राम के महान नायक नेताजी सुभाष चंद्र बोस भारतीय राजनीति में एक असाधारण व्यक्तित्व हैं। विभिन्न अभिलेखों से प्राप्त खुफिया रिकॉर्ड के अनुसार ब्रिटिश सरकार ने नेताजी पर 'खतरनाक क्रांतिकारी' और अतिवादियों के सक्रिय साथी के रूप में गंभीर आरोप लगाए थे। अपने राजनैतिक जीवन के दौरान नेताजी ने भारत के क्रांतिकारियों और उनके संगठनों जैसे जुगांतर, अनुशीलन समिति, बंगाल स्वयंसेवकों और कुछ अन्य लोगों के साथ निकट संपर्क बनाए रखा था।[1] सशस्त्र क्रांतिकारियों और नेताजी के साथ उनके सहयोग की वीरगाथा आज तक काफी हद तक अनकही है। कुछ क्रांतिकारियों द्वारा लिखे गए आत्मकथात्मक लेखों और जेल संस्मरणों को छोड़कर, शायद ही ऐसा कुछ है जिसे क्रांतिकारी गतिविधियों में नेताजी की भागीदारी का एक व्यवस्थित, उचित रूप से प्रलेखित इतिहास कहा जा सके, वस्तुत: नेताजी के योगदान का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन आंशिक रूप से ही किया गया है।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सभी आधिकारिक या अर्ध-आधिकारिक इतिहास में, भारतीय राजनीतिक मंच पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का वर्चस्व प्रतीत होता है। 1920 के दशक की शुरुआत में राष्ट्रीय परिदृश्य पर महात्मा गांधी के आगमन के बाद से, स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में कांग्रेस के नेतृत्व वाले जन आंदोलनों - असहयोग, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा और भारत छोड़ो आंदोलन के अलावा कुछ भी शामिल नहीं है और ये सभी गांधी के नेतृत्व में आयोजित किए गए। वास्तव में, कुछ इतिहासकारों द्वारा जनता के मन को प्रभावित करने के उद्देश्य से लगातार प्रचार किया गया है कि भारत ने गांधी के नेतृत्व में अहिंसक तरीकों से अभूतपूर्व आजादी हासिल की है। वैसे इन इतिहासकारों के वृत्तांतों में जनवरी 1941 में भारत से जाने के बाद नेताजी द्वारा निभाई गई भूमिका और उनके द्वारा बाहर से किए गए संगठित सशस्त्र युद्ध अभियान को कभी-कभी आधे-अधूरे मन से मान्यता दी जाती है।

उग्र राष्ट्रवाद की भावना का उदय (1905-1920)

भारत के कई हिस्सों में ब्रिटिश राज के खिलाफ विद्रोही समूहों द्वारा हिंसा की घटनाएं हुई, लेकिन यह अविभाजित बंगाल था जिसने क्रांतिवाद की एक नई विचारधारा का पोषण किया और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ सशस्त्र प्रतिरोध की अवधारणा को व्यवस्थित रूप से स्थापित किया। उग्र राष्ट्रवाद की भावना उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में बंगाल में उत्पन्न हुई और शेष भारत पर इसका प्रभाव पड़ा। बाल गंगाधर तिलक जैसे नेता अहिंसा के भक्त नहीं थे, न ही वे प्रार्थना और याचिका के तरीकों में विश्वास करते थे, जिसके परिणामस्वरूप महाराष्ट्र और पंजाब में भी उग्र राष्ट्रवाद की राजनीति स्पष्ट रूप से प्रकट हुई।

1905 में बंगाल के विभाजन के खिलाफ एक राजनीतिक आंदोलन के रूप में शुरू हुए स्वदेशी आंदोलन से बहुत पहले बंगाल ने क्रांति का उदाहरण प्रस्तुत किया था, जो शुरुआत में शिक्षित उच्च और मध्यम वर्ग के लोगों के द्वारा तैयार की गई थी और धीरे-धीरे यह क्रांतिवाद की भावना पूरे प्रांत में फैल गई, जो साहित्य, संगीत और संस्कृति के माध्यम से प्रचारित हो रही थी।[2] 'डॉन सोसाइटी' की स्थापना 1902 में सतीश मुखोपाध्याय द्वारा की गई थी, जिसने अपने एक संकाय सदस्य के रूप में अरबिंदो

घोष के साथ राष्ट्रीय शिक्षा परिषद को जन्म दिया। डॉन सोसाइटी ने राष्ट्रवाद की भावना को पोषित किया और इसे अपने सेमिनारों और समूह चर्चाओं के माध्यम से पूरे बंगाल में फैलाया जिसमें सिस्टर निवेदिता और सखाराम गणेश देउस्कर ने नियमित रूप से भाग लिया। यद्यपि महाराष्ट्र और पंजाब में भी उग्र राष्ट्रवाद का इतिहास रहा है, लेकिन बंगाल की क्रांतिवाद की विशेषताएँ अन्यत्र बिना किसी समानांतर के अद्वितीय थीं क्योंकि क्रांतिकारियों ने इसे देश से विदेशी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए एक तकनीक या उपकरण के रूप में नहीं बल्कि एक पंथ के रूप में आत्मसात किया हुआ था।[3]

एक प्रसिद्ध अनुशीलनवादी रास बिहारी बोस ने प्रथम विश्व युद्ध की अवधि के दौरान एक क्रांतिकारी विद्रोह को संगठित करने का प्रयास किया था। अनुशीलन समिति ने रास बिहारी बोस के नेतृत्व में गदर पार्टी के स्वदेश लौट चुके सदस्यों की सक्रिय सहायता से एक क्रांतिकारी विद्रोह की एक व्यापक योजना तैयार की थी। जनवरी 1915 में रास बिहारी बोस ने बनारस में प्रमुख अनुशीलन सदस्यों के साथ विचार-विमर्श किया और यह निर्णय लिया गया कि विद्रोह 21 फरवरी 1915 को होगा। विदेश में एक भारतीय क्रांतिकारी लाला हरदयाल ने वहाँ के भारतीय प्रवासियों की मदद से संयुक्त राज्य अमेरिका में गदर पार्टी की स्थापना की और भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशस्त्र विद्रोह आयोजित करने के उद्देश्य से सैन फ्रांसिस्को में युगांतर आश्रम नामक एक समूह का गठन किया। उन्होंने विदेशों में भारतीयों के बीच प्रचार-प्रसार के लिए नियमित रूप से गदर नामक एक पत्रिका भी प्रकाशित की थी।

नवंबर 1914 में लाला हरदयाल के निर्देश पर वीजी पिंगले और सत्यभूषण सेन जर्मनी से भारत आए और उन्होंने बनारस में रास बिहारी बोस को विद्रोह के लिए जर्मनी से हथियार मिलने की संभावना के बारे में बताया। पिंगले ने बोस को सूचित किया कि सशस्त्र विद्रोह में भाग लेने के लिए 4000 गदर क्रांतिकारी पहले ही पंजाब पहुँच चुके थे, 15000 प्रशिक्षित क्रांतिकारी कलकत्ता में प्रतीक्षा कर रहे थे और विद्रोह के फैलने के बाद 20000 और अन्य क्रांतिकारियों के आने की उम्मीद थी। इसने रास बिहारी बोस को फरवरी 1915 में लागू होने वाली अपनी योजनाओं के साथ आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। जतिंद्रनाथ मुखर्जी ने 1908 से विदेशी संपर्क स्थापित करने की कोशिश की जब क्षीरोद गोपाल मुखर्जी को बर्मा और धनगोपाल मुखर्जी को जापान और यूएसए भेजा गया और भूपति मजूमदार को इसी उद्देश्य से यूरोप भेजा गया था। बंगाल के विभिन्न क्रांतिकारी समूहों के इन प्रतिनिधियों के अलावा कई अन्य, जो उच्च अध्ययन के लिए या रोजगार की तलाश में विदेश गए थे, भारत के बाहर आयोजित भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के संपर्क में आए। श्यामजी कृष्ण वर्मा, मैडम भीखाजी रुस्तम और के.आर. कामा यूरोप में आयोजित राष्ट्रवादी स्वतंत्रता आंदोलन के प्रमुख व्यक्ति थे। अनुशीलन समिति ने भी भारत के बाहर से हथियार प्राप्त करने की संभावनाएँ तलाशने के लिए केदारेश्वर गुहा, तारकनाथ दास, गोपेन चक्रवर्ती और अबनी मुखर्जी को विदेश भेजा था।

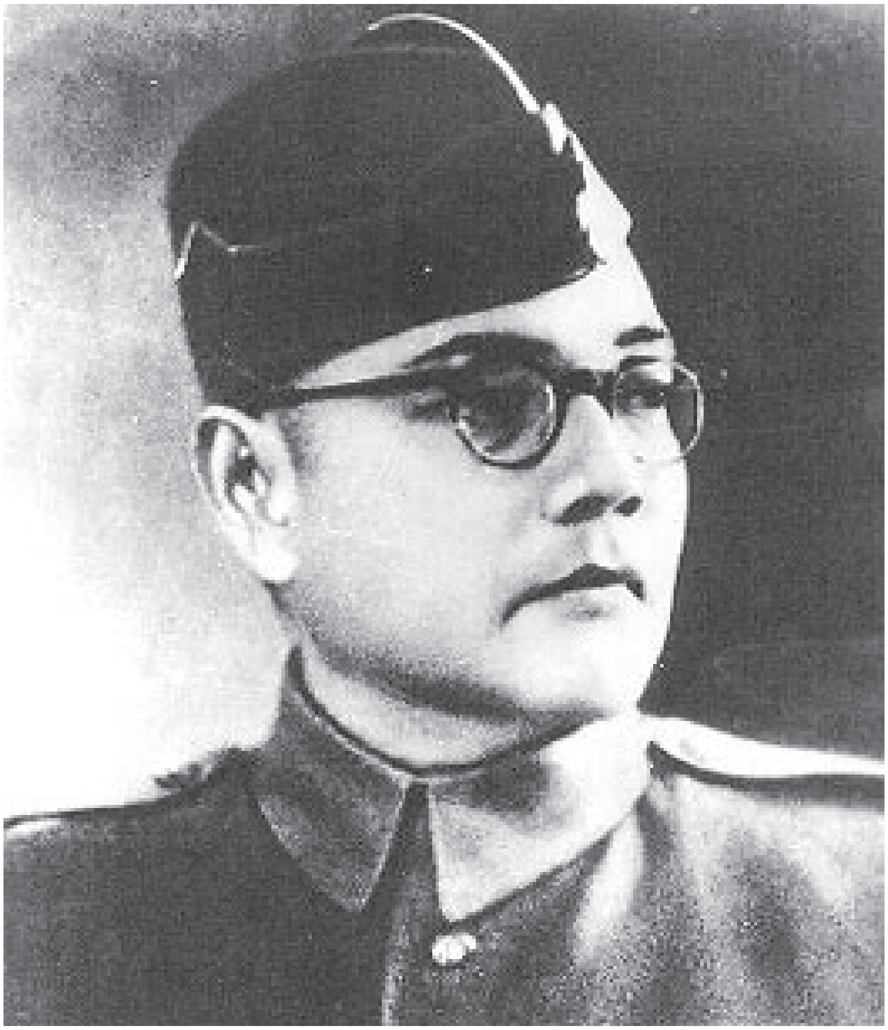

बनारस में रहते हुए रास बिहारी बोस ने जतिन मुखर्जी और उनके सहयोगियों के साथ अपनी योजनाओं पर चर्चा की, जिसमें जुगांतर समूह के अतुल कृष्ण घोष और नरेंद्र भट्टाचार्य थे, जिन्हें उत्तर भारत में व्यापक सशस्त्र विद्रोह के लिए पूर्व की योजनाओं और तैयारियों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। ये जुगांतर क्रांतिकारी 1914 के अंत में नेताजी से मिलने और बंगाल में विद्रोह के लिए जर्मनी से हथियारों की खरीद से संबंधित मामलों पर चर्चा करने के लिए बनारस गए। जुगांतर के नेताओं ने जर्मनी से हथियारों और गोला-बारूद के आने की संभावना पर भरोसा किया और नेताजी ने इस तथ्य पर जोर दिया कि अगर

मुखर्जी और उनके सहयोगी वास्तव में जर्मन हथियारों की आपूर्ति प्राप्त कर सकते हैं और बंगाल में विद्रोह शुरू कर सकते हैं, तो अनुशीलन समिति उन्हें समर्थन और मदद देने के लिए तैयार रहेगी।[4]

वर्ष 1911 में जर्मनी और भारतीय क्रांतिकारियों के संबंधों के इतिहास में एक नए अध्याय की शुरुआत हुई थी। फ्रेडरिक वॉन बेम्हेर्डी कि पुस्तक 'जर्मनी एंड द नेक्स्ट वॉर' अक्टूबर 1911 में प्रकाशित हुई थी, जिसमें पुस्तक के लेखक ने संकेत दिया था कि भारत की हिंदू आबादी एक मजबूत क्रांतिकारी तत्व के अस्तित्व से चिह्नित हो सकती है जो भारत के मुसलमानों के साथ एकजुट हो सकती है और कि उनकी ओर से किया गया संयुक्त प्रयास एक बहुत ही गंभीर खतरा पैदा कर सकता है जो दुनिया में ब्रिटेन की उच्च स्थिति की नींव को हिला सकता है। उन्होंने ब्रिटेन के खिलाफ जर्मनी और भारतीय क्रांतिकारियों के बीच एक युद्धकालीन संधि का अनुमान भी लगाया था।[5] इस पुस्तक को भारत के क्रांतिकारियों के प्रति जर्मन सहानुभूति के संकेत के रूप में बंगाल के क्रांतिकारियों द्वारा व्यापक रूप से प्रशंसित किया गया।

वैकल्पिक नेतृत्व और क्रांति की योजना (1920-1928)

भारत के स्वतंत्रता संघर्ष के इस चरण में, नेताजी ने राष्ट्रीय राजनीति में एक वैकल्पिक नेतृत्व प्रदान किया, जिसमें गांधीवादियों का वर्चस्व था। इस वैकल्पिक नेतृत्व ने भारत और विशेष रूप से बंगाल के स्वतंत्रता सेनानियों को एक वैकल्पिक रास्ता दिखाया, जिनका मानना था कि स्वतंत्रता केवल एक क्रांति द्वारा विदेशी शासकों से छीनी जा सकती है, न कि प्रार्थना और याचिका से जैसा कि मुख्यधारा के कांग्रेस नेताओं ने दावा किया था। स्वराज्य पार्टी के सदस्य के रूप में कई क्रांतिकारी थे जिन्होंने कलकत्ता नगर निगम के मुख्य कार्यकारी अधिकारी के रूप में नेताजी की उम्मीदवारी का समर्थन किया था। बंगाल में क्रांतिकारी के साथ कांग्रेस के गठबंधन पर एक संक्षिप्त नोट के रूप में कहा गया है:-"क्रांतिकारी स्वराज्य पार्टी के वित्तीय समर्थन पर निर्भर थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वराज्य पार्टी और क्रांतिकारी अन्योन्याश्रित थे और क्रांतिकारी इस दल व्यवस्था के घटक अंग थे। 1925 के बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के चुनावों में क्रांतिकारियों के पास 26 सदस्यों का बहुमत था।"[6]

1927 में मिदनापुर जेल के राज्य कैदियों ने सभी क्रांतिकारी समूहों को एकजुट करने का फैसला किया और उनकी रिहाई के बाद ऐसा करने का प्रयास भी किया गया। उन्होंने कांग्रेस के साथ काम करने के लिए एक खुला संगठन बनाने के उद्देश्य से 'वर्कर्स लीग' को पुनर्जीवित करने का भी प्रयास किया। आईबी की एक रिपोर्ट के अनुसार, "सुभाष चंद्र बोस, भूपेन दत्ता, अरुण गुहा, प्यूमा दास और सुरेन घोष, और अनुशीलन के रबिंद्र सेन और प्रतुल गांगुली ने फैसला किया कि कांग्रेस की गतिविधियों से देश में विद्रोह के लिए आवश्यक माहौल बनने की संभावना नहीं है। भूपेन दत्ता ने तदनुसार पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य के लिए,'वर्कर्स लीग' को प्रभावशाली बनाने के लिए योजना तैयार की। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के मद्रास सत्र में इस पर चर्चा भी की गई, जिसमें बंगाल के सभी महत्वपूर्ण क्रांतिकारियों ने भाग लिया था।[7]

निर्वासन का कालक्रम (1928-1938)

बंगाल के क्रांतिकारी नेताओं ने 1928 की शुरुआत में कलकत्ता में एक कार्यकर्ता सम्मेलन बुलाया, जिसकी अध्यक्षता सुभाष चंद्र बोस ने की। यह निर्णय लिया गया कि भूपेन दत्ता की 'वर्कर्स लीग' को 'बंगाल की स्वतंत्रता लीग' के रूप में स्वीकार किया जाएगा। क्रांतिकारियों ने तब कलकत्ता में बंगाल प्रांतीय कांग्रेस समिति पर कब्जा करने का फैसला किया, जिसमें 1928 के अंत तक, वे काफी हद तक सफल हो गए थे और एक 'स्वैच्छिक मुख्य समूह' का गठन किया था, जिसका उद्देश्य विद्रोह का उदय होने पर उनकी लड़ाकू शक्ति बनना था।[8]

1928 में कलकत्ता कांग्रेस ने भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास में एक नया अध्याय आरंभ किया और 'इंडिपेंडेंस लीग फॉर इंडिया' के सदस्यों ने अपने संगठन को भंग कर दिया और भारत के लिए डोमिनियन स्टेटस के कांग्रेस के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। फिर भी, बंगाल के क्रांतिकारियों ने नेताजी को एक स्वतंत्रता प्रस्ताव पेश करने के लिए मजबूर किया, जो गांधी के कड़े विरोध के कारण हार गया।[9]

हालांकि जुगांतर क्रांतिकारियों ने 1935 तक बंगाल की राजनीति में एक महत्वपूर्ण कारक के रूप में नेताजी का समर्थन किया, लेकिन तीस के दशक के मध्य से उन्होंने खुद को नेताजी विरोधी शिविरों के साथ जोड़ना शुरू कर दिया और अंततः उग्रवादी राष्ट्रवाद के सभी निशान छोड़कर खुद को मुख्यधारा की कांग्रेस में विलय कर लिया। कांग्रेस के भीतर जब नेताजी ने लोगों को वास्तविक और अंतिम शक्ति देने की माँग की तो अनुशीलन और बंगाल स्वयंसेवकों ने पूरे दिल से उनका समर्थन किया। 1939 की त्रिपुरी कांग्रेस से पहले, क्रांतिकारी वर्तमान मामलों पर चर्चा के लिए उनके निवास पर इकट्ठा हुए।[10] यह निर्णय लिया गया कि नेताजी को फिर से कांग्रेस अध्यक्ष चुना जाना चाहिए ताकि अन्य कांग्रेस नेताओं को उनके गुप्त समझौते के फार्मूले का उपयोग करके ब्रिटिश शासकों के सामने आत्मसमर्पण करने से रोका जा सके। जाने-माने समाजवादी आचार्य नरेंद्र देव ने अनुशीलन नेताओं के अनुरोध पर नेताजी की उम्मीदवारी के समर्थन में एक ज्ञापन वितरित किया। ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ लोकप्रिय समर्थन जुटाने के लिए कांग्रेस से नेताजी के निलंबन के बाद त्रैलोक्य चक्रवर्ती ने नेताजी के साथ पूरे उत्तर भारत की यात्रा की।

हालांकि 1940 के बाद नेताजी और अनुशीलन समूह के प्रतुल गांगुली ने अलीपुर सेंट्रल जेल में रहते हुए फैसला किया कि चूँकि अधिकांश क्रांतिकारियों को कैद किया गया था, इसलिए उनके लिए जेल के भीतर से उठना संभव नहीं होगा। इसलिए नेताजी रूस जाने के लिए देश छोड़ देंगे और गांगुली वहाँ उनसे मिलेंगे। इससे पहले 1938 में नेताजी को एक पूर्व अनुशीलनवादी रासबिहारी बोस से एक पत्र मिला, जिसमें उन्हें क्रांतिकारी भावना के साथ राष्ट्र का नेतृत्व करने के लिए कहा गया था।[11]

समझौता नहीं करने वाला अकेला योद्धा (1938-1945)

नेताजी ने अपनी असाधारण राजनीतिक दूरदर्शिता से यह महसूस किया कि दूसरा

विश्व युद्ध होने वाला है, अतः देश में क्रांतिकारी ताकतों को मजबूत करना आवश्यक है। नेताजी ने अनुशीलन समिति के रबी सेन से अनुरोध किया कि वह एक विश्वसनीय व्यक्ति को जरूरी काम के लिए उनके पास भेजें। अनुशीलन समिति के त्रिदीब चौधरी को रबी सेन द्वारा चुना गया था और नेताजी के सामने लाया गया, जिन्होंने उन्हें अपने पत्र के साथ उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत में अपने एक दोस्त के पास भेजा, ताकि वहाँ की जनजातीय स्थिति का आकलन किया जा सके और उस क्षेत्र के माध्यम से उनके अज्ञात गंतव्य तक जाने की संभावना को परखा जा सके। त्रिदीब चौधरी ने नेताजी के प्रस्थान से आठ से नौ महीने पहले इस कार्य को पूरा किया।[12]

बोस ने स्वतंत्रता के लिए अपनी लड़ाई में बाहरी सैन्य सहायता प्राप्त करने के लिए 1941 में भारत छोड़ दिया। बाहर से अंग्रेजों पर सशस्त्र हमला करने के लिए भारत छोड़ने की तैयारी करते समय उन्हें बंगाल के क्रांतिकारियों द्वारा सभी साधनों से मदद की गई थी। उन्होंने अपने प्रस्थान से पहले जमीनी तैयारियों के लिए अनुशीलन के सदस्यों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया और बंगाल स्वयंसेवकों ने भारत से विदेशी भूमि में जाने के लिए आवश्यक धन का बड़ा बोझ उठाया। स्वयंसेवकों ने उनके जाने के बाद भी ट्रांसमीटरों के माध्यम से नियमित रूप से उसके साथ संपर्क बनाए रखा ताकि उन्हें घर की मौजूदा राजनीतिक स्थिति से अवगत कराया जा सके और अगले कदम के बारे में उनसे निर्देश प्राप्त किया जा सके। अनगिनत संघर्षों के बाद उन्हें पहले जर्मनी और फिर जापान से सहायता मिली। जब नेताजी जर्मनी से सहायता लेकर वापस पूर्वी एशिया पहुँचे और रास बिहारी बोस से इंडियन नेशनल आर्मी का नेतृत्व सँभाला, तो उन्होंने पाया कि सिंगापुर की स्थिति लगभग तैयार हो चुकी थी, क्योंकि बंगाल के कुछ क्रांतिकारी पहले से ही जापान, सिंगापुर, जावा और मलय में काम कर रहे थे। उनके लिए चिंता का मुख्य विषय यह था कि युद्ध की स्थिति का उपयोग भारत की स्वतंत्रता के लिए कैसे किया जाए।

वस्तुतः इन क्रांतिकारियों का राष्ट्रवाद किसी विशेष जाति या समुदाय के प्रति घृणा की भावना पर आधारित नहीं था। यह मानवतावाद का दर्शन था जिसने क्रांतिवाद की उनकी विचारधारा के आधार के रूप में कार्य किया। 1922 में रास बिहारी बोस और 1938 में नेताजी ने भी यही विचार व्यक्त किया जब उन्होंने कहा कि गुलाम दुनिया की मुक्ति के लिए भारतीय स्वतंत्रता आवश्यक है और केवल इस कारण से, भारत को स्वतंत्रता प्राप्त करनी थी। औपनिवेशिक अधीनता से छुटकारा पाना न केवल लक्ष्य था, यह एक महान मिशन को प्राप्त करने के लिए एक साधन भी था, और यह एक ऐसी दुनिया का निर्माण करना था जहाँ मानव जाति पूरी तरह से दुनिया के सामने से साम्राज्यवाद के सभी रूपों को समाप्त करते हुए स्वतंत्रता का जीवन जीएगी।[13]

भारत के क्रांतिकारियों ने महसूस किया कि क्रांतिकारी आदर्शों को पूरा करने के लिए, राष्ट्रीय मुक्ति आवश्यक थी। गरीबी उन्मूलन के लिए, लाखों लोगों को मुक्त किया जाना चाहिए। श्री अरबिंदो ने 20वीं शताब्दी के पहले दशक में कहा था कि "हमारा राष्ट्रवाद एक धर्म है जो स्वयं भगवान से आया है"। उन्होंने आगे कहा कि जब दिव्य संदेश नीचे आया, तो बंगाल इसे आंतरिक रूप से स्वीकार करने के लिए तैयार था। ऐसा लग रहा था जैसे पूरा समुदाय नींद से जाग उठा और पूरे देश को स्वतंत्रता के मार्ग पर चलने का आह्वान किया। श्री अरबिंदो ने ईश्वरीय संदेश को स्वीकार करने के लिए बंगाल की तैयारियों के बारे में जो कहा, उसका उदाहरण 19वीं शताब्दी के बंगाल की महान हस्तियाँ हो सकती हैं जो ब्रिटिश शासन के दौरान ही दिखाई दी थीं। जिसमें विवेकानंद, बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय, विद्यासागर और रवींद्रनाथ टैगोर आदि मुख्य है जिन्होंने विभिन्न माध्यमों से क्रांति के लिए दशा और दिशा तैयार की थी।

बोस ने स्वतंत्रता के लिए अपनी लड़ाई में बाहरी सैन्य सहायता प्राप्त करने के लिए 1941 में भारत छोड़ दिया। बाहर से अंग्रेजों पर सशस्त्र हमला करने के लिए भारत छोड़ने की तैयारी करते समय उन्हें बंगाल के क्रांतिकारियों द्वारा सभी साधनों से मदद की गई थी। उन्होंने अपने प्रस्थान से पहले जमीनी तैयारियों के लिए अनुशीलन के सदस्यों का बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया और बंगाल स्वयंसेवकों ने भारत से विदेशी भूमि में जाने के लिए आवश्यक धन का बड़ा बोझ उठाया

निष्कर्ष

क्रांतिकारियों के पास सुव्यवस्थित समूह और समर्पित कार्यकर्ता थे और वे उनके माध्यम से लोकप्रिय समर्थन प्राप्त कर सकते थे। बंगाल में कांग्रेस लोकप्रिय थी, लेकिन क्रांतिकारी अपनी कम उम्र और चरित्र की ताकत के कारण जमीनी स्तर पर लोगों के दिल के करीब थे। क्रांतिकारी चुनाव के दौरान कांग्रेस के लिए काम करते थे। बंगाल में कांग्रेस के युवा सदस्य या तो कुछ क्रांतिकारी समूहों से संबंधित थे या उनसे बहुत प्रभावित थे। कांग्रेस नेता अकसर क्रांतिकारियों से या तो सत्ता पर कब्जा करने या प्रांतीय स्तर पर कांग्रेस संगठन में सत्ता बनाए रखने के लिए मदद माँगते थे।

यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त दस्तावेज हैं कि नेताजी क्रांतिकारियों की मदद करते थे, जैसा कि उनके राजनीतिक गुरु सी. आर. दास ने भी किया था - उन्हें धन प्रदान करके, भगोड़ों के लिए गुप्त आश्रयों की व्यवस्था करके, उन्हें प्राथमिक शिक्षकों के पदों पर कलकत्ता नगर निगम के तहत रोजगार प्रदान करके इत्यादि। कई अवसरों पर, उन्होंने गोपीनाथ साहा, भगत सिंह, जतिन दास और अन्य क्रांतिकारियों को खुले तौर पर श्रद्धांजलि दी थी। लेकिन उन्होंने इस विचार को कभी भी पूरे दिल से स्वीकार नहीं किया कि विदेशी शासकों को व्यक्तिगत हत्या के अतिवादी तरीके से देश से बाहर निकाला जा सकता है।[14] उनका मानना था कि एक सशस्त्र विद्रोह आवश्यक था जो केवल वृहत स्तर पर लोकप्रिय समर्थन के साथ ही संभव होगा। कई क्रांतिकारी नेताजी के पूरे देश में, विभिन्न जेलों और जेल शिविरों में सह-कैदी थे और इसने उन्हें

उनके साथ घनिष्ठ संपर्क में आने और सशस्त्र प्रतिरोध के बारे में अपनी राजनीतिक योजनाओं पर चर्चा करने की सुलभता दी थी।

यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि क्रांति और विद्रोह समान नहीं हैं, खासकर बंगाल में क्रांतिकारी आंदोलन के संदर्भ में। एक विद्रोही का लक्ष्य तात्कालिक होता है, किसी भी तरह से मिशन को बिना देरी के पूरा किया जाना और यह विद्रोह की परिणति होती है। लेकिन क्रांति इससे कहीं ज्यादा है। एक क्रांतिकारी का आदर्श या लक्ष्य केवल किसी ऐसी चीज की तत्काल उपलब्धि तक सीमित नहीं है। यह आगे बढ़ता है और इसके आगे बढ़ने का कोई अंत नहीं है। इसलिए एक क्रांतिकारी के जीवन में आत्मसंतुष्टि की कोई गुंजाइश नहीं है। उन्हें अपने साथियों के सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक जीवन के संपूर्ण परिवर्तन के लिए अपने जीवन का बलिदान करने के लिए तैयार रहना चाहिए और क्रांतिकारी आंदोलन में उनका पूरा जीवन लग सकता है और यहाँ तक कि अगली पीढ़ियों को भी इसे जारी रखना पड़ सकता है। समाज के पास नई-नई समस्याएँ हो सकती हैं, क्रांतिकारी द्वारा नई रणनीतियों को भी स्वीकार करना पड़ सकता है जिसके परिणामस्वरूप उसे समय के साथ तालमेल रखने के लिए अपनी योजनाओं और कार्यक्रमों को बदलना पड़ सकता है। इस सब के बावजूद, उद्देश्य और क्रांतिकारी आदर्श अपरिवर्तित रहता है। यहाँ तक कि अगर वह अपने मिशन में विफल रहता है तो भी उसकी नैतिक जीत होगी क्योंकि उसका प्रयास नि:स्वार्थ और देशभक्ति से पूर्ण है।

क्रांतिकारी स्वतंत्रता के बाद भारत के कायाकल्प में विश्वास करते हैं, लेकिन वे इस प्रक्रिया में पारंपरिक भारतीय मूल्यों और मान्यताओं, ऋषियों के ज्ञान को कभी नहीं छोड़ते। साथ ही वे वर्तमान के लौकिक यथार्थ की अनदेखी करते हुए अतीत में नहीं जीते रहे। क्रांतिकारियों ने कभी भी किसी विशेष पश्चिमी या पूर्वी राजनीतिक दर्शन, पुराने या नए, को उनके संबंधित गुणों को आँके बिना स्वीकार नहीं किया और यही कारण है कि इसने मार्क्सवाद को एकमात्र अचूक विचारधारा, एक पूर्ण सत्य के रूप में स्वीकार नहीं किया। इस संबंध में यह ध्यान दिया जा सकता है कि 1931 से 1937 तक विभिन्न जेलों, विशेष रूप से बक्सा, देवली, बहरामपुर और हिजली शिविरों के साथ-साथ अंडमान सेलुलर जेल में भी कई राष्ट्रवादी क्रांतिकारी कम्युनिस्टों में बदल गए और ब्रिटिश शासकों द्वारा निभाई गई भूमिका इस परिवर्तन में उल्लेखनीय थी।

इस अवधि के दौरान मार्क्सवाद और साम्यवाद पर पुस्तकों के ढेर को जेलों में भेजा जाता था। यहाँ तक कि सर जॉन एंडरसन ने भी 1936 में अंडमान का दौरा करने के बाद अंडमान के कैदियों को उपहारस्वरूप पुस्तकों से भरे लकड़ी के दो विशाल बक्से भेजे थे, जिन पर यह स्पष्ट रूप से लिखा गया था "सेलुलर जेल के राजनीतिक कैदियों को बंगाल के राज्यपाल की ओर से एक उपहार"। प्रसिद्ध चटगाँव क्रांतिकारी गणेश घोष के अनुसार, इनमें से अधिकांश पुस्तकें मार्क्सवादी साहित्य, मार्क्सवादी दर्शन और मार्क्सवादी अर्थव्यवस्था की थीं।[15] गणेश घोष, जो बाद में कम्युनिस्ट बन गए, ने लिखा कि उन दिनों के दौरान, राजनीतिक कैदियों को मार्क्सवाद पर पुस्तकों की आपूर्ति की जाती थी, शायद इसलिए कि सरकार इस धारणा को स्वीकार कर चुकी थी कि यदि क्रांतिकारी मार्क्सवादी बन गए तो वे अंतरराष्ट्रीयता के पक्ष में अपने उग्रवादी राष्ट्रवाद को छोड़ देंगे।

1934 में देवली कैंप के एक बंदी डॉ. परिमल रे ने अपनी पुस्तक 'डाउन मेमोरी लेन' में वहाँ के अपने अनुभव का वर्णन किया। आईबी के एक अधिकारी ने उक्त शिविर में एक साक्षात्कार में उनसे पूछा था कि क्या उन्होंने अब तक कोई 'कम्युनिस्ट साहित्य' पढ़ा है। हालांकि उन दिनों वह सह-कैदी कॉमरेड काली सेन द्वारा मार्क्सवाद पर ली गई कक्षाओं में भाग ले रहे थे, रे का जवाब नकारात्मक था क्योंकि उन्होंने सोचा था कि एक स्पष्ट उत्तर शासकों को नाराज कर सकता है। उन्होंने लिखा, "मैं इस पर उनकी टिप्पणियों से आश्चर्यचकित था। अधिकारी ने तुरंत जवाब दिया, "ओह, यही कारण है कि आपके विचार इतने संकीर्ण हैं। आपको कम्युनिस्ट साहित्य पढ़ना चाहिए।"[16] शासकों ने यह देखा था कि भारतीय कम्युनिस्ट गांधी के नमक आंदोलन से कैसे दूर रहे थे और बहिष्कार करने के बजाय उन्होंने विदेशी कपड़ों का उपयोग करना शुरू कर दिया था, क्योंकि उनका मानना था, उनका बहिष्कार लंकाशायर के श्रमिकों को बेरोजगार कर देगा। इस घटनाओं ने शासकों को खुश कर दिया और देश में मार्क्सवाद का खुली बाहों के साथ स्वागत किया गया।

संदर्भ-

1. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय (1999), खंड -02, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार
2. ब्रूमफील्ड, जे. एच. (1968), इलीट कनफ्लिक्ट इन प्लुरल सोसाइटी अनडेफिनएड 20 सेंचुरी बंगाल, पृष्ठ 17-19.
3. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय (1999), खंड -02, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार.
4. बोस, सुभास चंद्र (1967) करेस्पोंडेंसेस 1924-1932 नेताजी रिसर्च ब्यूरो बुक एंड स्टेशनरी सीओ. कलकत्ता, पृष्ठ 103-104.
5. फ्रेडरिक वॉन बेम्हेर्डी (1911), 'जर्मनी एंड द नेक्स्ट वॉर', पृष्ठ 10-19.
6. गोपनीय फाइल, संख्या 26/32। भाग-1परिचयात्मक, ईबी, वेस्ट बंगाल स्टेट अचीव्स, कलकत्ता, पृष्ठ 09-11.
7. चटर्जी, रेवा (2000), नेताजी सुभास बोस बंगाल रेवोलुशन एण्ड इंडिपेंडेंस बुक्स नई दिल्ली, पृष्ठ 100-103.
8. सामंत, अमिया(1995), टेररिज्म इन बंगाल वॉल. 1-3 गोवत ऑफ वेस्ट बंगाल.
9. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय (1999), खंड -05, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृष्ठ 212.
10. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय (1999), खंड -02, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृष्ठ 100-103.
11. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय (1999), खंड -09, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पृष्ठ 40-42.
12. वही, पृष्ठ 67-68.
13. वही, पृष्ठ 205-207 .
14. बोस, मिहिर (1982), द लॉस्ट हीरो, क्वार्टेट बुक्स लंदन.
15. घोष, गणेश, (2006), मुक्तितीर्थ अंडमान, नैशनल बुक एजेंसी, पृष्ठ137.
16. रे, परिमल के. (2007), डाउन मेमोरी लेन, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 152-153.

नेताजी की दृष्टि में स्वतंत्र भारत

दीपेश चतुर्वेदी

भारत को दासता की बेड़ियों से मुक्त कराने को लेकर तो नेताजी की अपनी दृष्टि थी ही, स्वतंत्र भारत को वैश्विक क्षितिज पर अग्रणी बनाने को लेकर भी उनकी मौलिक और स्पष्ट दृष्टि थी। एक विश्लेषण

नेताजी सुभाष चंद्र बोस का जीवन और सफर एक व्यक्ति की स्वयं को "नितांत महत्वहीन प्राणी"[1] मानने से स्वयं को अस्थायी आजाद हिंद सरकार और उसकी सेना के राज्य प्रमुख के रूप में घोषित करने तक का सफर है। सर्वाधिक प्रतिष्ठित क्रांतिकारियों में से एक के रूप में वह सच्चे अर्थों में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक दूरदर्शी नेता थे, जिन्हें खुर्शीदबेन नौरोजी "नेहरू से अधिक लोकप्रिय और उनके प्रति आकर्षण को कुछ स्थितियों में गांधी की तुलना में अधिक प्रबल"[2] मानती थीं। एक राजनेता और अंतरराष्ट्रीय कद के नेताजी का वर्णन उनके समकालीन विदेशी समाचार माध्यमों ने अलग-अलग रूपों में किया, जैसे ब्रिटिश अखबार ने उन्हें 'इंडियाज डी वलेरा'[3] कहा जबकि फासीवादी समाचार पत्र पोपोलोड' इटालिया ने उन्हें 'बुद्ध के समान, श्रेष्ठ बुद्धि वाले और एशियाई भद्रता के प्रतीक'[4] के रूप में प्रस्तुत किया। वहीं, इतिहासकार ई. जे. हॉब्सबॉन ने उन्हें यूरोप के बाहर के राष्ट्रवाद को समझने के लिए अति महत्वपूर्ण और उनके सामरिक सिद्धांत को उपनिवेश विरोधी स्वतंत्रता आंदोलन का महत्वपूर्ण साधन माना, जहाँ राष्ट्रीय हितों को अन्य अंतरराष्ट्रीय 'आदर्शवादी'[5] उद्देश्यों के ऊपर रखा जाता है। उनकी पुस्तकों, लेखन, भाषणों और पत्रों के अध्ययन से हमें व्यावहारिक विश्लेषण और रचनात्मक सुझावों के साथ बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की विश्व व्यवस्था, राजनीति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों का पूर्वाग्रह से भरा चित्र मिलता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के भविष्य के भारत, उसकी सरकार के स्वरूप, नीतियों, योजना, सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के प्रति उनकी अपनी एक सोच थी।

नेताजी का राजनीतिक दर्शन और बौद्धिकता उनके तथ्यपूर्ण और ओजस्वी भाषणों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण थी। वह केवल शब्दों के जादूगर नहीं थे, बल्कि भारत के प्रति उनकी एक विशेष सोच थी और सोच को साकार करने की उनमें क्षमता थी। उन्होंने भारत के सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण की योजना प्रक्रियाएँ शुरू कीं क्योंकि भारत को स्वतंत्रता के मार्ग पर ले जाने की अपनी क्षमताओं पर उन्हें भरोसा था। स्वतंत्र भारत को वह एक शक्तिशाली औद्योगिक राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे, जो अशिक्षा और गरीबी की बेड़ियों से मुक्त होकर भौतिक और आध्यात्मिक दोनों स्तरों पर विश्व की रचनात्मक सहायता कर सके। लंदन में जब वह आईसीएस सेवाएँ छोड़ने की तैयारी कर रहे थे, तब देशबंधु सी. आर. दास को लिखे अपने पत्र (2 मार्च, 1921) में उन्होंने पहली बार अपनी यह इच्छा जाहिर की, उन्होंने लिखा, "कांग्रेस अभी वर्तमान व्यवस्था को ढहाने में लगी है, इसलिए जब तक विध्वंस का यह कार्य पूरा नहीं हो जाता, तब तक रचनात्मक कार्यकलाप शुरू करना संभव नहीं है; किंतु मेरा मानना है कि अभी से, जब विध्वंस का कार्य जारी है, हमें सृजनात्मक कार्य शुरू कर देना चाहिए। हमारे राष्ट्रीय जीवन की किसी भी समस्या के प्रति हम सफलतापूर्वक नीति बना सकें इसके लिए सोच और शोध की आवश्यकता होगी।"[6] उन्होंने कांग्रेस को शिक्षा, आसूचना, मुद्रा-विनिमय, देशी राज्यों, वयस्क मताधिकार, दलित वर्ग, श्रमिक और कारखाने, किसानों और स्वराज के लिए संविधान के प्रति निश्चित नीतियाँ बनाने का सुझाव दिया। यही नहीं, वह कांग्रेस के एक विचार मंच और अधिप्रचार समिति का गठन भी करना चाहते थे, जो पूर्णत: शोध प्रयोजनों को समर्पित हो और समूचे देश से सूचना एकत्र कर उसकी भविष्य की नीतियों

का निर्माण करे। आगे चलकर, मांडले जेल समेत अपने विभिन्न राजनीतिक कारावासों के दौरान समस्त समकालीन विश्व और विशेष रूप से भारत के अपने ज्ञान का विकास करने के लिए नेताजी ने अनेकानेक विषयों का अध्ययन किया, जिनमें यूरोप के इतिहास, साम्राज्यों और क्रांतियों के इतिहास, सामाजिक मानव-शास्त्र, राजनीतिक वृत्तांत, तुलनात्मक धर्म, मनोविज्ञान, अपराध विज्ञान, व्यायाम और आहारिकी तथा मानव संबंधों में जातीय असमानता जैसे विषय शामिल थे।[7] यही नहीं, सन् 1930 के दशक में और फिर 1940 के दशक में यूरोप में अपने निर्वासन के दौरान वह भारत के भविष्य के विकास के प्रक्षेप पथों, मुद्दों और समस्याओं को लेकर पढ़ते और लिखते रहे और अपने प्रिय व्यक्तियों जैसे द' वलेरा, एटली, तोजो, हिटलर, मुसोलिनी, लॉर्ड हैलिफैक्स, रोमा रोलां, वोजतेक तुका और एडवर्ड बेन्सी आदि जैसे प्रख्यात व्यक्तियों से विचारों का आदान-प्रदान भी करते रहे। अध्ययन, लेखन, विचारों के आदान-प्रदान के इसी क्रम में और कोलकाता के मेयर, कांग्रेस अध्यक्ष और बंगाल कांग्रेस समिति के प्रधान के रूप में राष्ट्र निर्माण के कार्य के दौरान उनके निजी अनुभव से भी भविष्य के भारत के प्रति उनके विचार का विकास हुआ। योजना आयोग, सरकार का स्वरूप, विदेश नीति, औद्योगिकीकरण, रक्षा और सामाजिक-आर्थिक पुनर्निर्माण आदि कुछ प्रमुख क्षेत्र हैं, जिनमें उन्होंने अपने कार्य पर व्यापक स्तर पर ध्यान दिया।

योजना आयोग

स्वतंत्र भारत के लिए नेताजी के जो महानतम योगदान हैं, उनमें से एक योजना आयोग था, जिसकी स्थापना स्वतंत्र भारत में की गई। यह आयोग औद्योगिक योजना और नीति निर्माण से संबद्ध अन्य कार्यों में महती भूमिका निभाता है। इसकी आवश्यकता पर सबसे पहले नेताजी ने सी. आर. दास को लिखे अपने पत्र में अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश डाला था, जिसमें उन्होंने नीति निर्माण की भूमिका पर विचार किया था, और फिर बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में इसे खुल कर सामने रखा जब उन्होंने जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में योजना आयोग की आधारशिला रखी। योजना आयोग को उन्होंने अति महत्वपूर्ण संस्था माना, जो औद्योगिक और राजकोषीय योजना की नीतियों का निर्माण कर सकती थी। फरवरी 1938 में हरिपुरा में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 51वें अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने इसके उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा था, "पुनर्निमाण की एक व्यापक योजना तैयार करने हेतु एक आयोग का गठन करना हमारी भावी राष्ट्रीय सरकार का पहला कदम होगा। इस योजना के दो भाग होंगे - एक तत्काल कार्यक्रम और दूसरा दीर्घकालिक कार्यक्रम। पहला भाग तैयार करते समय, जिन तात्कालिक उद्देश्यों को ध्यान में रखना होगा, वे त्रिआयामी होंगे - पहला, देश को आत्म-त्याग के लिए तैयार करना; दूसरा, भारत को एक करना; और तीसरा, स्थानीय व सांस्कृतिक स्वायत्तता को स्थान देना।"[8] राष्ट्रीय योजना की अवधारणा में उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन और तीव्र औद्योगिकीकरण की आवश्यकता जैसे मुद्दों को भी शामिल किया। इन सभी मुद्दों पर कांग्रेस ने पहले कभी गंभीरता से विचार नहीं किया था।

नेताजी की भूमिका से प्रेरित योजना आयोग ने उनके भविष्यदर्शी प्रयास के प्रति श्रद्धांजलि के रूप में उनकी जन्म शताब्दी के अवसर पर वर्ष 1997 में 'सुभाष चंद्र बोस : पायनियर ऑफ इंडियन प्लानिंग' शीर्षक एक स्मारक पुस्तक का प्रकाशन किया। इस अवसर पर योजना आयोग के उपाध्यक्ष मधु दंडवते ने उनकी भूमिका को पथान्वेषी और गति निर्धारक बताया, जिसके परिणामस्वरूप 'सार्थक क्षेत्रीय स्वायत्तता के समर्थन से मजबूत केंद्रीकृत सरकार का गठन'[9] हुआ। यही नहीं, पंचायती राज प्रणाली और सहकारी संघवाद के पीछे के सिद्धांत के प्रति अपना विचार रखते हुए उन्होंने कहा कि इसे नेताजी की गौरवशाली धरोहर माना जा सकता है, जो 'राष्ट्रीय आकांक्षाओं और क्षेत्रीय आवश्यकताओं के बीच सार्थक संश्लेषण'[10] की उनकी संकल्पना में परिलक्षित हुआ था। 10 मई, 1938 को बंबई कॉर्पोरेशन को अपने संबोधन में नेताजी ने नगरीय समाजवाद के विकास पर विस्तार से प्रकाश डाला था और सुझाव दिया था कि इसके लिए हमें पाटलिपुत्र जैसे प्राचीन नगरों और 2,00,000 लोगों को बिना किसी अतिरिक्त कर व ऋण के घर मुहैया कराने वाले विएना नगरपालिका विभाग द्वारा किए गए कार्यों से प्रेरणा लेनी चाहिए। नगरपालिका की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए नेताजी ने कहा, "आधुनिक नगरपालिका को न केवल पीने के शुद्ध पानी, सड़कों, बिजली आदि की व्ययवस्था करनी है, बल्कि इसे प्राथमिक शिक्षा मुहैया कराना है और इसे लोगों के स्वास्थ्य की देखभाल के

साथ-साथ समस्याओं का समाधान करना है, जिस पर कुछ साल पहले तक नगरपालिकाएँ ध्यान नहीं देती थीं।"[11]

सरकार का स्वरूप

नेताजी एक ऐसी संघीय, लोकतांत्रिक, गणतांत्रिक सरकार चाहते थे जो राष्ट्रवाद और समाजवाद के अटल आदर्शों पर आधारित हो। भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर पर आधारित फासीवाद और साम्यवाद का संश्लेषण उनके समाजवाद के विचार का आधार था। उन्होंने इसे 'साम्यवाद' की संज्ञा दी, बुद्धकालीन भारत में समाजवाद के लिए प्रयुक्त शब्द, जो भारतीय स्थितियों के अनुकूल था।[12] 'ए ग्लिम्प्स ऑफ फ्यूचर' शीर्षक एक अध्याय में नेताजी ने इस आदर्श का समर्थन किया और नेहरू के 'फासीवाद-विरोधी' दृष्टिकोण को नितांत गलत माना, क्योंकि नेहरू ने 'कुछ साम्यवाद का और कुछ फासीवाद का स्वरूप' के बीच विश्व के समक्ष एक कठिन विकल्प देखा और स्वयं को साम्यवाद का 'पक्षधर' बताया।[13] किंतु, नेताजी उनके अवगुणों के प्रति सतर्क थे और उन्होंने कहा, "फासीवाद और साम्यवाद दोनों मानते हैं कि राज्य को व्यक्ति से ऊपर होना चाहिए। दोनों को संसद के माध्यम से लोकतांत्रिक सरकार स्वीकार नहीं है। वे दोनों पार्टी के शासन का समर्थन करते हैं। दोनों पार्टी की तानाशाही का समर्थन करते हैं और ऐसे किसी भी समूह का कठोर दमन चाहते हैं, जो इससे असहमत हो।"[14] इसलिए उन्होंने सोवियत रूस के केवल पुनर्संरचना, योजना और शिक्षा तथा फासीवाद के राष्ट्रीय गौरव, एकता व अनुशासन से जुड़े सिद्धांतों को ही अपनाया। साम्यवाद को अपनाने में उनकी कोई रुचि नहीं थी। टोक्यो विश्वविद्यालय के अपने भाषण में तो उन्होंने भारतीय मामलों के लिए मार्क्सवादी प्रचार की आलोचना तक की और कहा, "एक और विषय जिस पर हम पूरी तरह सहमत नहीं हैं, यह है कि मार्क्सवाद के अनुसार, मानव में आर्थिक कारक को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। उस आर्थिक कारक के महत्व की हम पूरी तरह से सराहना करते हैं, जिसकी पूर्व में उपेक्षा कर दी गई थी, किंतु इसे अधिक महत्व देना जरूरी नहीं है।"[15] नेताजी द्वैतवादी राजनीति में विश्वास नहीं रखते थे, बल्कि उनका विश्वास सर्वोत्तम विचारों और प्रथाओं के एक ऐसे संश्लेष में था, जो भारत की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुरूप हो।

नेताजी एक ऐसी संघीय, लोकतांत्रिक, गणतांत्रिक सरकार चाहते थे जो राष्ट्रवाद और समाजवाद के अटल आदर्शों पर आधारित हो। भारत की सामाजिक और सांस्कृतिक धरोहर पर आधारित फासीवाद और साम्यवाद का संश्लेषण उनके समाजवाद के विचार का आधार था। उन्होंने इसे 'साम्यवाद' की संज्ञा दी, बुद्धकालीन भारत में समाजवाद के लिए प्रयुक्त शब्द, जो भारतीय स्थितियों के अनुकूल था

वह एक ऐसी मजबूत केंद्रीय सरकार चाहते थे, जिसमें सभी अल्पसंख्यक समुदायों और प्रांतों को सांस्कृतिक व सरकारी मामलों में बृहत स्तर पर स्वायत्तता हो। अगस्त 1942 में जर्मन पत्रिकाओं में प्रकाशित अपने आलेख 'फ्री इंडिया एंड हर प्रॉब्लेम' में उन्होंने भविष्य के भारत में कांग्रेस पार्टी की भूमिका पर भी प्रकाश डालते हुए लिखा, "वहाँ एक सुदृढ़ केंद्र सरकार होगी। ऐसी सरकारी व्यवस्था के बिना जनता की सुरक्षा की रक्षा नहीं की जा सकती। इस सरकार के पीछे एक सुसंगठित, अनुशासित अखिल भारतीय पार्टी होगी, जो राष्ट्रीय एकता बनाए रखने का मुख्य माध्यम होगी।"[16] और इसमें कांग्रेस की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई क्योंकि यह पूरे भारत का प्रतिनिधित्व करती है और हिंदू महासभा, मुस्लिम लीग, जमींदारों, किसानों, श्रमिकों और कम्युनिस्टों आदि जैसी विभिन्न धाराओं के लोग सदस्य के रूप में इसमें शामिल होते हैं। उन्होंने एकदलीय प्रणाली की आवश्यकता की सिफारिश की, किंतु अन्य दलों के महत्व की उपेक्षा नहीं की और कहा कि यह सब भविष्य ही तय करेगा। वहीं, वह अंग्रेजों की कई नीतियों को दरकिनार करने के अपने आदर्शों पर भी अटल थे। इसमें नौकरशाही की संरचना व प्रवृत्ति में परिवर्तन सबसे पहला कार्य था, क्योंकि उनका विकास अंग्रेजों ने भारतीयों के विरोधी के रूप में किया था। इसलिए उन्हें भारतीयों के अनुकूल प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए क्योंकि पार्टियाँ आएंगी और जाएंगी, किंतु हर हाल में अटल यह नौकरशाही ही असली शासक होगी।

उनके राजनैतिक विरोधी यह कहकर उनकी आलोचना करते हैं कि वे सर्वसत्तावाद के अनुयायी हैं और राज्य के संरक्षण में संपूर्ण अधिनायकवाद चाहते हैं। किंतु, यह राजनैतिक दुष्प्रचार-सा प्रतीत होता है, क्योंकि नेताजी ने एक ऐसे स्वतंत्र भारत की सिफारिश की थी, जो नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करेगा और लोगों तथा संघ की स्वतंत्रता व स्वाधीनता में दखल नहीं देगा। उन्होंने स्वतंत्र भारत में केवल समाजवादी नीति को बिना किसी रुकावट के लागू करने हेतु निरंकुश राज्य को आवश्यक बताया, क्योंकि उस समय सामाजिक-आर्थिक स्थितियों के दयनीय होने के कारण भारत को तीव्र आधुनिकीकरण कार्यक्रम की आवश्यकता होती। नवंबर 1944 में टोक्यो विश्वविद्यालय में एक भाषण में उन्होंने कहा, "उस आर्थिक कार्यक्रम को यथासंभव सर्वोत्तम तरीके से कार्यान्वित करने के लिए आप तथाकथित लोकतांत्रिक प्रणाली हासिल नहीं कर सकते, यदि उस प्रणाली को एक समाजवादी आधार पर आर्थिक सुधार सफलतापूर्वक पूरे करने हों। इसलिए अधिनायकवादी चरित्र की एक राजनैतिक व्यवस्था - एक राज्य - होना जरूरी है।"[17] यह राज्य चंद अमीरों के गुट के रूप में नहीं, बल्कि जनता के सेवक के रूप में कार्य करेगा। जनसाधारण के लिए कल्याणकारी योजना लागू करने हेतु यह प्रणाली उस समय की माँग थी, जो एक ऐसी मजबूत राष्ट्रवादी सरकार के संरक्षण में ही संभव थी जिसका स्वरूप समाजवादी हो। अपनी पुस्तक में सुगत बोस ने सत्ता ग्रहण करने के नेताजी के दृष्टिकोण का बचाव करते हुए लिखा है, "फिर भी इसमें संदेह है कि राज्य की सत्ता के प्रति उनमें व्यक्तिगत रूप से आसक्ति रही हो।

धन-संपत्ति, सांसारिक सुख और आनंद का त्याग उनके संपूर्ण जीवन की विशेषता थी। उनके चरित्र में आत्मनिष्ठा की तुलना में आत्मत्याग का गुण अधिक मजबूत था।"[18] यह बात एमिली को लिखे उनके पत्र में भी देखी जा सकती है, जो उन्होंने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने के बाद लिखा था, जिसमें उन्होंने कहा था, "भारत एक विचित्र देश है, जहाँ लोगों को इसलिए प्यार नहीं किया जाता कि उनके पास शक्ति है, बल्कि इसलिए कि वे सत्ता का त्याग कर देते हैं।"[19] उनका मानना था कि जितनी लोकप्रियता उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने के बाद मिली, उतनी पद पर रहते हुए नहीं मिली।

विदेश नीति

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में ऐसे बहुत कम नेता थे जिनका अंतरराष्ट्रीय संबंधों और भू-राजनीति के प्रति विचार नेताजी की तरह व्यावहारिक हो। वह हमेशा अध्ययन करते रहते थे और प्राचीन भारतीय दर्शन से विदेशी मामलों से निपटने में व्यावहारिक होने की प्रेरणा लेते थे। वह गीता के 'आत्मवत् मन्यते जगत' के सिद्धांत में विश्वास रखते थे, अर्थात मनुष्य अपने स्वभाव के अनुरूप विश्व का न्याय करेगा। उन्हें भारत का शत्रु भारत के बाहर नहीं बल्कि भारत के भीतर ही दिखाई देता और अंग्रेजों के विरुद्ध वह फासिस्टों और कम्यूनिस्टों से सहायता लिया करते थे। अंतरराष्ट्रीय मामलों के प्रति उनकी अनुभवजन्य समझ का विकास स्वतंत्रता संग्राम के दौरान हुआ और उनका दृढ़ मत था कि भारत की विदेश नीति पर "किसी भी देश की आंतरिक राजनीति या उसके राज्य के स्वरूप का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए।" संघर्ष के दौरान भारत को अपने समर्थन का विस्तार और अपनी कला, संस्कृति, धरोहर, सिनेमा, भोजन और साहित्य का प्रचार-प्रसार करते हुए अपने प्रभाव का प्रसार करना चाहिए, जिससे अन्य देशों में भारत की लोकप्रियता बढ़ेगी। संभाषणों के जरिए उन्होंने सूचना युद्ध के महत्व को भी महसूस किया, इसीलिए उन्होंने जोर देते हुए कहा, "मुझे अधिप्रचार शब्द पसंद नहीं है - इसके प्रति झूठ का एक वातावरण है। किंतु मेरा जोर इस बात पर है कि हमें भारत और उसकी संस्कृति को ऐसा बनाना चाहिए कि समस्त विश्व उसे जाने।"[20] यही नहीं, "एक व्यापक स्तर पर प्रभावशाली विदेश व्यापार नीति की जरूरत है, ताकि एक तरफ निर्यात व्यापार और दूसरी तरफ भारत के बाह्य दायित्व के साथ उसके आर्थिक विकास का संयोजन हो।"[21]

नेताजी ने बताया कि ऐसी विदेश नीति, जो 'यथार्थवादी' की बजाय अधिक 'आदर्शवादी'[22] है, के परिणाम किस प्रकार के रहे।" यदि 'मेरे शत्रु का शत्रु' कहावत सच्ची है, तो नैतिकता के स्तर पर विरोधी राष्ट्रों के साथ भी संधि की जानी चाहिए। यदि सैन्य घटक न हो तो विदेश नीति पर न तो शत्रु और न ही मित्र गंभीरता से ध्यान देंगे। इसके अतिरिक्त, विश्वसनीयता साझा हितों के साथ-साथ एक-दूसरे के प्रति उपयोगी होने से भी उत्पन्न होती है। एंटन पर्निका विदेशी मामलों की बोस की समझ के प्रति इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति में भारत की आत्म-प्रस्तुति का सरोकार शिष्टाचार से नहीं बल्कि केवल भारत के राष्ट्रीय हितों से होना चाहिए। पचास वर्षों के बाद, इस क्षेत्र में भारत का आचरण प्रत्यक्ष रूप से न तो 'गांधीवादी' रहा है और न ही 'नेहरूवादी' बल्कि, यह बोस की समझ के अनुरूप रहा है। इसलिए, उनकी रणनीति की राजनीति वैश्विक दृष्टिकोणों की बजाय राष्ट्रीय हित पर आधारित थी, यह राजनीति जिसका उपयोग बोस और माओ, निक्सन और किसिंजर ने किया : हालांकि देर से, यह रणनीति भारत की विदेश नीति और राष्ट्रीय सुरक्षा नीति की विशेषता बन गई है। इस प्रकार, भारत ने एक ऐसी पृष्ठभूमि तैयार की है, जो विश्व राजनीति में एक समान भागीदार के रूप में उसे अन्य देशों से मान्यता दिलाएगी। एक ऐसा भारत जो अपने आचार-विचार से अन्य सभी राष्ट्रों को नहीं जोड़ता; बल्कि ऐसा भारत जो स्वार्थ से परे दूसरे देशों के हितों को मान्यता और सम्मान देता है, ताकि भारत के हितों को भी मान्यता और सम्मान मिले। यह भारत एक वैश्विक शक्ति बनने की चौखट पर खड़ा है।[23]

रक्षा

सन् 1857 के बाद भारत के असैनिकीकरण को नेताजी भारत के इतिहास की सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण घटना मानते थे। इसके चलते स्वतंत्रता और स्वाधीनता का संपूर्ण समर्पण हो गया, जो संभवतः अंग्रेजों को बहुत पहले ही बाहर कर सकती थी। वह सैन्य शक्ति के महत्व को समझते थे, कोई राष्ट्र केवल इसी की बदौलत किसी भी साम्राज्यवादी विस्तार से अपनी रक्षा और भू-राजनीति व अंतरराष्ट्रीय मामलों में स्वयं को अपने बराबर के देशों के बीच प्रस्तुत कर सकता था। वह मानते थे कि स्वतंत्र भारत में वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान पर बड़े उद्योग तेजी से सेना का आधुनिकीकरण और सुधार करेंगे। उन्होंने कहा कि 'अपने तीव्र औद्योगिकीकरण के साथ-साथ अपनी थलसेना, नौसेना और वायुसेना के संगठन के लिए भारत को विदेशों से सहायता की जरूरत होगी। इसलिए, उसे सभी प्रकार की मशीनरी, वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान व उपकरण, और वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों की आवश्यकता होगी। अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए एक दीर्घकालिक अभिविन्यास, प्रेरणा व आत्मविश्वास निर्माण कार्यक्रम हेतु उसे सैन्य विशेषज्ञों तथा सैन्य

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में ऐसे बहुत कम नेता थे जिनका अंतरराष्ट्रीय संबंधों और भू-राजनीति के प्रति विचार नेताजी की तरह व्यावहारिक हो। वह हमेशा अध्ययन करते रहते थे और प्राचीन भारतीय दर्शन से विदेशी मामलों से निपटने में व्यावहारिक होने की प्रेरणा लेते थे। वह गीता के 'आत्मवत् मन्यते जगत' के सिद्धांत में विश्वास रखते थे, अर्थात मनुष्य अपने स्वभाव के अनुरूप विश्व का न्याय करेगा। उन्हें भारत का शत्रु भारत के बाहर नहीं बल्कि भारत के भीतर ही दिखाई देता और अंग्रेजों के विरुद्ध वह फासिस्टों और कम्यूनिस्टों से सहायता लिया करते थे

उपकरण की जरूरत भी होगी। इन मामलों में, "त्रिपक्षीय शक्तियों से बहुमूल्य सहायता मिल सकती है।"[24] इसलिए, स्वतंत्र भारत को सबसे पहले आत्मरक्षा के लिए आधुनिक युद्ध उद्योगों की स्थापना करनी होगी, जिसके लिए निस्संदेह तीव्र औद्योगिकीकरण की जरूरत होगी। जहाँ तक आंतरिक रक्षा का संबंध है, वह समरसता, आंतरिक शांति और सद्भावना को बढ़ावा देने हेतु एक नागरिक सुरक्षा निकाय का गठन करना चाहते थे।

प्रतिकूल परिस्थितियों में धैर्य आवश्यक होता है, जो नेताजी में भरा था। उनके व्यस्त राजनैतिक जीवन में भी उनके पास औद्योगिकीकरण की पूरी योजना थी और उसे वह राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते थे, जो 38 करोड़ भारतीयों की गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी को दूर करने में सहायता करेगा। वह लघु कुटीर और भारी उद्योगों को साथ लेकर राज्य प्रायोजित औद्योगिकीकरण चाहते थे। वह मानते थे कि भारत को आत्मनिर्भर और आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र बनाने के लिए केवल खेती में सुधार पर्याप्त नहीं होगा, इसलिए योजना आयोग की सहायता से तीव्र औद्योगिक विकास जरूरी है

औद्योगिकीकरण

प्रतिकूल परिस्थितियों में धैर्य आवश्यक होता है, जो नेताजी में भरा था। उनके व्यस्त राजनैतिक जीवन में भी उनके पास औद्योगिकीकरण की पूरी योजना थी और उसे वह राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण मानते थे, जो 38 करोड़ भारतीयों की गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी को दूर करने में सहायता करेगा। वह लघु कुटीर और भारी उद्योगों को साथ लेकर राज्य प्रायोजित औद्योगिकीकरण चाहते थे। वह मानते थे कि भारत को आत्मनिर्भर और आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र बनाने के लिए केवल खेती में सुधार पर्याप्त नहीं होगा, इसलिए योजना आयोग की सहायता से तीव्र औद्योगिक विकास जरूरी है। वैज्ञानिक और तकनीकी विकास इसका पोषण करेगा। मेघनाद शाह को दिए अपने साक्षात्कार में उन्होंने औद्योगिकीकरण से जुड़े मुद्दों पर प्रकाश डाला, जिनमें शामिल हैं -

1. हालाँकि औद्योगिक दृष्टिकोण से विश्व एक इकाई है, फिर भी राष्ट्र की स्वायत्तता हमारा लक्ष्य होना चाहिए, विशेष रूप से हमारी प्रमुख आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के क्षेत्र में।
2. हमें धातु उत्पादन, मशीन और उपकरण निर्माण, आवश्यक रासायनिक पदार्थ के निर्माण, परिवहन और संचार उद्योग आदि जैसे मातृ उद्योगों की संवृद्धि और विकास के ध्येय से एक नीति अपनानी चाहिए।
3. औद्योगिकीकरण के लिए तकनीकी शिक्षा और नई पद्धति पर सरकार का नियंत्रण नहीं होना चाहिए और छात्रों को आधुनिक वैज्ञानिक तरीके से प्रशिक्षण दिलाने के लिए जापान जैसे देशों में भेजा जाना चाहिए।
4. एक स्थायी राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद आवश्यक है।
5. अंत में, राष्ट्रीय योजना के प्रति प्रारंभिक कदम के रूप में, राष्ट्रीय योजना आयोग के लिए आवश्यक आंकड़े सुरक्षित करने के मद्देनजर मौजूदा औद्योगिक स्थिति का आर्थिक सर्वेक्षण कराया जाना चाहिए।[25]

इसके अतिरिक्त नेताजी किसी भी साम्राज्यवादी युद्ध में शामिल न होने और अधिकतम लाभ के लिए प्रकृति का सतत दोहन न करने के प्रति भी सतर्क थे। इसके लिए वह बृहत स्तर पर अधिक से अधिक लाभ की योजना बनाना चाहते थे। उन्होंने उद्योगों का "तीन शीर्षों के अंतर्गत वर्गीकरण किया - भारी, मध्यम और कुटीर उद्योग। आज देश के तीव्र आर्थिक विकास के लिए भारी उद्योग निस्संदेह सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। ये उद्योग हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं। हमारा दुर्भाग्य है कि हम इस दिशा में तब तक वांछित प्रगति नहीं कर सकते जब तक केंद्र की सत्ता हमारे हाथ नहीं आ जाती और अपनी राजकोषीय नीति पर हमारा पूर्ण नियंत्रण नहीं हो जाता। सरकार के सहयोग से प्रमुख व्यवसायी मध्यम स्तर के उद्योग शुरू कर सकते हैं। जहाँ तक कुटीर उद्योगों का संबंध है, मेरा मानना है कि उनके और बड़े उद्योगों के विकास के बीच कोई संघर्ष नहीं होना चाहिए।"[26]

सामाजिक-आर्थिक पुनर्सरचना

नेताजी सच्चे राष्ट्रवादी थे और मानते थे कि इस राष्ट्रभक्ति ने उनमें सत्यम (सत्यता), शिवम (शुभत्व), सुंदरम (सौंदर्य) और त्याग (बलिदान)[27] के गुणों का संचार किया था। वे मानते थे कि भारतीय संस्कृति और सभ्यता से प्रेरित ये सर्वोच्च मानवीय गुण हैं, क्योंकि उनके अनुसार 'अतीत का भारत मरा नहीं है। अतीत का भारत जीवित है और भविष्य में भी जीवित रहेगा।'[28] इसलिए, वे कल्याणकारी राज्य की पारंपरिक भारतीय धारणा से प्रेरित समाजवादी सिद्धांतों में विश्वास रखते थे। वे समावेशी राष्ट्रवाद के पक्षधर थे जिसमें राज्य जाति, वर्ण, स्त्री-पुरुष और धर्म के आधार पर भेदभाव नहीं करता। भारतीय समाज के प्रति उनकी व्यावहारिक समझ में परस्पर सहयोग का समावेश था, जिसने धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत का धर्म और राजनीति के बीच अंतर के अर्थ में नहीं, बल्कि धार्मिक मतभेदों के सम्मान और सामंजस्य पर आधारित राजनीति के रूप में मार्गदर्शन किया। वह जातिगत बाधा को दूर कर गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी के पूर्ण उन्मूलन और सभी के लिए समान मौलिक अधिकारों के पक्षधर थे।

ब्रिटिश शासन सामाजिक मतभेदों का एकमात्र कारण है, और स्वतंत्रता मिल जाने पर भारत अपना पूरा ध्यान सामाजिक समस्याओं के समाधान पर केंद्रित करेगा। गरीबी और बेरोजगारी की समस्याओं में सर्वाधिक गंभीर सामाजिक समस्या है। ब्रिटिश शासन के अधीन भारत की गरीबी के मुख्यत: दो कारण थे - ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय उद्योगों का सुनियोजित विनाश और वैज्ञानिक खेती का अभाव। फिर, भारत अपनी ऊर्जा "श्रमिक कल्याण की देखभाल करने के साथ-साथ उन्हें निर्वाह-मजदूरी, स्वास्थ्य बीमा, दुर्घटना मुआवजा आदि प्रदान करने पर लगाएगा। वहीं, किसानों को अत्यधिक कराधान से

मुक्ति और उनकी भयावह ऋणग्रस्तता से राहत दिलाने की व्यवस्था की जाएगी।"[29]

वे सभी बाधाओं को दूर करने में शिक्षा के महत्व को भी समझते थे, उन्होंने कहा, "स्वतंत्र भारत में, स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के निर्माण हेतु काम करने के लिए सभी पुरुषों और महिलाओं को एक ही बार में पूरे देश में भेजा जा सकता है। इस कार्य के साथ-साथ, भारत के लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा की एक राष्ट्रीय प्रणाली का विकास करने के प्रयास भी करने होंगे। यही नहीं, वे पूरे विश्व में भारतीय दर्शन का प्रचार-प्रसार भी करना चाहते थे, जिसके प्रति उनका मानना था कि उसमें कुछ ऐसा नया है, जिससे विश्व का परिचय कराया जाना चाहिए। उनके पास राष्ट्रीय एकता की एक ऐसी योजना थी जिसमें परस्पर सम्मान, नागरिक सुरक्षा दल और रोमन में हिंदुस्तानी भाषा के लिए आम लिपि जैसे प्रमुख विषयों का समावेश था, जिन पर उन्होंने अलग-अलग मंचों पर चर्चा की। इसके अतिरिक्त, नगरीय समाजवाद की उनकी सोच भी महत्वपूर्ण थी, जो सभी को रहन-सहन की बेहतर स्थितियाँ, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य और बिजली मुहैया कराने के लिए सीधे धरातल पर काम करेगी।

उपसंहार

नेताजी ने कर्म और वचन दोनों ही स्तरों पर स्वघोषित शुभचिंतक ब्रिटिश भारतीय सरकार की कड़ी आलोचना की थी। उन्होंने स्वराज को सभी समस्याओं के एकमात्र सर्वोत्तम समाधान के रूप में देखा। वे चाहते थे कि स्वतंत्र भारत सरकार की नीतियाँ और कार्यक्रम भारतीय स्रोतों से उत्पन्न हों, आधुनिक हों, और वैज्ञानिक व तर्कसंगत सोच पर आधारित हों। उनके दूरदर्शी कार्यक्रमों में विदेश नीति, राज्य के स्वरूप, पुनर्सरचना कार्यक्रम, राष्ट्रीय योजना तथा और भी बहुत कुछ का समावेश था। उनकी दृष्टि में 'स्वतंत्र भारतीय राज्य' मुद्दों व कार्यक्रमों का समाधान था, जो सभी जाति, सांप्रदायिक, भाषायी और साम्राज्यवादी सभी संघर्षों के लिए एक विरोध के रूप में खड़ा हो। वे चाहते थे कि भारत बेशक अतीत के आधार पर खड़ा हो, पर आधुनिक हो, वह निश्चित रूप से अतीत पर आधारित आधुनिक भारत चाहते थे, जो भविष्य की अपनी समस्याओं का समाधान स्वाभाविक रूप से, अन्य देशों में हुए प्रयासों का अध्ययन कर अपने तरीके से करे - किंतु, हर स्थिति में, हमारी समस्याओं का समाधान भारतीय तरीके से और भारतीय स्थितियों के अनुरूप हो।

संदर्भ

1. नेताजी को अपने बचपन की जो सबसे पुरानी स्मृति थी वह यह थी कि वे एक नितांत सामान्य प्राणी हैं। बोस, सुभाष चंद्र; 1980, *नेताजी'ज कलेक्टेड वर्क्स, खंड 1 (एन इंडियन पिलग्रिम एंड लेटर्स 1912-1921)*; कोलकाता : नेताजी शोध संस्थान, पृ. 3।
2. बोस, सुगत; 2011, *हिज मैजेस्टी अपोनेंट सुभाष चंद्र बोस एंड इंडिया'ज स्ट्रगल एगेंस्ट एंपायर*, लंदन : हार्वर्ड विश्वविद्यालय प्रेस; पृ. 3
3. न्यूज क्रॉनिकल, जनवरी 11, 1938, एल/पीओ/57 (आईओआर, बीएल)
4. लुइगी बर्जिनी, "विद चंद्र बोस इन हिज होम," पोपोलोडश इटालिया, 19 अप्रैल, 1942
5. एरिक हॉब्सवॉम, दि एज ऑव एक्सट्रीम्स : ए हिस्ट्री ऑव दि वर्ल्ड, 1914-1991; न्यू यॉर्क (पैंथियन)
6. भट्टाचार्य, शुभब्रत; 1997, *सुभाष चंद्र बोस : पायनियर ऑफ इंडियन प्लानिंग*, नई दिल्ली : योजना आयोग, पृ. 99-100
7. बोस, सुगत; (2011), पूर्व वर्णित, पी. 60
8. सौगत, शिशिर कुमार बोस; 1995, *नेताजी'ज कलेक्टेड वर्क्स, खंड 9 : कांग्रेस प्रेजिडेंट्स, स्पीचेज, आर्टिकल्स एंड लेटर्स, 1938 - मई 1939*, कोलकाता : नेताजी शोध संस्थान
9. भट्टाचार्य, शुभब्रत; (1997), पूर्व वर्णित, पी. 6
10. वही, पृ. 16
11. प्रसारण, सूचना मंत्रालय; 1962, *सेलेक्टेड स्पीचेज ऑफ सुभाष चंद्र बोस*, नई दिल्ली : प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
12. बोस, सुगत; (2011), पूर्वोक्त, पृ.88
13. बोस, सुगत एवं बोस, शिशिर कुमार; 1981, *नेताजी'ज कलेक्टेड वर्क्स, खंड 2 (दि इंडियन स्ट्रगल 1920-42)*, कोलकाता : नेताजी शोध संस्थान
14. वही, पृ. 314
15 बोस, शिशिर कुमार एवं बोस, सुगत; 1997, दि एसेंशियल राइटिंग्स ऑफ नेताजी सुभाष चंद्र बोस, कोलकाता : नेताजी शोध संस्थान
16. बोस, सुभाष चंद्र; 2016, नेताजी'ज कलेक्टेड वर्क्स (नेताजी के संकलित आलेख), खंड 11 (आजाद हिंद राइटिंग्स एंड स्पीचेज 1941-1943)। कोलकाता : नेताजी शोध संस्थान, पृ. 151
17. बोस, सुभाष चंद्र; 2016, नेताजी'ज कलेक्टेड वर्क्स (नेताजी के संकलित आलेख), खंड 12 (चलो दिल्ली राइटिंग्स एंड स्पीचेज 1943-1945); कोलकाता : नेताजी शोध संस्थान, पृ. 295-296
18. बोस, सुगत; (2011), वही, पृ. 325
19. सुभाष चंद्र बोस टु एमिली शेंकल, 14 मई, 1939; वही, 16 जून, 1939; वही, 21 जून, 1939; वही, 4 जुलाई 1939; बोस, लेटर्स टु एमिली, पृष्ठ 211-215।
20. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय। (1962) पूर्वोक्त, पृ. 92
21. वही, पृ. 88
22. पेलिंका, एंटन: 2017, *डिमॉक्रेसी इंडियन स्टाइल, सुभाष चंद्र बोस एंड दि क्रिएशन ऑव इंडिया'ज पॉलिटिकल कल्चर*, न्यू यॉर्क, राउटलेज टेलर एंड फ्रांसिस, पृ. 280-281
23. वही, पृ. 283
24. बोस, सुभाष चंद्र (2016), पूर्वोक्त, पृ. 156
25. भट्टाचार्य, शुभब्रत (1997), पूर्वोक्त, पृ. 74, दि इंडियन साइंस न्यूज एसोसिएशन की तीसरी आम सभा के अवसर पर अध्यक्षता के लिए आमंत्रित कांग्रेस के तत्कालीन अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस से मेघनाद शाह के प्रश्न का उत्तर
26. भट्टाचार्य, शुभब्रत; (1997), पूर्वोक्त, पृ. 83. 2 अक्टूबर, 1938 को दिल्ली में उद्योग मंत्री के सम्मेलन में दिए गए भाषण में उल्लेख
27. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय (1962), पूर्वोक्त, पृ. 33। 3 मई 1928 को पूना के महाराष्ट्र प्रांतीय सम्मेलन में अध्यक्षीय संबोधन
28. बोस, सुगत; (2008), पूर्वोक्त, पृ. 286
29. बोस, सुगत; (2011), पूर्वोक्त, पृ. 153

प्रदीप देसवाल

नेताजी सुभाष और महात्मा गांधी

यह सही है कि नेताजी और गांधी जी के रिश्तों में सब कुछ अच्छा नहीं था, लेकिन सब कुछ बुरा भी नहीं था। एक तटस्थ विवेचन

गांधीजी के साथ नेताजी का संबंध प्रारंभ होता है वर्ष 1921 में जब आईसीएस जैसी प्रतिष्ठित नौकरी को ठोकर मारकर वे लंदन से भारत लौट कर आते हैं। वे तब केवल सुभाष चंद्र बोस थे, नेताजी नहीं बने थे। 24 वर्षीय युवा सुभाष 16 जुलाई, 1921 को मुंबई पहुँचते हैं और उसी दिन दोपहर बाद मुंबई में मणि भवन पहुँचकर गांधीजी से भेंट करते हैं। देश के सर्वोच्च नेता से हुई उस पहली भेंट के बारे में नेताजी ने अपनी पुस्तक 'द इंडियन स्ट्रगल' में विस्तार से लिखा है। जब सुभाष गांधीजी के कक्ष में प्रवेश करते हैं तब वहाँ उनके कई अनुयायी बैठे थे। उन सबने खादी के कपड़े पहने थे परंतु सुभाष पश्चिमी वेशभूषा में थे। वे गांधीजी से क्षमा-याचना करते हैं। गांधीजी की स्वाभाविक मुस्कान और गर्मजोशी से सुभाष शीघ्र ही सहज अनुभव करते हैं।

सुभाष गांधीजी के सामने प्रश्नों की झड़ी लगा देते हैं। वे कांग्रेस द्वारा चलाए जा रहे असहयोग आंदोलन के अगले चरणों के बारे में स्पष्टता चाहते हैं। गांधीजी असीम धैर्य से उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते हैं। नेताजी लिखते हैं - "तीन बिंदु थे जिनकी व्याख्या की आवश्यकता थी। प्रथम, कांग्रेस द्वारा की जा रही अलग-अलग गतिविधियों का अंतिम चरण में किस प्रकार समापन होगा, उदाहरण के लिए टैक्स पेमेंट न करना? दूसरा, केवल टैक्स पेमेंट न करने या सविनय अवज्ञा करने मात्र से किस प्रकार सरकार मैदान छोड़ देगी और हमें स्वतंत्रता मिल जाएगी? तीसरा, महात्मा किस आधार पर एक वर्ष में स्वराज का वचन दे रहे थे जो वे नागपुर कांग्रेस के बाद निरंतर देते आ रहे थे?"[1]

गांधीजी द्वारा प्रथम प्रश्न के उत्तर से नेताजी संतुष्ट थे परंतु दूसरे और तीसरे प्रश्न के उत्तर उन्हें निराश करते हैं। नेताजी लिखते हैं - "मैंने स्वयं को समझाने की कोशिश की कि संभवत: मेरी समझ में ही कुछ कमी है, लेकिन मेरा विवेक मुझे बार-बार साफ कह रहा था कि गांधीजी की योजना में स्पष्टता का खेदजनक अभाव था।"[2]

गांधीजी ने सुभाष को सलाह दी कि वे देशबंधु चितरंजन दास से मार्गदर्शन लें। सुभाष पहले से ही देशबंधु के संपर्क में थे। सुभाष शीघ्र ही कोलकाता पहुँचते हैं। चितरंजन दास में उन्हें वह गुरु मिलता है जिसकी उन्हें तलाश थी। देशबंधु चितरंजन दास प्रारंभ से ही असहयोग आंदोलन के विरोध में थे। सितंबर 1920 में कलकत्ता में हुए कांग्रेस के विशेष अधिवेशन में असहयोग का प्रस्ताव 884 मतों के विरुद्ध 1886 मतों से पास हुआ था[3] जो इस बात का प्रमाण था कि गांधीजी के प्रस्ताव का विरोध भी खूब था।

10 दिसंबर, 1921 को सुभाष गिरफ्तार कर लिए जाते हैं और 8 महीने की सजा होती है। 4 फरवरी, 1922 को हुई चौरीचौरा की घटना के बाद, बिना कांग्रेस के नेताओं से सलाह किए, गांधीजी असहयोग आंदोलन वापस ले लेते हैं जिससे उनके प्रमुख सहयोगी मोतीलाल नेहरू, देशबंधु चितरंजन दास, लाला लाजपत राय सहित देश के प्रमुख नेताओं को बड़ी निराशा होती है।[4] गांधीजी और सुभाष के बीच सैद्धांतिक मतभेद की यह शुरुआत थी।

वर्ष 1923 में सुभाष बंगाल प्रदेश कांग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी चुने गए। उसी साल देशबंधु चितरंजन दास, मोतीलाल नेहरू आदि नेताओं ने गांधीजी से मतभेद के चलते स्वराज पार्टी का गठन किया। केंद्रीय विधानसभा और प्रांतीय विधान परिषदों के चुनावों में स्वराज पार्टी ने भाग लिया और बहुत अच्छा प्रदर्शन किया।

वर्ष 1924 में कलकत्ता नगर निगम के चुनाव हुए। चितरंजन दास मेयर चुने गए। उन्होंने सुभाष चंद्र बोस को मुख्य कार्यकारी अधिकारी नियुक्त किया। सुभाष ने कलकत्ता के विकास के लिए शानदार काम किया।[5]

वर्ष 1924 में गांधीजी जेल से रिहा हुए तो उन्होंने राजनीति से संन्यास लेकर खादी के प्रचार-प्रसार का बीड़ा उठा लिया। यद्यपि स्वराज पार्टी के नेताओं और कार्यकर्ताओं के हृदय में व्यक्ति के रूप में महात्मा के लिए अथाह सम्मान था पर यह पार्टी नि:संदेह गांधी विरोधी पार्टी थी और इतनी सशक्त थी कि महात्मा को राजनीति से स्वैच्छिक सन्यास के लिए विवश कर दिया था। यह संन्यास दिसंबर 1928 में हुए कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन तक जारी रहा।[6]

25 अक्टूबर, 1924 को सुभाष को दोबारा गिरफ्तार कर बर्मा की मांडले जेल में निर्वासित कर दिया जाता है। वर्ष 1927 में सुभाष बंगाल कांग्रेस के अध्यक्ष और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी चुने जाते हैं। वे देश भर में घूम-घूम कर युवाओं को संगठित करते हैं। वे जवाहरलाल नेहरू से सात वर्ष छोटे थे पर युवाओं में उनकी लोकप्रियता जवाहरलाल नेहरू के समान थी। उनमें नेहरू के समान आकर्षण, उत्साह, वाग्मिता, उद्यमशीलता, आकर्षक व्यक्तित्व और मौलिक छवि थी।[7]

भारत के नए संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए मई, 1928 में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में सभी दलों की कमेटी का गठन हुआ जिसमें सुभाष भी शामिल थे। जहाँ कमेटी के बाकी सभी सदस्य डोमिनियन स्टेटस पर एकमत थे, वहीं सुभाष पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य पर अड़े थे। कमेटी की रिपोर्ट दिसंबर 1928 में कलकत्ता में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन में कांग्रेस की स्वीकृति के लिए रखी जानी थी। कलकत्ता अधिवेशन से गांधीजी भी सक्रिय राजनीति में लौट रहे थे। गांधीजी और सुभाष के बीच मतभेद की अगली कड़ी भी कलकत्ता में जुड़नी थी।

सुभाष ने कांग्रेस वॉलंटियर्स कोर का गठन किया। फौजी वर्दी में स्वयंसेवकों और उनके जनरल ऑफिसर कमांडिंग के वेश में सुभाष को देखकर गांधीजी को अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कटाक्ष करते हुए कांग्रेस के पंडाल की तुलना बर्टरम मिल्स सर्कस से की।[8]

कलकत्ता अधिवेशन में गांधीजी ने नेहरू कमेटी की रिपोर्ट, जिसमें डोमिनियन स्टेटस की बात कही थी, को स्वीकार करने का प्रस्ताव पेश किया। 28 दिसंबर, 1928 को अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सामने जब इस प्रस्ताव पर मत विभाजन हुआ तो जवाहरलाल नेहरू अनुपस्थित रहे और सुभाष ने भी विरोध नहीं किया। प्रस्ताव 45 के विरुद्ध 118 मतों से पास हो गया। एक प्रेस विज्ञप्ति में सुभाष ने कहा कि कांग्रेस के खुले अधिवेशन में मैं इस प्रस्ताव का विरोध नहीं करूँगा। लेकिन जब 31 दिसंबर को खुले अधिवेशन में गांधीजी का प्रस्ताव आया तो सुभाष इसमें संशोधन का प्रस्ताव ले आए।[9]

चूँकि, सुभाष स्वयं नेहरू कमेटी के सदस्य थे और उन्होंने भी उस रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किए थे, इसलिए उसी रिपोर्ट के विरोध में संशोधन प्रस्ताव लाने पर सुभाष का विरोध भी हुआ था। संशोधन प्रस्ताव

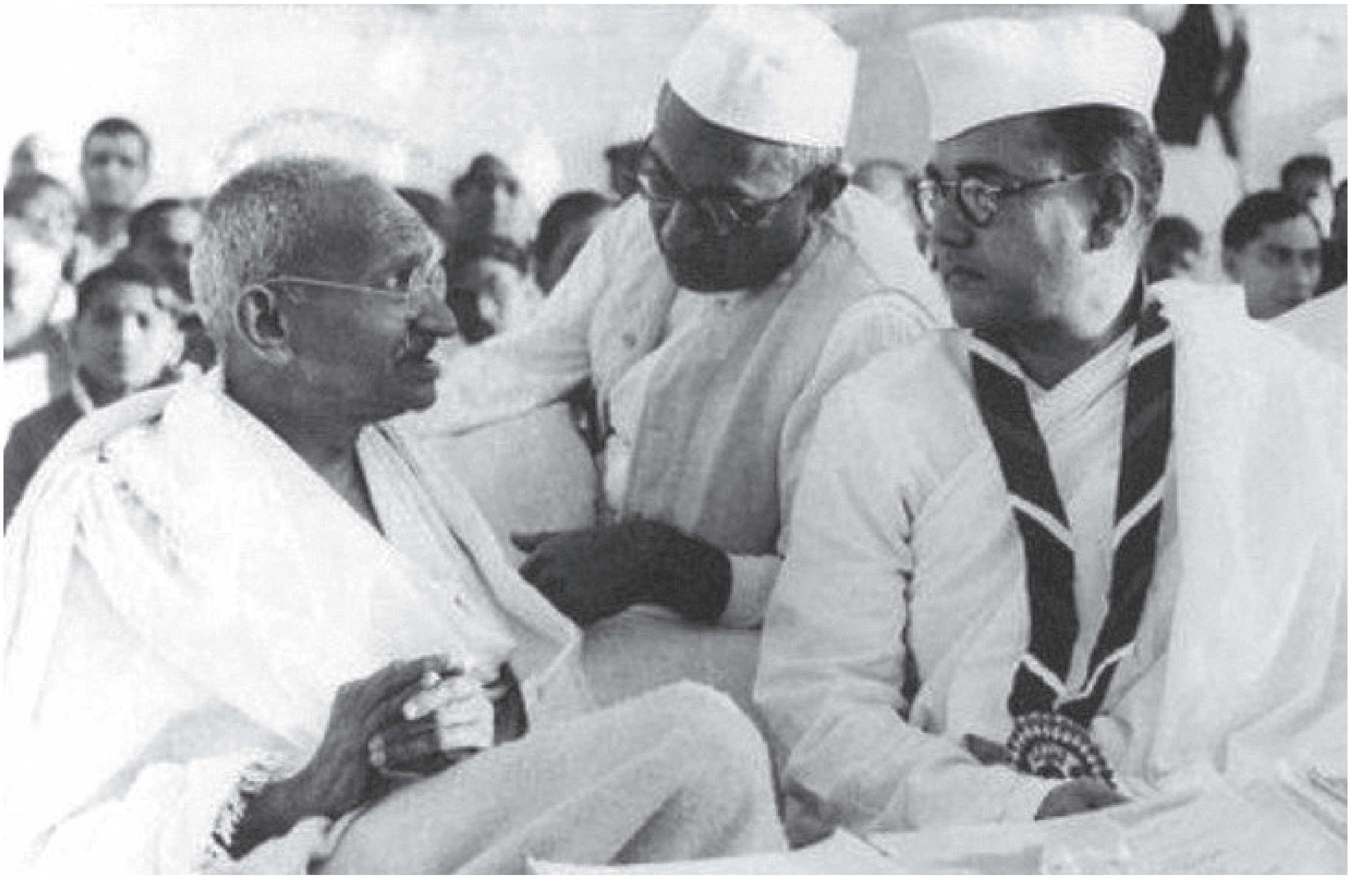

पेश करते हुए सुभाष ने स्थिति स्पष्ट की और कहा – "हमारे संशोधन के स्वीकृत होने पर कांग्रेस के विभाजन के परिणामों की जिम्मेदारी लेने के लिए उस समय मैं तैयार नहीं था। अब यह जिम्मेदारी लेने के लिए तैयार हूँ।"[10]

सुभाष चंद्र बोस और जवाहरलाल नेहरू ने युवाओं को साथ लेकर इंडिपेंडेंस फॉर इंडिया लीग की स्थापना की थी। जवाहरलाल अपने पिता मोतीलाल नेहरू की कमेटी की रिपोर्ट के विरोध में सुभाष के द्वारा लाए संशोधन प्रस्ताव के साथ खड़े थे। सुभाष ने गांधीजी और अन्य वरिष्ठ नेताओं के संबंध में अपने भाषण में कहा था – "हम अपने नेताओं को चाहते हैं, उन्हें प्यार करते हैं, उनका सम्मान करते हैं, लेकिन हम यह भी चाहते हैं कि वे समय के साथ चलें।"[11]

हालांकि, सुभाष का संशोधन प्रस्ताव पास नहीं हो सका परंतु 1350 के मुकाबले मिले 973 वोट[12] इस बात का प्रमाण थे कि कांग्रेस में गांधीजी की विचारधारा से अलग सोच भी आगे आ रही थी। जवाहरलाल नेहरू भी सुभाष चंद्र बोस द्वारा लाए गए संशोधन प्रस्ताव के समर्थन में थे[13] पर बाद में पीछे हट गए और कहा – "मैंने यह आधे-अधूरे मन से किया था।"[14]

31 दिसंबर, 1928 को कलकत्ता कांग्रेस में डोमिनियन प्रस्ताव के पक्ष में और सुभाष द्वारा लाए गए संशोधन के विरुद्ध बोलते हुए गांधीजी ने कहा – "यदि आप मेरी मदद करते हैं और कार्यक्रम का ईमानदारी व बुद्धिमता से पालन करते हैं, मैं वचन देता हूँ कि एक वर्ष के भीतर स्वराज मिल जाएगा।"[15]

यहाँ यह भी याद रहे कि इसके आठ वर्ष पहले असहयोग आंदोलन शुरू करते हुए भी गांधीजी ने एक वर्ष में स्वराज मिलने का भरोसा दिलाया था परंतु वह नहीं हो सका था। 31 दिसंबर, 1928 के भाषण में ही गांधीजी ने कांग्रेस के चुनावों में व्याप्त भ्रष्टाचार की निंदा करते हुए आरोप लगाया कि सुना है एक रुपए का डेलीगेट टिकट 15 रुपए में बिका है। जवाहरलाल नेहरू व सुभाष की ओर से मिले अप्रत्याशित विरोध ने गांधीजी को बहुत आहत किया था। उन्होंने कहा – "आप पूर्ण स्वतंत्रता की बातें कर सकते हैं लेकिन आपकी सारी बड़बड़ाहट एक खोखला फार्मूला साबित होगी यदि इसके पीछे कोई सम्मान नहीं है। यदि आप अपनी बात पर ही नहीं टिकते हो तो कहाँ से आएगी स्वतंत्रता?"[16]

जवाहरलाल नेहरू ने गांधीजी के नेतृत्व में पूर्ण आस्था दिखाई जिसके फलस्वरूप एक साल बाद लाहौर में रावी के तट पर हो रहे कांग्रेस के अधिवेशन में कांग्रेस की अध्यक्षता पिता मोतीलाल नेहरू से पुत्र जवाहरलाल नेहरू को मिल गई। लेकिन गांधीजी और सुभाष का टकराव फिर से हो गया। कुछ दिन पहले 23 दिसंबर, 1929 को दिल्ली में क्रांतिकारियों ने वायसराय लॉर्ड इरविन की विशेष रेलगाड़ी के नीचे बम धमाका किया था। गहरी धुंध होने के कारण रेलगाड़ी की दूरी का सही अनुमान नहीं लगाया जा सका जिसके कारण विस्फोट उस डिब्बे के नीचे नहीं हो सका जिसमें इरविन बैठे थे

जवाहरलाल नेहरू ने गांधीजी के नेतृत्व में पूर्ण आस्था दिखाई जिसके फलस्वरूप एक साल बाद लाहौर में रावी के तट पर हो रहे कांग्रेस के अधिवेशन में कांग्रेस की अध्यक्षता पिता मोतीलाल नेहरू से पुत्र जवाहरलाल नेहरू को मिल गई। लेकिन गांधीजी और सुभाष का टकराव फिर से हो गया। कुछ दिन पहले 23 दिसंबर, 1929 को दिल्ली में क्रांतिकारियों ने वायसराय लॉर्ड इरविन की विशेष रेलगाड़ी के नीचे बम धमाका किया था। गहरी धुंध होने के कारण रेलगाड़ी की दूरी का सही अनुमान नहीं लगाया जा सका जिसके कारण विस्फोट उस डिब्बे के नीचे नहीं हो सका जिसमें इरविन बैठे थे। लाहौर अधिवेशन में गांधीजी इरविन के सुरक्षित बच जाने पर वायसराय के लिए बधाई का प्रस्ताव लेकर आए। वे चाहते थे कि प्रस्ताव एक राय से पास हो पर वहाँ तो काँटे का मुकाबला हो गया था। जहाँ प्रस्ताव के पक्ष में 935 मत पड़े वहीं इसके विरोध में भी 897 मत पड़े थे।[17]

जब नई कार्यसमिति के गठन की बात आई तो गांधीजी अपनी पसंद के 15 नाम ले आए। हालांकि, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों में श्रीनिवास आयंगर और सुभाष के पक्ष में बहुत मजबूत भावना थी पर उनका नाम जानबूझ कर काट दिया गया था। गांधीजी किसी की सुनने को तैयार नहीं थे।[18] अब गांधीजी कार्यसमिति में किसी भी विरोध से भयमुक्त होकर अपनी योजनाओं को लागू कर सकते थे और यदि कार्यसमिति के बाहर से कोई विरोध करता तो वे कांग्रेस से संन्यास या आमरण अनशन की धमकी देकर जनता को विवश कर देते।[19]

जनवरी, 1930 में सुभाष फिर गिरफ्तार कर लिए गए और जेल में रहते हुए कलकत्ता के मेयर चुन लिए गए। जेल से छूटे तो 26 जनवरी 1931 को जुलूस का नेतृत्व करते हुए पुलिस की लाठियों के शिकार हुए और फिर जेल में डाल दिए गए। वर्ष, 1932 के प्रारंभ में सुभाष फिर गिरफ्तार कर लिए गए। जेल में गंभीर रूप से बीमार हो गए। यूरोप जाकर इलाज करवाने की शर्त पर सरकार सुभाष को रिहा करने पर राजी हुई। 13 फरवरी, 1933 को एक एंबुलेंस में बिठाकर सुभाष को मुंबई बंदरगाह ले जाया गया और वहाँ खड़े जलपोत एस एस गंगे पर बिठा दिया गया। मार्च, 1933 में सुभाष वियना पहुँचते हैं और इलाज शुरू हो जाता है। जिस आरोग्य आश्रम (Sanatorium) में उनका इलाज हो रहा था, वहाँ सरदार पटेल के बड़े भाई विठ्ठलभाई पटेल भी भर्ती थे। सुभाष विट्ठल भाई की खूब सेवा करते हैं। विट्ठल भाई उस स्वराज पार्टी के प्रमुख नेताओं में से एक थे जिसके संस्थापक सुभाष के राजनीतिक गुरु देशबंधु चितरंजन दास थे।

मई 1933 के प्रारंभ में गांधीजी सविनय अवज्ञा आंदोलन को स्थगित कर देते हैं। वियना में विट्ठल भाई और सुभाष इसकी कड़ी निंदा करते हैं। 9 मई, 1933 को वे संयुक्त बयान जारी करते हैं जिसे बोस-पटेल मेनिफेस्टो कहा जाता है। इस बयान में गांधीजी को एक असफल नेता बताते हुए नेतृत्व परिवर्तन की बात कही गई।[20] वियना के होटल डी फ्रांस के कमरे में विट्ठल भाई पटेल और सुभाष चंद्र बोस संयुक्त बयान

की भाषा क्या हो इस पर चर्चा कर रहे थे। सुभाष ने कहा – "गांधीजी उस पुराने फर्नीचर की तरह हैं जो अब किसी काम का नहीं है। अपने समय में उन्होंने अच्छा काम किया है पर अब वे एक रुकावट हैं।"[21]

देशबंधु चितरंजन दास, लाला लाजपत राय और मोतीलाल नेहरू की मृत्यु के बाद कांग्रेस में कोई नहीं बचा था जो गांधीजी के सामने डटकर खड़ा हो सके। आंदोलन वापस लेने के निर्णय की आलोचना करते हुए नेताजी लिखते हैं – "मोतीलाल नेहरू की दुखद मृत्यु के साथ ही कांग्रेस का अंतिम बौद्धिक दिग्गज भी चला गया था।"[22] कुछ समय बाद विट्ठलभाई जेनेवा चले गए। वहाँ उनका स्वास्थ्य और बिगड़ गया। सितंबर, 1933 में उन्हें इलाज के लिए जेनेवा के निकट क्लिनिक ला लेग्रिनिन ग्लेंड में भर्ती किया गया परंतु उनकी सेहत दिनों दिन बिगड़ती चली गई।

आखिर, 22 अक्टूबर, 1933 को विट्ठल भाई इस दुनिया से चले गए। सुभाष चंद्र बोस ने उनके अंतिम दिनों में उनकी खूब सेवा की थी। महात्मा गांधी ने इस बारे में कई अवसरों पर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। 27 अक्टूबर, 1933 को गांधीजी ने सरदार पटेल को लिखा – "सुभाष का कार्य किसी भी प्रशंसा से आगे है। सभी सूत्रों से मुझे खबर मिली है कि उन्होंने विट्ठल भाई की अद्‌भुत सेवा की थी। मैंने उन्हें लिखा है। आपको भी लिखना चाहिए।"[23]

यहाँ तक तो सब ठीक था, संबंधों ने खराब मोड़ तब लिया जब इस बात का पता चला कि विट्ठल भाई ने अपने अंतिम दिनों में वसीयत की थी जिसमें उनकी कुल संपत्ति का तीन चौथाई भाग भारत के राजनीतिक उत्थान के लिए सुभाष चंद्र बोस को देने की बात कही गई थी। विट्ठल भाई की कोई संतान नहीं थी।

वसीयत के निष्पादक गोरधनभाई पटेल को सुभाष ने जेनेवा से वसीयत की कॉपी भेजी और संपत्ति माँगी। जब गोरधनभाई ने वह कॉपी नासिक जेल में बंद सरदार पटेल को दिखाई तो वे हैरान हो गए। सरदार को वसीयत की विश्वसनीयता पर संदेह हुआ। वे जानना चाहते थे कि विट्ठल भाई की वसीयत पर हस्ताक्षर करने वाले तीनों गवाह बंगाली ही क्यों थे जबकि उन दिनों जेनेवा के आसपास विट्ठल भाई के मित्र भूलाभाई देसाई, वालचंद हीराचंद, अम्बालाल साराभाई आदि मौजूद थे।[24] 6 अप्रैल, 1934 को गांधीजी ने सरदार पटेल के पुत्र दाह्या भाई को लिखा था कि – "हमें इस विषय में कुछ नहीं करना चाहिए और जो सुभाष के हाथ जाता है, जाने देना चाहिए। मुझे विश्वास है वे सार्वजनिक कार्य के लिए ही इसका उपयोग करेंगे।"[25]

लेकिन गांधीजी की बात नहीं मानी गई। मामला लंबा खिंचता रहा। जब सुभाष कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गए तो सरदार पटेल ने गांधीजी के माध्यम से प्रस्ताव दिया था कि वे विट्ठल भाई की सारी संपत्ति कांग्रेस कार्यसमिति या कांग्रेस के नेताओं की किसी अन्य कमेटी को देने को तैयार हैं ताकि इसका उपयोग वसीयत में उल्लेखित उद्देश्य के लिए हो सके। मौलाना आजाद ने भी सुभाष को इस प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए मनाने की कोशिश की परंतु सुभाष इसके लिए तैयार नहीं हुए। वे कमेटी में गांधीजी व मौलाना आजाद के सुझाए नामों पर सहमत नहीं थे।[26]

देशबंधु चितरंजन दास, लाला लाजपत राय और मोतीलाल नेहरू की मृत्यु के बाद कांग्रेस में कोई नहीं बचा था जो गांधीजी के सामने डटकर खड़ा हो सके। आंदोलन वापस लेने के निर्णय की आलोचना करते हुए नेताजी लिखते हैं - मोतीलाल नेहरू की दुखद मृत्यु के साथ ही कांग्रेस का अंतिम बौद्धिक दिग्गज भी चला गया था। कुछ समय बाद विट्ठलभाई जेनेवा चले गए। वहाँ उनका स्वास्थ्य और बिगड़ गया। सितंबर, 1933 में उन्हें इलाज के लिए जेनेवा के निकट क्लिनिक ला लेग्रिनिन ग्लेंड में भर्ती किया गया परंतु उनकी सेहत दिनों दिन बिगड़ती चली गई

विवाद बॉम्बे हाई कोर्ट तक पहुँचा जहाँ इसे सुना जस्टिस बोमन जी वाडिया ने। उनका निर्णय सुभाष के विरुद्ध गया। जस्टिस वाडिया के निर्णय के विरुद्ध सुभाष ने अपील दाखिल की जिसे सुना चीफ जस्टिस जॉन ब्यूमोंट और जस्टिस हरिलाल कनिया ने। आगे चलकर जस्टिस कनिया भारत के पहले सर्वोच्च न्यायाधीश बने। मुकदमे में सुभाष की पैरवी की उनके बड़े भाई सरत चंद्र बोस ने जो स्वयं एक विख्यात वकील थे। पर यहाँ भी फैसला सुभाष के विरुद्ध ही रहा।[27]

रुपयों का लालच न नेताजी सुभाष को था और न ही सरदार पटेल को। दोनों ने ही राष्ट्र सेवा में सब कुछ लुटा दिया था पर यह दुर्भाग्य की बात थी दोनों संपत्ति के लिए अंग्रेजों की अदालत में एक दूसरे के विरुद्ध खड़े थे। सरदार पटेल मुकदमा जीत गए थे पर उन्होंने या उनके परिवार के किसी भी सदस्य ने उस जायदाद में से कुछ भी नहीं लिया। विट्ठलभाई पटेल मेमोरियल ट्रस्ट को एक लाख रुपए दे दिए गए।[28]

दोनों के बीच व्यक्तिगत झगड़े का असर उनके राजनीतिक निर्णयों पर भी आ गया। वर्ष 1937 के आखिर में जब गांधीजी ने अगले वर्ष के लिए कांग्रेस के अध्यक्ष पद के लिए सुभाष के नाम का प्रस्ताव रखा तो सरदार ने कहा – "मैंने देखा है कि सुभाष स्थिर नहीं हैं।"[29] गांधीजी भी सरदार पटेल को 1 नवंबर, 1937 को लिखते हैं "सुभाष बिलकुल विश्वसनीय नहीं हैं। लेकिन, उनके अतिरिक्त कोई और नहीं है जो अध्यक्ष बन सके।"[30] उन दिनों गांधीजी कलकत्ता में नेताजी सुभाष के घर पर ही ठहरे हुए थे।

यह वह समय था जब जवाहरलाल पिछले दो वर्षों से कांग्रेस के अध्यक्ष चले आ रहे थे और अब उनके बाद सुभाष के अतिरिक्त दूसरा नाम नजर नहीं आता था जो कांग्रेस के कार्य को उसी गति से आगे बढ़ा सके। संभवत: इसीलिए सुभाष को अध्यक्ष बनाने पर सहमति बनी। 28 फरवरी, 1936 को स्विट्जरलैंड के लॉजॉन शहर में कमला नेहरू की मृत्यु के समय सुभाष जवाहरलाल नेहरू के साथ खड़े थे। सुभाष की नजरों में राजनीतिक सलाह के लिए उन दिनों नेहरू से 'अधिक विश्वसनीय कोई नहीं' था।[31]

अंग्रेज सरकार की चेतावनी को अनदेखा

15 जुलाई, 1938 को सरदार पटेल ने राजेंद्र प्रसाद को लिखा था हमें ऐसे अध्यक्ष के साथ काम करना पड़ रहा है जिसे अपने ही कार्य की समझ नहीं है। 28 अक्तूबर, 1938 को मौलाना आजाद ने सरदार पटेल को एक रिपोर्ट भेजी जिसमें कहा गया था कि सुभाष के समर्थक मुझे अगले वर्ष के लिए अध्यक्ष बनने के लिए मनाने आए थे। उनका कहना था कि यदि मौलाना चुनाव से हटे तो सरदार पटेल अध्यक्ष बन जाएँगे जो सुभाष नहीं चाहते थे

कर, 8 अप्रैल, 1936 को सुभाष मुंबई पहुँचते हैं। उतरते ही उन्हें गिरफ्तार कर लिया जाता है। 17 मार्च, 1937 को सुभाष रिहा होते हैं और मई, 1937 में स्वास्थ्य लाभ के लिए डलहौजी पहुँचते हैं जहाँ अपने मित्र डॉ. धर्मबीर के घर रहते हैं। अक्तूबर, 1937 में कलकत्ता में सुभाष की भेंट कांग्रेस के शीर्ष नेतृत्व से होती है। जवाहरलाल नेहरू व महात्मा गांधी अपनी टीम सहित सुभाष के बड़े भाई शरत बोस के घर पर ही ठहरते हैं।

जनवरी, 1938 में जब सुभाष यूरोप की यात्रा पर थे, उन्हें वर्ष 1938 के लिए कांग्रेस का सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुन लिया गया। यद्यपि सरदार पटेल इसके पक्ष में नहीं थे पर गांधीजी की सहमति ने सबको साथ कर दिया था। इसके बाद फरवरी,1938 में गुजरात के हरिपुरा में कांग्रेस का अधिवेशन होता है। अहिंसा के देवता के गृह प्रदेश में क्रांतिकारी सुभाष का कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में शानदार स्वागत होता है। 51 सफेद बैल उनके रथ को खींचकर अधिवेशन स्थल तक ले जाते हैं। दो मील का रास्ता तय करने में 2 घंटे लग जाते हैं क्योंकि उनके स्वागत के लिए पूरे रास्ते में भारी संख्या में लोग जमा थे।[32]

कांग्रेस के अधिवेशन के लिए सरदार पटेल ने हरिपुरा में शानदार व्यवस्था की थी। गांधीजी का आग्रह था कि 5000 रुपए से ज्यादा का खर्च न हो लेकिन सरदार 5 लाख रुपए खर्च करने को तैयार थे। सड़क बनाई गई और नदी पर पंटून पुल बनाया गया। दूध और घी के इंतजाम के लिए 500 गाय एक महीना पहले ही वहाँ ले जाई गईं। अस्पताल, बैंक, डाकघर, टेलीग्राफ ऑफिस, टेलीफोन एक्सचेंज आदि की व्यवस्था की गई। नए अध्यक्ष सुभाष चंद्र बोस की कॉटेज नदी के किनारे ऐसी जगह पर बनाई गई जहाँ से वे पानी और उसके परे पेड़ों का आनंद ले सकें।[33]

हरिपुरा में सुभाष अपनी नीतियाँ और योजना देश के सामने रखते हैं। वे भारत के सामाजिक व आर्थिक पुनर्निर्माण की बात करते हैं। एक राष्ट्रीय भाषा हिंदुस्तानी की वकालत करते हैं जो हिंदी और उर्दू का मिला-जुला रूप थी और उन दिनों भारत के बहुत बड़े भूभाग में बोली और समझी जाती थी। वे जनसंख्या नियंत्रण की बात करते हैं।

वे गरीबी उन्मूलन, जमींदारी उन्मूलन और ग्रामीण लोगों के लिए कम ब्याज पर ऋण की वकालत करते हैं। वे बड़े उद्योगों की भी सिफारिश करते हैं। हालाँकि सुभाष कुटीर उद्योग को भी प्रोत्साहन पर जोर देते हैं परंतु बड़े उद्योगों का समर्थन उन्हें गांधीजी की नीतियों से दूर ले जाता है। वे प्लानिंग कमीशन के गठन का सुझाव देते हैं। वे पार्टी में आंतरिक लोकतंत्र की बात करते हैं और नेता ऊपर से थोपे जाने का विरोध करते हैं।

अगला एक साल बहुत भाग-दौड़ वाला था। सुभाष पूरे भारत में घूम रहे थे। उन्होंने नेशनल प्लानिंग कमिटी का गठन किया और जवाहरलाल नेहरू को इसका अध्यक्ष नियुक्त किया। वे हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए जिन्ना से भी बड़ी गंभीरता के साथ संवाद करते हैं पर यहाँ उन्हें अपेक्षित सफलता नहीं मिलती है। सुभाष अंग्रेजों द्वारा गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 में दी गई फेडरल स्कीम का जमकर विरोध करते हैं। वे अंग्रेजों के साथ पूर्ण आजादी से कम किसी भी समझौते से इंकार करते हैं। उन्हें शीघ्र ही द्वितीय विश्व युद्ध प्रारंभ होने ही आहट सुनाई देने लगती है। वे इसमें भारत के लिए स्वर्णिम अवसर देखते हैं।

लेकिन कांग्रेस में सब कुछ ठीक नहीं चल रहा था। गांधीजी और उनके अनुयायी सुभाष की कार्यशैली से खुश नहीं थे। सुभाष चाहते थे कि ब्रिटेन को पूर्ण स्वतंत्रता के लिए अल्टीमेटम दे दिया जाए और निश्चित समय में यदि ब्रिटिश सरकार यह माँग नहीं मानती है तो राष्ट्रीय स्तर पर आंदोलन छेड़ दिया जाए क्योंकि यूरोप में युद्ध शुरू होने पर ब्रिटेन पर दबाव बढ़ेगा जो भारत के लिए स्वर्णिम अवसर होगा, पर गांधीजी इसके लिए तैयार नहीं थे। आंदोलन का नेतृत्व करने से मना करने के पीछे गांधीजी यह दलील भी दे रहे थे कि देश में अहिंसात्मक आंदोलन के पक्ष में वातावरण नहीं था।

15 जुलाई, 1938 को सरदार पटेल ने राजेंद्र प्रसाद को लिखा था "हमें ऐसे अध्यक्ष के साथ काम करना पड़ रहा है जिसे अपने ही कार्य की समझ नहीं है।"[34] 28 अक्तूबर, 1938 को मौलाना आजाद ने सरदार पटेल को एक रिपोर्ट भेजी जिसमें कहा गया था कि सुभाष के समर्थक मुझे अगले वर्ष के लिए अध्यक्ष बनने के लिए मनाने आए थे। उनका कहना था कि यदि मौलाना चुनाव से हटे तो सरदार पटेल अध्यक्ष बन जाएँगे जो सुभाष नहीं चाहते थे।[35] यह पता चलने पर सरदार ने 2 नवंबर 1938 को राजेंद्र प्रसाद को लिखा - "मैं सपने में भी नहीं सोच सकता था कि सुभाष दोबारा चुने जाने के लिए इतने गंदे हथकंडे अपनाएँगे।"[36] संबंधों में इतनी कड़वाहट आ चुकी थी कि अब चुनाव केवल राजनीतिक विचारधाराओं का ही टकराव नहीं बल्कि व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों का भी संघर्ष बन गया था। 6 दिसंबर, 1938 को सुभाष अपनी भावी पत्नी एमिली शेंकल को लिखते हैं - "मुझे अगले वर्ष के लिए अपने अध्यक्ष चुने जाने पर संदेह है। बहुत से लोग मुझसे जलते हैं।"[37]

मौलाना आजाद कहते हैं कि नेताजी के समर्थक पटेल को रोकने के लिए उन्हें अध्यक्ष बनाना चाहते हैं और सुभाष 4 जनवरी 1939 को एमिली शेंकल को लिखते हैं कि कुछ लोग गांधीजी को कह रहे हैं कि इस बार किसी मुस्लिम को अध्यक्ष बनना चाहिए।[38] आपसी विश्वास का घोर अभाव था। सुभाष चंद्र बोस भारत की राजनीति को नेतृत्व देने के लिए महात्मा गांधी के बाद जवाहरलाल नेहरू के सबसे मजबूत प्रतिद्वंद्वी थे।[39] और संभवत: इसीलिए सभी ताकतें उनका मार्ग अवरुद्ध करने के लिए लामबद्ध हो गई थीं।

गेल (इंडिया) लिमिटेड

भारत की अग्रणी प्राकृतिक गैस कंपनी

एनर्जाइजिंग पॉसिबिलिटीज

- देश में बेची जाने वाली प्राकृतिक गैस में **53%** का योगदान
- भारत में कुल प्राकृतिक गैस संचरण पाइपलाइनों के **3/4** भाग का संचालन

मुख्यमंत्री लाड़ली बहना योजना
मुख्यमंत्री
लाड़ली बहना योजना
₹ 3000
तक बढ़ेगी राशि
नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री
21 वर्ष से ही मिलेगा लाभ
1 करोड़
25 लाख
बहनों
को
हर महीने
₹ 1000
राजकुमारी
चकरपुर गांव, निवाड़ी
"योजना के एक हजार मैं अपने परिवार पर खर्च करूंगी। मेरे खाते में पैसा होगा तो जब जरूरत पड़ेगी तब खर्च करूंगी।"
मृदुलेश शुक्ला
बड़ा बाजार, पन्ना
"मुख्यमंत्री जी इस योजना में जो राशि हमें दे रहे हैं उससे बच्चों की पढ़ाई और घर में पौष्टिक खाने के खर्च में मदद मिलेगी।"
मोनालिसा मिश्रा
कुदरा टोला, शहडोल
"हम बहनों के लिए एक सीधी सच्ची योजना की जरूरत थी। सीधे हमारे खाते में पैसे आएंगे। हमारा मान-सम्मान बढ़ेगा।"
अनीता विश्वकर्मा
संकटमोचन कॉलोनी, राजगढ़
"मेरे पास आय का कोई साधन नहीं है। ऐसे कठिन समय में मुख्यमंत्री जी की यह योजना मेरे लिए वरदान से कम नहीं है।"
चाहना
बिरसा मुण्डा वार्ड, कटनी
"मैं अपने बच्चों को पढ़ाना चाहती हूँ। मुख्यमंत्री जी की इस योजना से हमारे पूरे घर में खुशी है।
संपर्क : ग्राम पंचायत, वार्ड कार्यालय और जिला कार्यक्रम अधिकारी, महिला एवं बाल विकास विभाग, हेल्पलाइन नंबर 0755-2700800
मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

वर्ष 1939 में हालांकि कांग्रेस के अधिकांश प्रमुख नेता सुभाष के विरोध में खड़े थे पर गांधीजी तो उन्हें कांग्रेस से ही बाहर करने पर तुले थे[40] और सुभाष ने कांग्रेस अध्यक्ष का चुनाव लड़ने की इच्छा प्रकट कर दी। गांधीजी ने नेहरू से अगले वर्ष के लिए अध्यक्ष बनने का प्रस्ताव दिया पर उन्होंने मना कर दिया। उन्होंने मौलाना आजाद का नाम सुझाया। पहले तो वे इसके लिए तैयार हो गए पर जब उन्हें पता चला कि चुनाव निर्विरोध नहीं होगा बल्कि सुभाष से मुकाबला करना होगा तो उन्होंने मना कर दिया।[41]

जनवरी, 1939 में बारदोली में गांधीजी और कांग्रेस कार्यसमिति के प्रमुख सदस्य सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू, राजेंद्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी व भूलाभाई देसाई मौलाना आजाद को अध्यक्ष का चुनाव लड़ने के लिए मनाते हैं पर मौलाना तैयार नहीं होते हैं। तब अंतिम विकल्प के रूप में चुनाव से एक सप्ताह पूर्व डॉ. पट्टाभि सीतारमैया को उम्मीदवार बनाया जाता है।

गांधीजी के आग्रह पर 24 जनवरी को सरदार पटेल व राजेंद्र प्रसाद सहित कार्यसमिति के 7 सदस्य एक वक्तव्य जारी करके कांग्रेस प्रतिनिधियों से पट्टाभि सीतारमैया के पक्ष में मतदान करने का आह्वान करते हैं। सरदार पटेल ने जवाहरलाल नेहरू से भी उस साझे वक्तव्य पर हस्ताक्षर करने को कहा था पर उन्होंने सिद्धांत का हवाला देते हुए इससे इंकार कर दिया, हालांकि उन्होंने सुभाष के चुनाव लड़ने का विरोध किया था।[42] 8 फरवरी, 1939 को सरदार पटेल ने जवाहरलाल नेहरू को पत्र लिखकर बताया था - "संयुक्त बयान उनके (गांधीजी) कहने पर जारी किया था। मैंने उनसे कहा था कि इससे मेरे विरुद्ध गालियों का एक और बहाना मिल जाएगा पर वे अड़े रहे और मुझे उनकी बात माननी पड़ी।"[43] इसमें संदेह नहीं बचा था कि सुभाष के विरुद्ध बगावत को गांधीजी का पूर्ण आशीर्वाद था।

कार्यसमिति के कुछ सदस्यों द्वारा इस तरह खुले आम दो प्रत्याशियों में से एक का पक्ष लेना सुभाष को चुभता है। वे कहते हैं - "यदि अध्यक्ष का निर्वाचन प्रतिनिधियों द्वारा होना है, कार्यसमिति के प्रभावशाली सदस्यों द्वारा उसे मनोनीत नहीं होना है; तो क्या सरदार पटेल तथा अन्य नेता अपना व्हिप वापिस ले लेंगे और मतदान का मामला प्रतिनिधियों की मर्जी पर छोड़ देंगे?"

सुभाष, सरदार पटेल सहित अन्य गांधीवादियों पर, जिन्हें वे दक्षिणपंथी कहते हैं, आरोप लगाते हैं - "ऐसा माना जाता है कि फेडरल योजना पर कांग्रेस के दक्षिणपंथी गुट और ब्रिटिश सरकार के बीच आने वाले वर्ष में समझौते की संभावना है। परिणामस्वरूप, दक्षिणपंथी नहीं चाहते कि कोई वामपंथी अध्यक्ष बने जो समझौते की राह में काँटा बने और मोल-भाव में रुकावट डाले।"[44] सुभाष ने यह भी कहा था कि यदि आचार्य नरेंद्र देव जैसे किसी सच्चे वामपंथी को अध्यक्ष बनाने पर सहमति हो तो वे चुनाव से हट जाएँगे। पर विरोधी गुट इसके लिए भी तैयार नहीं था। सुभाष ने गांधीजी के अनुयायियों पर सरकार के साथ समझौते की कोशिशों के आरोप लगाते हुए यहाँ तक कह दिया कि "ऐसा आम विश्वास है कि फेडरल कैबिनेट के लिए संभावित नाम भी तय हो चुके हैं।"[45]

ये बेहद गंभीर आरोप थे जो आगे चलकर विवाद को नई ऊँचाई तक ले जाने वाले थे। दुर्भाग्यवश, ऐसे प्रमाण नहीं थे जिनसे सुभाष अपने आरोप सिद्ध कर पाते। गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 में दी गई 'फेडरल स्कीम' का सारे देश में विरोध हो रहा था, सरदार पटेल उसका समर्थन नहीं कर सकते थे। इसलिए इस आरोप को गांधीजी के अनुयायियों जैसे सरदार पटेल, राजेंद्र प्रसाद, राजाजी, मौलाना आजाद, जे बी कृपलानी आदि ने झूठा लांछन बताया। चूँकि, सुभाष आरोपों के पक्ष में ठोस सबूत नहीं दे पाए इसलिए लांछन का मुद्दा चुनाव के बाद भी समाप्त नहीं होने दिया गया।[46]

जवाहरलाल नेहरू ने भी 26 जनवरी को अलग से बयान जारी करके सुभाष के चुनाव लड़ने का विरोध किया। इस तरह कांग्रेस के लगभग सभी बड़े नेता सुभाष के चुनाव का विरोध करते हैं। नेहरू ने स्वयं वर्ष 1936 में अध्यक्ष बनने के बाद 1937 के लिए भी अध्यक्ष बनने की इच्छा जताई थी और सरदार पटेल के विरोध के बाद भी गांधीजी ने नेहरू के मार्ग के काँटे हटा दिए थे। नेहरू निरंतर दूसरी बार अध्यक्ष बने थे लेकिन दो वर्ष बाद सुभाष के समय वे भी खिलाफ खड़े थे। गांधीजी ने चुनाव से ठीक एक दिन पहले 28 जनवरी, 1939 को श्हरिजनश में लेख लिखा - "कांग्रेस की वर्तमान स्थिति में, मैं केवल अराजकता और देश की बर्बादी देख पा रहा हूँ।"[47]

गांधीजी व उनके अनुयायियों के खुले विरोध के उपरांत 29 जनवरी को हुए मतदान में सुभाष कांग्रेस के अध्यक्ष का चुनाव जीत जाते हैं। उन्हें 1580 वोट मिलते हैं जबकि सीतारमैया को 1375 वोट। 31 जनवरी को गांधीजी बयान देते हैं - "मैं निर्णयात्मक रूप से सुभाष के फिर से चुने जाने के खिलाफ था। डॉ. पट्टाभि की हार मेरी हार है। मेरे लिए इसका सीधा साफ अर्थ यही है कि कांग्रेस प्रतिनिधि उन सिद्धांतों व नीतियों को मंजूर नहीं करते, जिन पर मैं खड़ा हूँ।" अपने अनुयायियों को तसल्ली देते हुए गांधीजी ने कहा था - "मैं उनकी (सुभाष) जीत पर आनंदित हूँ। .... आखिरकार, सुभाष बाबू अपने देश के शत्रु नहीं हैं। उन्होंने इसके लिए कष्ट सहे हैं।"[48]

4 फरवरी, 1939 को सुभाष बयान जारी करते हैं। वे कहते हैं - "यह जानकार मुझे पीड़ा होती है कि महात्मा गांधी ने चुनाव परिणाम को अपनी व्यक्तिगत हार के रूप में लिया। मेरे लिए यह दुखद होगा कि मैं अन्य तमाम लोगों का विश्वास अर्जित करने में तो सफल हो जाऊँ, किंतु भारत के महानतम व्यक्ति का विश्वास जीतने में ही नाकाम हो जाऊँ।" 4 फरवरी को ही नेहरू ने सुभाष को लिखे पत्र में सुभाष के बयानों में 'दक्षिणपंथी' व 'वामपंथी' शब्दों के प्रयोग पर ऐतराज किया।[49] महात्मा गांधी ने भी सुभाष को 5 फरवरी, 1939 को लिखे पत्र में अपने अनुयायियों के लिए 'दक्षिणपंथी' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की।[50]

11 फरवरी, 1939 को एमिली शेंकल को चुनाव में अपनी विजय के बारे में नेताजी लिखते हैं - "महात्मा गांधी और उनके अनुयायियों ने मेरा विरोध किया और पंडित नेहरू तटस्थ थे। चुनाव परिणाम मेरी लिए महान विजय है। सारे देश में गजब का उत्साह है।"[51] मतभेद समाप्त करने व नई कार्यसमिति के गठन के लिए 15 फरवरी को सेवाग्राम जाकर वे गांधीजी से मिलते हैं पर बात बेनतीजा खत्म होती है। वहाँ से कलकत्ता वापस लौटते समय वे सख्त बीमार

31 मार्च को लिखे पत्र में सुभाष फिर गांधीजी से प्रार्थना करते हैं कि आप दोनों धड़ों में समन्वय व एकता करवा सकते हैं। सुभाष यहाँ तक लिखते हैं - मैं इसके लिए कोई भी बलिदान देने को तैयार हूँ। यदि आपको लगता है कि कांग्रेस किसी अन्य अध्यक्ष के पदासीन होने पर अधिक अच्छी तरह संघर्ष कर पाएगी, तो मैं प्रसन्नतापूर्वक पद त्याग दूँगा। यदि स्वयं को मिटाकर राष्ट्रीय लाभ प्राप्त होता है, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं पूर्ण रूप से स्वयं को हटा लूँगा। मैं मातृभूमि को इतना प्यार तो करता हूँ कि उसके लिए यह सब कर सकूँ

हो जाते हैं। 22 फरवरी से वर्धा में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक होनी थी। उन्होंने गांधीजी और सरदार पटेल को तार भेजकर कार्यसमिति की बैठक को मार्च के प्रारंभ में त्रिपुरी में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन तक के लिए स्थगित करने को कहा।

परंतु, इसके उत्तर में कार्यसमिति के 12 सदस्यों - सरदार पटेल, मौलाना आजाद, राजेंद्र प्रसाद, सरोजिनी नायडू, भूलाभाई देसाई, डॉ. पट्टाभि सीतारमैया, शंकर राव देव, डॉ. हरेकृष्ण महताब, जे. बी. कृपलानी, जयरामदास दौलतराम, खान अब्दुल गफ्फार खान - ने नेताजी के विरोध में त्यागपत्र दे दिया। ऐसा माना जाता है त्यागपत्र गांधीजी ने ड्राफ्ट किया था।[52] 13वें सदस्य थे जवाहरलाल नेहरू जो त्यागपत्र तो नहीं देते हैं पर एक बयान जारी करते हैं जो किसी त्यागपत्र से कम नहीं था। जो 2 सदस्य बचे थे, वे थे स्वयं सुभाष और उनके बड़े भाई शरत चंद्र बोस।

मार्च में त्रिपुरी में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। सुभाष बीमार थे। उन्हें एंबुलेंस से अधिवेशन शिविर तक ले जाया गया। त्रिपुरी अधिवेशन के दौरान गोविंद वल्लभ पंत ने प्रस्ताव पेश किया जिसके अनुसार कांग्रेस अध्यक्ष नई कार्यसमिति का गठन गांधीजी की सहमति से ही कर सकते थे। यह प्रस्ताव न तो सरदार पटेल ने तैयार किया था और न ही वे इसके पक्ष में बोले थे। वास्तव में, उन्होंने बड़ी सावधानी से त्रिपुरी में मंच से दूरी बनाए रखी।[53]

पंत द्वारा लाया गया प्रस्ताव राजाजी ने तैयार किया था। वे ही इस प्रस्ताव के अनुमोदन में पटेल की तरफ से बड़ी निर्दयता से बोले थे - "नदी में दो नाव हैं। एक नाव पुरानी है पर बड़ी है जिसे गांधीजी चला रहे हैं। दूसरे व्यक्ति के पास एक नई नाव है, आकर्षक ढंग से रंगी और सजी हुई। महात्मा गांधी एक जाँचे-परखे नाविक हैं जो आपको सुरक्षित किनारे तक ले जा सकते हैं। यदि आप दूसरी नाव में चढ़ते हैं, मैं जानता हूँ उसमें छेद है, सभी डूब जाओगे, नर्मदा नदी निश्चित ही गहरी है।"[54]

गांधीजी के अनुयायी सुभाष के साथ समझौते के लिए भी तैयार नहीं थे। राजाजी ने व्यंग्य-बाण की धार तेज करते हुए कहा "नया नाविक कहता है - यदि तुम मेरी नाव में नहीं बैठते हो तो कम से कम मेरी नाव को अपनी नाव से बाँध लो। यह भी असंभव है। हम छेद वाली नाव को अपनी अच्छी नाव से नहीं बाँध सकते, क्योंकि इससे हमारी नाव के भी डूबने का खतरा पैदा हो जाता है।"[55] पंत प्रस्ताव पास हो जाता है। सुभाष नई कार्यसमिति के गठन के लिए गांधीजी से संपर्क करते हैं। दोनों के बीच खूब पत्र व्यवहार होता है। 25 मार्च, 1939 को लिखे पत्र में सुभाष सुझाव देते हैं कि सात नाम मैं दे देता हूँ, सात नाम सरदार पटेल दे दें। वे यहाँ तक लिखते हैं कि आप भी नहीं चाहेंगे कि मैं कठपुतली अध्यक्ष बनकर रह जाऊँ।

सुभाष 29 मार्च 1939 को फिर लिखते हैं - "यदि आप वास्तव में पक्षपात रहित रुख अपनाते हुए दोनों दलों को विश्वास में लेते हैं, तब आप कांग्रेस को बचा सकते हैं और राष्ट्रीय एकता बनाए रख सकते हैं।" लेकिन गांधीजी कोई नाम नहीं देते हैं। 30 मार्च के पत्र में वे सुभाष से उन्हीं की पसंद की कार्यकारिणी के गठन को कहते हैं और लिखते हैं - "जहाँ तक गांधीवादियों का प्रश्न है वे आपके मार्ग में बाधा नहीं डालेंगे।" लेकिन यह सत्य नहीं था। त्रिपुरी में पंत द्वारा लाया गया प्रस्ताव गांधीवादियों का ही था और उसके पास होने के बाद कार्यकारिणी तो गांधीजी की पसंद के बिना गठित हो ही नहीं सकती थी।

31 मार्च को लिखे पत्र में सुभाष फिर गांधीजी से प्रार्थना करते हैं कि आप दोनों धड़ों में समन्वय व एकता करवा सकते हैं। सुभाष यहाँ तक लिखते हैं - "मैं इसके लिए कोई भी बलिदान देने को तैयार हूँ। यदि आपको लगता है कि कांग्रेस किसी अन्य अध्यक्ष के पदासीन होने पर अधिक अच्छी तरह संघर्ष कर पाएगी, तो मैं प्रसन्नतापूर्वक पद त्याग दूँगा। यदि स्वयं को मिटाकर राष्ट्रीय लाभ प्राप्त होता है, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं पूर्ण रूप से स्वयं को हटा लूँगा। मैं मातृभूमि को इतना प्यार तो करता हूँ कि उसके लिए यह सब कर सकूँ।" पर यह पत्र भी बेअसर साबित होता है।

सुभाष इस दौरान जवाहरलाल से भी पत्र-व्यवहार करते हैं। 28 मार्च, 1939 को वे नेहरू को एक लम्बा पत्र लिखते हैं जिसका शीर्षक था 'राइडिंग टू हॉर्सेज'। इस पत्र में सुभाष जवाहरलाल से कहते हैं - "मैंने निजी और सार्वजनिक जीवन में आपको अत्यंत सम्मान दिया है। मैंने राजनीति में आपको बड़े भाई और नेता के रूप में देखा है और बहुधा आपकी सलाह ली है।"[56] सुभाष ने नेहरू पर आरोप लगाते हुए कहा कि "अध्यक्षीय चुनाव के पश्चात् जनता की नजरों में मुझे गिराने के लिए कार्यसमिति के उन पूर्व 12 सदस्यों ने इतना काम नहीं किया जितना अकेले आपने किया है।"[57]

सुभाष लिखते हैं कि पिछले 20 वर्ष से महात्मा गांधी ब्रिटिश सरकार को अल्टीमेटम देते आ रहे है पर जब यह सुझाव मैं देता हूँ तो आपको पसंद नहीं है।[58] वे आगे कहते हैं - "पिछले कुछ समय से मैं महात्मा गांधी और आप सहित सभी से कहता रहा हूँ कि हमें अंतरराष्ट्रीय स्थिति का भारत के पक्ष में लाभ उठाना चाहिए; और राष्ट्रीय माँग के लिए ब्रिटिश सरकार को अल्टीमेटम दे देना चाहिए; लेकिन न आप पर कोई असर हुआ और न महात्माजी पर।"[59] नेताजी शिकायत

करते हैं कि "जब मुझ पर चौतरफा हमले होते हैं - जघन्य प्रहार होते हैं - तब आप उसके विरोध में एक शब्द नहीं बोलते हैं। लेकिन जब मैं आत्मरक्षा में कुछ कहता हूँ, आप प्रतिक्रिया देते हैं कि ऐसे विवादपूर्ण बयानों से कोई लाभ नहीं होगा। क्या कभी आपने मेरे राजनीतिक विरोधियों के विवादपूर्ण बयानों के बारे में भी ऐसा कहा है?"[60] सुभाष की पीड़ा थी कि "चुनाव परिणाम को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार नहीं किया गया। उनके विरुद्ध शिकायतों को पाला जाता रहा और बदले की भावना पनपती रही। कार्यकारिणी के अन्य सदस्यों की ओर से नेहरू ने उनके विरुद्ध डंडा उठा लिया।"[61]

जवाहरलाल नेहरू ने 3 अप्रैल, 1939 को सुभाष के पत्र का उत्तर देते हुए कहा - "मैं तुम्हारे चुनाव लड़ने के विरुद्ध था क्योंकि इन परिस्थितियों में गांधीजी से संबंध-विच्छेद होता जो मैं नहीं चाहता था। मुझे आशा थी कि डॉ. पट्टाभि के मुकाबले तुम चुनाव जीत जाओगे, किंतु यह आशंका थी कि क्या एक गांधीवादी के साथ इस सीधे मुकाबले में कांग्रेस को अपने साथ रख पाओगे? गांधीजी के बिना देश का पूर्ण समर्थन तुम्हें प्राप्त नहीं हो पाएगा।"[62]

जवाहरलाल नेहरू के पत्र से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि गांधीजी की मर्जी के विरुद्ध अध्यक्ष बनने के बाद सुभाष को गांधीजी का सहयोग नहीं मिलने वाला था। पंत प्रस्ताव के कारण सुभाष गांधीजी की सहमति के बिना कार्यसमिति का गठन कर नहीं सकते थे और गांधीजी सुभाष को कह रहे थे कि "अपनी पसंद के सदस्यों को लेकर कार्यसमिति का गठन करो और अपना कार्यक्रम तैयार करो। यदि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी तुम्हारे कार्यक्रम को स्वीकार कर लेती है तो ठीक, अन्यथा त्यागपत्र दे देना और कमेटी अपना नया अध्यक्ष चुन लेगी।"[63]

10 अप्रैल, 1939 को गांधीजी ने सुभाष को लिखा - "मैं पंडित पंत के प्रस्ताव को नहीं समझ सकता। जितना इसको पढ़ता हूँ उतना ही इसे नापसंद करता हूँ।"[64] गांधीजी पंत प्रस्ताव को नापसंद करते हैं और उसी प्रस्ताव के सहारे उनके सहयोगी सुभाष को पटकनी देने में लगे थे। सुभाष ने 29 मार्च, 1939 को गांधीजी को लिखा था कि त्रिपुरी में इस बात की खूब अफवाह थी कि पंत प्रस्ताव को आपका पूरा समर्थन था।[65] मध्यस्थता की कोशिश में लगे नेहरू ने 17 अप्रैल, 1939 को गांधीजी को लिखा - "आपको सुभाष को अध्यक्ष के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। उन्हें बाहर निकालने की कोशिश मेरी नजर में बहुत गलत कदम होगा।"[66]

सुभाष के साथ अपने मौलिक मतभेदों के बारे में बोलते हुए 5 मई, 1939 को गांधीजी ने कहा था - "इनमें अल्टीमेटम देना भी शामिल है। उन्हें (सुभाष को) लगता है कि लड़ने के लिए पर्याप्त संसाधन हैं। मेरी राय पूरी तरह इसके उलट है। आज लड़ने के लिए हमारे पास कोई संसाधन नहीं हैं। आज पूरा वातावरण हिंसा से इस कदर तर है कि लड़ाई के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता।"[67] जब गांधीजी से पूछा गया कि समाजवादियों और जवाहरलाल के साथ भी तो आपके मतभेद हैं, क्या उनके साथ भी आप ऐसा व्यवहार करेंगे, उन्होंने कहा - "निश्चित तौर पर मेरे और जवाहरलाल के बीच मतभेद हैं। लेकिन वे महत्वपूर्ण नहीं हैं। उनके (जवाहरलाल) बिना मैं स्वयं को अपंग अनुभव करता हूँ।"[68]

29 अप्रैल, 1939 से कलकत्ता में शुरू होने वाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक से पहले गांधीजी और सुभाष में कार्यसमिति के गठन पर चर्चा हुई। गांधीजी ने गठन में अपनी भूमिका से साफ-साफ इंकार करते हुए पुनः सलाह दी कि सुभाष को अपनी पसंद की कार्यसमिति बनानी चाहिए। सुभाष ने यह कहते हुए इंकार कर दिया कि यह त्रिपुरी में हुए निर्णय के विपरीत होगा और संकट के समय कांग्रेस को संयुक्त नेतृत्व की आवश्यकता होगी।[69]

दोनों अपने-अपने रुख पर कायम थे। समझौते के सभी प्रयास विफल हो जाने पर सुभाष ने कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। अंतिम प्रयास के रूप में नेहरू ने सुभाष से त्यागपत्र वापस लेने का आग्रह किया और कहा कि पुरानी कार्यसमिति को फिर से रख लें। जहाँ तक नए सदस्यों को रखने की बात है तो शीघ्र ही दो रिक्तियाँ होंगी (जमनालाल बजाज और जयरामदास पुरुषोत्तम दास स्वास्थ्य कारणों से त्यागपत्र देने वाले थे), तब नए सदस्य रख लेना पर सुभाष को यह स्वीकार नहीं था। सरोजिनी नायडू का निवेदन भी बेअसर रहा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने राजेंद्र प्रसाद को नया अध्यक्ष चुन लिया। सुभाष ने कांग्रेस के भीतर ही फॉरवर्ड ब्लॉक का गठन कर लिया। पुरानी कार्यसमिति के तीन सदस्यों को छोड़कर बाकी वही पुराने थे। कार्यसमिति छोड़ने वाले थे - सुभाष, उनके भाई शरत बोस और जवाहरलाल नेहरू।[70]

नेहरू के प्रस्ताव को स्वीकार न कर पाने की विवशता पर बात करते हुए सुभाष ने कहा था - "साधारण अवस्था में, गांधीजी के शब्द मेरे लिए कानून हैं, पर जब सिद्धांत की बात हो तो कभी-कभी मैं उनकी सलाह को स्वीकार न करने में स्वयं को विवश पाता हूँ। मेरा मानना है कि प्रत्येक वर्ष नए रक्त को शामिल करते रहना चाहिए। नीति की निरंतरता बनाए रखने के लिए पुरानी कमेटी के अधिकतर सदस्य बने रहें, लेकिन भारत जैसे विशाल देश में कांग्रेस की सर्वोच्च कार्यसमिति कुछ गिने-चुने लोगों तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए।"[71]

यह सिद्धांतों का ऐसा द्वंद्व था जिसमें न सुभाष पीछे हटे थे और न गांधीजी। त्यागपत्र के बारे में बात करते हुए 14 मई, 1939 को सुभाष ने एमिली शेंकल को लिखा - "कांग्रेस के 3000 डेलीगेट्स में मुझे बहुमत

29 अप्रैल, 1939 से कलकत्ता में शुरू होने वाली अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की बैठक से पहले गांधीजी और सुभाष में कार्यसमिति के गठन पर चर्चा हुई। गांधीजी ने गठन में अपनी भूमिका से साफ-साफ इंकार करते हुए पुनः सलाह दी कि सुभाष को अपनी पसंद की कार्यसमिति बनानी चाहिए। सुभाष ने यह कहते हुए इंकार कर दिया कि यह त्रिपुरी में हुए निर्णय के विपरीत होगा और संकट के समय कांग्रेस को संयुक्त नेतृत्व की आवश्यकता होगी

गांधीजी युद्ध में ब्रिटेन की हार की संभावना से व्यथित थे पर सुभाष इसमें ही भारत की स्वतंत्रता के लिए स्वर्णिम अवसर देख रहे थे। यह दो विचारधाराओं के बीच खुला टकराव था। ब्रिटेन की मुसीबत से केवल गांधी ही नहीं अन्य शीर्ष नेता भी दुखी थे। वे इस युद्ध को लोकतंत्र पर फासीवाद व नाजीवाद के आक्रमण के रूप में देख रहे थे। नेहरू के बारे में गांधीजी ने वायसराय को बताया था – "वे अंग्रेज जनता के मित्र हैं। असल में, वे विचारों और दिखने में भारतीय कम, अंग्रेज ज्यादा हैं। वे अकसर भारतीयों की अपेक्षा अंग्रेजों के साथ अधिक सहज अनुभव करते हैं

प्राप्त था – आल इंडिया कांग्रेस कमेटी के 400 सदस्यों में मुझे बहुमत प्राप्त नहीं है। त्यागपत्र देकर मैंने कुछ नहीं खोया है। सच तो यह है कि मैं और अधिक लोकप्रिय हो गया हूँ।"[72] 15 जून, 1939 को उन्होंने फिर एमिली शेंकल को लिखा – "भारत एक विचित्र देश है जहाँ लोगों को इसलिए प्यार नहीं करते कि वे सत्ता में हैं, बल्कि इसलिए कि उन्होंने सत्ता का त्याग किया है।"[73]

15 जुलाई, 1938 को एक बयान में सुभाष ने कहा था – "मेरी अंतिम साँस के अतिरिक्त कोई भी मुझे कभी कांग्रेस से बाहर नहीं निकाल सकता।" लेकिन गांधीजी का विश्वास न जीत पाने के कारण उन्हें त्यागपत्र देना पड़ा। इसके बाद जुलाई 1939 में अगले 3 साल के लिए उन्हें कांग्रेस में किसी भी पद के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया।

राष्ट्रीय आंदोलन को जन आंदोलन बनाने में गांधीजी की भूमिका संभवत: सबसे बड़ी थी किंतु उनके साथ समस्या यह थी कि कोई व्यक्ति उनके नेतृत्व को चुनौती दे, यह उन्हें स्वीकार नहीं था। वे उसी आंदोलन या दल का नेतृत्व कर सकते थे जिसमें उनके निर्णयों पर कोई प्रश्नचिह्न न लगाए। सुभाष ने अपने सिद्धांतों के साथ समझौता नहीं किया, इसलिए गांधीजी के साथ हुआ टकराव मिटाए नहीं मिटा। जवाहरलाल नेहरू की राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक सोच गांधीजी से मेल नहीं खाती थी और जब-जब दोनों में टकराव की स्थिति बनती गांधीजी नेहरू को पीछे हटने के लिए विवश कर देते।

1 नवंबर, 1937 को गांधीजी ने पत्र लिख कर सरदार पटेल और कार्यसमिति में अन्य गांधीवादियों से मैसूर संबंधी प्रस्ताव के विरोध में उस समय के कांग्रेस अध्यक्ष नेहरू के विरुद्ध त्यागपत्र देने के लिए बहुत आग्रहपूर्वक उकसाया था।[74] मैसूर रेजोल्यूशन कलकत्ता में नेहरू की अध्यक्षता में पास हुआ था जिसमें मैसूर रियासत द्वारा वहाँ की जनता पर किए जा रहे अत्याचारों की आलोचना और ब्रिटिश इंडिया की जनता द्वारा मैसूर की जनता को उनके संघर्ष में हर संभव सहायता देने का आह्वान किया गया था। गांधीजी ने इसे कांग्रेस की घोषित नीति का उल्लंघन बताते हुए 13 नवंबर, 1937 को हरिजन में छपे अपने लेख में मैसूर रेजोल्यूशन को अधिकारातीत (ultra vires) बताया।[75]

जब नेहरू ने गांधीजी को पत्र लिख कर अपना पक्ष रखा तो गांधीजी की तरफ से कहा गया था कि मैसूर प्रस्ताव के बारे में आप नहीं, कार्यसमिति के आपके सहयोगी दोषी हैं; वे अपने कर्तव्य पालन में असफल रहे हैं। आप तो अनुशासनप्रिय हैं, आपको यदि यह पता होता कि मैसूर रेजोल्यूशन अधिकारातीत है तो आप इसे अवश्य रोक देते।[76] मैसूर रेजोल्यूशन की घटना से यह दिखाई देता है कि गांधीजी इसके विरोध में अपने अनुयायियों को अध्यक्ष के विरुद्ध भड़का रहे थे और अध्यक्ष को सांत्वना देते हुए कह रहे थे कि वे अनुयायी ही दोषी थे। परिणाम यह कि दोनों पक्ष गांधीजी पर आश्रित रहते थे। वे किसी को इतना बड़ा नहीं होने देते थे कि उनके ही नेतृत्व को चुनौती दे सके। 12 अगस्त, 1939 को सुभाष को अनुशासनहीनता के आरोप में बंगाल प्रदेश कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष पद से हटा दिया गया और अगले तीन वर्ष के लिए कांग्रेस में किसी भी चुनावी पद के लिए अयोग्य घोषित कर दिया गया।

3 सितंबर, 1939 को वायसराय लिनलिथगो ने भारतीय नेताओं से सलाह किए बिना ही भारत के द्वितीय विश्वयुद्ध में भाग लेने की घोषणा कर दी। अगले ही दिन गांधीजी वायसराय लिनलिथगो से वार्ता करने शिमला गए। वायसराय से हुई बातचीत के बारे में बताते हुए 5 सितंबर को गांधीजी ने कहा – "ब्रिटेन के संसद भवन और वेस्टमिंस्टर ऐबी के संभावित विध्वंस के बारे में सोचकर मैं रोने लगा।"[77]

गांधीजी युद्ध में ब्रिटेन की हार की संभावना से व्यथित थे पर सुभाष इसमें ही भारत की स्वतंत्रता के लिए स्वर्णिम अवसर देख रहे थे। यह दो विचारधाराओं के बीच खुला टकराव था। ब्रिटेन की मुसीबत से केवल गांधी ही नहीं अन्य शीर्ष नेता भी दुखी थे। वे इस युद्ध को लोकतंत्र पर फासीवाद व नाजीवाद के आक्रमण के रूप में देख रहे थे। नेहरू के बारे में गांधीजी ने वायसराय को बताया था – "वे अंग्रेज जनता के मित्र हैं। असल में, वे विचारों और दिखने में भारतीय कम, अंग्रेज ज्यादा हैं। वे अकसर भारतीयों की अपेक्षा अंग्रेजों के साथ अधिक सहज अनुभव करते हैं।"[78]

मई 1940 आते आते युद्ध में ब्रिटेन की स्थिति खराब हो चुकी थी। हालांकि, सुभाष ब्रिटेन की मुसीबत में भारत के लिए अवसर देख रहे थे, लेकिन गांधी और नेहरू इसके उलट सोचते थे। राजेंद्र प्रसाद को लिखे पत्र में नेहरू ने कहा था – "मुझे लगता है इस अवसर पर जब ब्रिटेन संकट में फँसा है, तब उसकी मुसीबत का लाभ उठाना और उसका गला पकड़ना गलत होगा।"[79] गांधी ब्रिटेन से सहयोग को तो तैयार थे पर सैनिक सहयोग नहीं। लेकिन नेहरू, राज गोपालाचारी, मौलाना आजाद आदि नेता गांधीजी के अहिंसा के सिद्धांत को भी तिलांजलि देकर ब्रिटेन के साथ युद्ध में सहयोग करने को तैयार थे, यदि ब्रिटेन उनकी शर्तों को मान लेता।[80]

वर्ष 1939-40 में नेताजी बार-बार महात्मा गांधी से आग्रह करते रहे कि

विश्वयुद्ध से उत्पन्न स्थिति का पूरा लाभ लेते हुए पूर्ण स्वतंत्रता के लिए अविलंब आंदोलन छेड़ देना चाहिए। तब गांधीजी तैयार नहीं हुए। वे मुश्किल में फँसे ब्रिटेन की मुश्किलें और बढ़ाने के विरुद्ध थे। वर्ष 1942 आते-आते गांधीजी को मित्र राष्ट्रों की विजय की संभावना क्षीण लगने लगी थी और कल तक सुभाष के कार्यों की आलोचना करने वाले गांधीजी की राय बदलने लगी थी। जनवरी 1941 में अंग्रेज सरकार की आँखों में धूल झोंक कर भारत से सकुशल निकल जाने में सुभाष के साहस और साधन संपन्नता के गांधीजी प्रशंसक बन गए थे।[81] तो क्या युद्ध में ब्रिटेन की संभावित हार और नेताजी के राष्ट्रीय सेना के सेनानायक के रूप में भारत में प्रवेश की संभावना ने गांधीजी को 'भारत छोड़ो आंदोलन' प्रारंभ करने के लिए विवश कर दिया था?

वर्ष, 1942 के प्रारंभ में जापान द्वारा बर्मा पर अधिकार कर लेने के बाद संभावना थी कि जापान भारत पर भी आक्रमण करेगा। उन दिनों नेताजी सुभाष जर्मनी में थे। यह चर्चा भी थी कि सुभाष पूर्वी एशिया में आकर एक राष्ट्रीय फौज खड़ी कर जापान के सहयोग से ब्रिटेन के विरुद्ध भारत के मोर्चे पर युद्ध कर सकते हैं। तब, 24 अप्रैल, 1942 को गुवाहाटी में पत्रकारों से बात करते हुए जवाहरलाल नेहरू ने कहा - "मैं जापान के साथ-साथ सुभाष बोस और उनकी पार्टी के विरुद्ध भी लड़ूँगा, यदि वे भारत आते हैं। बोस ने बहुत गलत काम किया है, हालांकि उनकी नीयत अच्छी है।"[82]

न केवल जवाहरलाल नेहरू, महात्मा गांधी भी सुभाष के विरुद्ध लड़ने को तैयार थे। 15 मई, 1942 को उन्होंने कहा - "सुभाष ने हमारे लिए बड़ा जोखिम उठाया है; लेकिन यदि जापान के अधीनस्थ वे भारत में सरकार बनाना चाहते हैं, हमें उनका प्रतिरोध करना होगा।"[83] इस सबके बाद भी जब नेताजी आजाद हिंद फौज का गठन करते हैं तो पहली तीन ब्रिगेड्स के नाम रखते हैं - गांधी ब्रिगेड, नेहरू ब्रिगेड और आजाद ब्रिगेड। मौलाना आजाद इन दिनों कांग्रेस के अध्यक्ष थे। यह तथ्य भी नहीं भुलाया जा सकता कि वर्ष 1940 में कांग्रेस का अध्यक्ष बनने के बाद मौलाना आजाद ने नेताजी के विरुद्ध अनुशासन के नाम पर जो कार्यवाही की थी, उनसे नेताजी बहुत आहत हुए थे।

नेताजी ने अपनी पीड़ा का जिक्र गांधीजी को 23 दिसंबर, 1940 को लिखे पत्र में किया था - "मौलाना कथित अनुशासनिक कार्रवाई के बौराहे रास्ते पर सिर के बल चल रहे हैं। अगर वे चाहते हैं तो हम उनका उन्हीं के तरीके से सामना कर लेंगे। चूँकि लगता है कि मौलाना के कामकाज को आपकी मौन स्वीकृति है, मैं इस मामले में आपके हस्तक्षेप का अभ्यर्थी नहीं हूँ।"[84] 29 दिसंबर, 1940 को अपने उत्तर में गांधीजी ने लिखा - "जहाँ तक लोकप्रियता का सवाल है मौलाना साहब आप दोनों (सुभाष बोस व शरत बोस) में से किसी की बराबरी नहीं कर सकते लेकिन अंतरात्मा का लोकप्रियता से ऊँचा स्थान है।"[85] गांधीजी एक ओर जहाँ नेताजी की लोकप्रियता को स्वीकार कर रहे थे, वहीं अंतरात्मा के विरुद्ध आचरण का आरोप भी लगा रहे थे। उसी पत्र में नेताजी ने बिना किसी शर्त गांधीजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन में कार्य करने का प्रस्ताव भी दिया था लेकिन गांधीजी ने अपने उत्तर में वह भी ठुकरा दिया।

मौलाना आजाद के व्यवहार से आहत नेताजी ने 31 अक्टूबर 1940 को अपने बड़े भाई शरत बोस को लिखा था - "जब स्वराज मिलता है, तब अगर सत्ता ऐसे घटिया, प्रतिशोधी और बेईमान लोगों के हाथों में चली गई तो देश का क्या होगा? अगर हमने अभी विरोध नहीं किया, तो हम उनके हाथों में सत्ता जाने से नहीं रोक सकेंगे।"[86] इतनी कटुता होने के बाद भी नेताजी आजाद हिंद फौज की ब्रिगेड्स के नाम गांधी, नेहरू व आजाद रखते हैं, इसके पीछे उनकी दूरदर्शिता और राष्ट्रहित सर्वोपरि का भाव स्पष्ट हो जाता है।

गांधीजी को राष्ट्रपिता कहकर संबोधित करने वाले पहले व्यक्ति नेताजी सुभाष ही थे। 6 जुलाई, 1944 को रेडियो रंगून से उन्होंने गांधीजी के नाम संदेश प्रसारित किया। इस संदेश में उन्होंने वर्ष 1941 में भारत छोड़ने, जर्मनी जाने, फिर वर्ष 1943 में पूर्वी एशिया आकर आजाद हिंद फौज और आजाद हिंद सरकार का गठन करके अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध छेड़ने की आवश्यकता का विस्तार से वर्णन किया था। वे कहते हैं - "मेरे लिए सबसे आसान था कि देश में ही रहता और जिस प्रकार उतने लंबे समय से काम कर रहा था, वैसे ही करते रहता। मेरे लिए यह भी एक आसान काम था कि युद्ध समाप्त होने तक मैं भारत की किसी जेल में रहता। व्यक्तिगत तौर पर, ऐसा करने में मेरा कोई नुकसान नहीं था।"[87] सभी बड़े नेताओं ने वही आसान मार्ग ही तो चुना था पर नेताजी ने अंतहीन कष्ट का वरण किया था। ऐसा करके नेताजी ने न केवल अपना भविष्य बल्कि अपना जीवन भी दाँव पर लगा दिया था। उनका कहना था - "यदि मुझे तनिक भी आशा होती कि बाहर से संघर्ष किए बिना स्वतंत्रता मिल जाएगी तो इस संकट के समय मैं भारत कभी नहीं छोड़ता।"[88]

उन दिनों अंग्रेज और अंग्रेजों के चाटुकार नेताजी के विरुद्ध बहुत दुष्प्रचार कर रहे थे। उन्हें जर्मनी और जापान की कठपुतली कहा जा रहा था। उसका उत्तर

नेताजी ने स्पष्ट कर दिया था कि दुश्मन को भारत से बाहर खदेड़ने और शांति तथा व्यवस्था बहाल होने के साथ ही अंतरिम सरकार का मिशन सम्पन्न हो जाएगा। अपने प्रयासों, कष्टों और बलिदान के बदले में वे केवल एक पुरस्कार चाहते थे - मातृभूमि की आजादी। अंग्रेजी राज में सबसे ऊँचा पद पाने की बजाय स्वतंत्र भारत में सफाई कर्मचारी बनना भी उनके लिए अधिक सम्मान की बात थी। उसी संबोधन के अंतिम वाक्य ने महात्मा गांधी को राष्ट्रपिता बना दिया था। नेताजी कहते हैं - हमारे राष्ट्रपिता! भारत की स्वतंत्रता के इस पवित्र युद्ध में हम आपका आशीर्वाद और आपकी शुभकामनाएँ माँगते हैं

नेताजी के हृदय में गांधीजी, नेहरू व अन्य राष्ट्रीय नेताओं के लिए सम्मान कम नहीं था लेकिन बात जब भारत की स्वतंत्रता की हो तो कोई समझौता नहीं हो सकता था। जून 1945 में वायसराय लार्ड वावेल कांग्रेस के नेताओं से समझौते के प्रयास कर रहे थे। वावेल के प्रस्ताव पर भारत में कांग्रेस के नेताओं का उत्साह देखकर नेताजी बेचैन थे। वे लगातार रेडियो संदेश के जरिये कांग्रेस पर दबाव बनाते हैं कि पूर्ण स्वतंत्रता से कम किसी भी बात पर अंग्रेजों से समझौता नहीं करना है। 5 जुलाई 1945 को ब्रिटेन में आम चुनाव होने वाले थे। उन दिनों कंजर्वेटिव पार्टी सत्ता में थी और प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल भारत की आजादी के धुर विरोधी थे

देते हुए नेताजी कहते हैं – "जो सारा जीवन देश के आत्म सम्मान और प्रतिष्ठा के लिए प्रतिबद्ध रहा और इसकी रक्षा करने के लिए जिसने असंख्य कष्ट उठाए, वह किसी विदेशी शक्ति के सामने समर्पण करने वाला अंतिम व्यक्ति होगा।"[89]

नेताजी ने स्पष्ट कर दिया था कि दुश्मन को भारत से बाहर खदेड़ने और शांति तथा व्यवस्था बहाल होने के साथ ही अंतरिम सरकार का मिशन सम्पन्न हो जाएगा। अपने प्रयासों, कष्टों और बलिदान के बदले में वे केवल एक पुरस्कार चाहते थे – मातृभूमि की आजादी। अंग्रेजी राज में सबसे ऊँचा पद पाने की बजाय स्वतंत्र भारत में सफाई कर्मचारी बनना भी उनके लिए अधिक सम्मान की बात थी।[90] उसी संबोधन के अंतिम वाक्य ने महात्मा गांधी को राष्ट्रपिता बना दिया था। नेताजी कहते हैं – "हमारे राष्ट्रपिता! भारत की स्वतंत्रता के इस पवित्र युद्ध में हम आपका आशीर्वाद और आपकी शुभकामनाएँ माँगते हैं।"[91]

नेताजी के हृदय में गांधीजी, नेहरू व अन्य राष्ट्रीय नेताओं के लिए सम्मान कम नहीं था लेकिन बात जब भारत की स्वतंत्रता की हो तो कोई समझौता नहीं हो सकता था। जून 1945 में वायसराय लार्ड वावेल कांग्रेस के नेताओं से समझौते के प्रयास कर रहे थे। वावेल के प्रस्ताव पर भारत में कांग्रेस के नेताओं का उत्साह देखकर नेताजी बेचैन थे। वे लगातार रेडियो संदेश के जरिये कांग्रेस पर दबाव बनाते हैं कि पूर्ण स्वतंत्रता से कम किसी भी बात पर अंग्रेजों से समझौता नहीं करना है। 5 जुलाई 1945 को ब्रिटेन में आम चुनाव होने वाले थे। उन दिनों कंजर्वेटिव पार्टी सत्ता में थी और प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल भारत की आजादी के धुर विरोधी थे। वे चाहते थे कि भारत को आजादी दिए बिना कांग्रेस के साथ कोई समझौता हो जाए जिससे उन्हें चुनाव में फायदा हो और सुदूर-पूर्व में चल रहे युद्ध में जापान के विरुद्ध लड़ने के लिए भारत से बड़ी संख्या में सैनिक मिल सकें।

इसके विरोध में 19 जून, 1945 को आजाद हिंद रेडियो सिंगापुर से नेताजी ने कहा – "यदि सुदूर पूर्व में ब्रिटेन का साम्राज्यवादी युद्ध लड़ने के लिए भारतीय सैनिकों का नेतृत्व कांग्रेस के नेता करते हैं तो हमारे पास अपने ही देशवासियों के विरुद्ध लड़ने के अतिरिक्त कोई और विकल्प नहीं होगा।"[92] वर्ष 1942 में गांधीजी और नेहरू नेताजी के विरुद्ध लड़ने की बात करते थे, वर्ष 1945 में विवश होकर नेताजी को यह कहना पड़ा। नेताजी ने महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल व कांग्रेस के दूसरे नेताओं से पूछा कि क्या कि वे पूर्वी एशिया में ब्रिटेन के साम्राज्यवादी युद्ध को लड़ने के लिए 5 लाख भारतीय लोगों का जीवन कुर्बान करने की जिम्मेदारी लेंगे?[93]

21 जून 1945 के संबोधन में नेताजी ने लार्ड वावेल के प्रस्ताव के विरुद्ध भारत की जनता का आह्वान करते हुए कहा – "भारत के भाग्य का उत्तरदायित्व भारत की जनता का है, न कि कांग्रेस कार्यसमिति का। इसलिए, इस अशुभ प्रस्ताव के विरुद्ध जोरदार आंदोलन छेड़ दें और सुनिश्चित करें कि 5 जुलाई, 1945 से पहले ही यह रद्दी के ढेर में फेंक दिया जाए।"[94]

26 जून, 1945 को नेताजी ने रेडियो पर कहा – "मैं जानता हूँ कि देश में कुछ नेता इस बात को लेकर अत्यंत कुपित हैं कि मैंने ब्रिटिश सरकार के साथ समझौते करने की उनकी योजना का विरोध किया है। वे मुझ पर इस बात से भी क्रोधित हैं कि मैंने कांग्रेस कार्यसमिति की भयंकर भूलों की तरफ लोगों का ध्यान आकर्षित किया है।"[95]

नेताजी को एक साथ कई मोर्चों पर लड़ना पड़ रहा था। एक ओर थी आधुनिक हथियारों से सुसज्जित अंग्रेजों की विशाल सेना और उनका प्रोपगंडा तंत्र तथा दूसरी ओर थे वे अपने जो नेताजी के विरुद्ध भारत में दुष्प्रचार कर रहे थे। नेताजी के वीर सैनिकों ने दिल्ली के लालकिले में विजयी परेड का संकल्प लिया था। दुर्भाग्यवश, 18 अगस्त, 1945 को नेताजी चले गए और उनके रणबाँकुरे विजेता के रूप में नहीं बल्कि युद्धबंदी के रूप में लालकिले में पहुँचे। परंतु, उनके ऐतिहासिक संघर्ष से देशप्रेम की ऐसी सुनामी उठी कि सारा देश नेताजी जिंदाबाद और आजाद हिंद फौज जिंदाबाद के नारों से गूँज उठा था। ऐसा जादू चला था कि जवाहरलाल नेहरू भी वर्षों बाद वकील का काला गाउन पहन कर लालकिले में आजाद हिंद फौज के अधिकारियों पर चले मुकदमे में उनके पक्ष में खड़े होने को विवश हो गए थे। फरवरी, 1946 में हुए अभूतपूर्व नौसैनिक विद्रोह के पीछे भी नेताजी और उनकी फौज की प्रेरणा थी। नेताजी कांग्रेस के भीतर रहकर न सही पर आजाद हिंद फौज बनाकर भारत को स्वतंत्रता का उपहार दे गए थे।

संदर्भ

1. द इंडियन स्ट्रगल, सुभाष चंद्र बोस, पृ. 58
2. वही; पृ. 59
3. कांग्रेस का इतिहास, सीतारमैया, खंड 1, पृष्ठ 196 व 197
4. द इंडियन स्ट्रगल, सुभाष चंद्र बोस, पृ. 82
5. हिज मैजेस्टीज' अपोनेंट, सुगत बोस, पृ. 54
6. द इंडियन स्ट्रगल, सुभाष चंद्र बोस, पृ. 125
7. पटेल अ लाइफ, राजमोहन गांधी, पृ. 171

8. हिज मैजेस्टीज' अपोनेंट, सुगत बोस, पृ. 74
9. नेहरू अ पोलिटिकल बायोग्राफी, माइकेल ब्रेचर, पृ. 133
10. द एसेंशियल राइटिंग्स ऑफ नेताजी सुभाष चंद्र बोस, पृ. 92
11. वही, पृ. 93
12. हिज मैजेस्टीज' अपोनेंट, सुगत बोस, पृ. 74
13. कांग्रेस का इतिहास, सीतारमैया, खंड 1, पृ. 312
14. नेहरू अ पोलिटिकल बायोग्राफी, माइकेल ब्रेचर, पृ. 133
15. https://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-43.pdf, पृ- 478
16. पटेल अ लाइफ, राजमोहन गांधी, पृ. 172
17. नेहरू अ पोलिटिकल बायोग्राफी, माइकेल ब्रेचर, पृ. 143
18. द इंडियन स्ट्रगल, सुभाष चंद्र बोस, पृ. 194
19. वही
20. विट्ठल भाई पटेल: लाइफ ऐंड टाइम्स, गोरधन भाई पटेल, पृ.1219
21. वही; पृ. 1218
22. द इंडियन स्ट्रगल, सुभाष चंद्र बोस, पृ. 232
23. https://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-62.pdf पृ. 87
24. विट्ठल भाई पटेल: लाइफ ऐंड टाइम्स, गोरधन भाई पटेल, पृ.1251
25. https://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-63.pdf; पृ. 360
26. विट्ठल भाई पटेल: लाइफ ऐंड टाइम्स, गोरधन भाई पटेल, पृ.1254 - 55
27. वही, पृ. 1270
28. वही, पृ. 1270
29. Patel A Life, Rajmohan Gandhi पृ. 264
30. https://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-72.pdf; पृ- 380
31. हिज मैजेस्टीज' अपोनेंट, सुगत बोस, पृ. 110
32. वही, पृ. 138
33. पटेल अ लाइफ, राजमोहन गांधी, पृ. 264
34. वही, पृ. 277
35. वही, पृ. 278
36. वही, पृ. 278
37. सुभाष चंद्र बोस लेटर्स टु एमिली शेंकल, पृ. 203
38. वही, पृ. 207
39. नेहरू अ पोलिटिकल बायोग्राफी, माइकेल ब्रेचर, पृ. 245
40. वही, पृ. 246
41. वही, पृ. 246
42. सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहरलाल नेहरू, खंड 9, पृ. 480
43. नेहरू अ पोलिटिकल बायोग्राफी, माइकेल ब्रेचर, पृ. 247
44. महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी, खंड ट, पृ. 36
45. वही, पृ. 37
46. हिज मैजेस्टीज' अपोनेंट, सुगत बोस, पृ. 155
47. महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी, खंड ट, पृ. 38
48. वही, पृ. 40
49. सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहरलाल नेहरू, खंड 9, पृ. 482
50. https://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-75.pdf, पृ. 40
51. सुभाष चंद्र बोस लेटर्स टु एमिली शेंकल, पृ. 208
52. महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी, खंड ट, पृ. 56
53. पटेल अ लाइफ, राजमोहन गांधी, पृ. 280
54. वही
55. वही
56. द एसेंशियल राइटिंग्स ऑफ नेताजी सुभाष चंद्र बोस, पृ. 237
57. वही, पृ. 240
58. वही, पृ. 241
59. वही, पृ. 242
60. वही, पृ. 243
61. वही, पृ. 244
62. सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहरलाल नेहरू, खंड 9, पृ. 541
63. https://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-75.pdf, पृ. 224
64. वही, पृ. 252
65. वही, पृ., 462
66. नेहरू अ पोलिटिकल बायोग्राफी, माइकेल ब्रेचर, पृ. 254
67. https://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-75.pdf, पृ. 335
68. वही, पृ. 337
69. नेहरू अ पोलिटिकल बायोग्राफी, माइकेल ब्रेचर, पृ. 254
70. वही, पृ. 254
71. महात्मा: लाइफ ऑफ मोहनदास करमचंद गांधी, खंड ट, पृ. 105
72. सुभाष चंद्र बोस लेटर्स टु एमिली शेंकल, पृ. 211-12
73. वही, पृ. 213
74. https://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-72.pdf, पृ. 380-381
75. वही, पृ. 387-388
76. वही, पृ. 497
77. http://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-76.pdf, पृ. 311-312
78. नेहरू अ पोलिटिकल बायोग्राफी, माइकेल ब्रेचर, पृ. 261
79. वही, पृ. 267
80. वही, पृ. 268
81. इंडिया विंस फ्रीडम, मौलाना आजाद, पृ. 40
82. सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ जवाहरलाल नेहरू, खंड 12, पृ. 262-263
83. http://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-82.pdf; पृ. 284
84. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय, खंड 10, पृ. 171
85. http://www.gandhiashramsevagram.org/gandhi-literature/mahatma-gandhi-collected-works-volume-80.pdf; पृ. 4
86. नेताजी संपूर्ण वाङ्गमय, खंड 10, पृ. 178
87. नेताजी संपूर्ण वाङ्मय, खंड 12, पृ. 201
88. वही, पृ. 201
89. वही, पृ. 202
90. वही, पृ. 207
91. वही, पृ. 208
92. वही, पृ. 327
93. वही, पृ. 327
94. वही, पृ. 351
95. वही, पृ. 374

आजादी के संघर्ष में गांधीजी का योगदान

नेताजी सुभाष चंद्र बोस

(2 अक्टूबर, 1943 को बैंकाक से प्रसारण)

सुभाष चंद्र बोस और महात्मा गांधी के संबंधों को लेकर बहुत कुछ कहा-सुना जा चुका है। सबके कहने-सुनने के बजाय यह जानना रोचक होगा कि सुभाष बाबू स्वयं गांधी जी के बारे में क्या सोचते थे। सुभाष बाबू का यह भाषण तब का है जब वह कांग्रेस छोड़ कर आजाद हिंद फौज की स्थापना कर चुके थे और ब्रिटेन एवं अमेरिका के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर चुके थे। बहुप्रचारित मतभेदों के बावजूद उस समय भी महात्मा गांधी के प्रति उनके मन में कितना सम्मान था, यह पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं। गांधी जी के जन्मदिन पर बैंकाक से प्रसारित यह भाषण इसी दृष्टि से यहाँ उद्धृत किया जा रहा है

आज के दिन सारे विश्व के भारतीय अपने महानतम नेता महात्मा गांधी का पचहत्तरवाँ जन्म दिवस मना रहे हैं। ऐसे अवसर पर उस व्यक्ति के जीवन के अनुभवों का वर्णन करने की परंपरा रही है जिसकी हम सभी इज्जत करते हैं और जिसे हम प्रेम और आदर देते हैं। लेकिन भारत के लोग महात्मा गांधी के जीवन और कार्यों से इतनी अच्छी तरह परिचित हैं कि यदि मैं उनके जीवन की घटनाओं का वर्णन करने लगूँ तो वह उन भारतीयों की समझ का अपमान होगा। इसके स्थान पर मैं अपना ध्यान भारत के स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा जी की भूमिका का आकलन करने पर केंद्रित करूंगा। महात्मा गांधी ने भारत की जो सेवा की है और भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में जो योगदान दिया है, वह इतना अनूठा और अप्रतिम है कि उनका नाम सदा के लिए हमारे राष्ट्रीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा। भारत के इतिहास में महात्मा गांधी के स्थान का सही आकलन करने के लिए यह आवश्यक है कि भारत पर अंग्रेजों के अधिकार करने के इतिहास पर एक विहंगम दृष्टि डाली जाए। आप सभी यह जानते हैं कि जब अंग्रेजों ने पहली बार भारत भूमि पर अपने कदम रखे थे, तो भारत एक ऐसा देश था जहाँ दूध और शहद की नदियाँ बहती थीं। यह भारत की संपन्नता थी जिसने निर्धन अंग्रेजों को सागर पार से आकर्षित किया था। आज हम देखते हैं कि राजनैतिक परतंत्रता और आर्थिक शोषण के कारण भारत के लोग भुखमरी के शिकार हैं जबकि अंग्रेज, जो एक समय गरीब और दरिद्र थे, भारत के धन और संसाधनों का उपभोग करके अमीर हो गए हैं। दुख और कष्ट, अपमान और अत्याचार बर्दाश्त करके अंत में भारत के लोगों ने यह सीखा है कि उनकी अनेक समस्याओं का समाधान केवल अपनी खोई हुई स्वतंत्रता को फिर से प्राप्त करके हो सकता है।

जब हम अंग्रेजों के भारत पर अधिकार करने के तरीकों पर नजर डालते हैं तो हम यह देखते हैं कि अंग्रेजों ने कभी भी भारत के सारे लोगों से एक साथ लड़ने की कोशिश नहीं की और न ही उन्होंने सारे भारत को एक साथ जीतने अथवा उस पर कब्जा जमाने की कोशिश की। इसके विपरीत, उन्होंने हमेशा लोगों के वर्ग को अपने साथ मिलाने की कोशिश की और इसके लिए उन्होंने घूस और भ्रष्टाचार का सहारा लिया।

इसके बाद ही उन्होंने अपना सैनिक अभियान आरंभ किया। ऐसा बंगाल में हुआ जहाँ बंगाल की गद्दी का लालच देकर अंग्रेजों ने प्रधान सेनापति मीर जाफर को अपनी ओर मिला लिया। उस समय भारत में लोगों ने धार्मिक या सांप्रदायिक समस्या के बारे में सुना भी नहीं था। सिराजुद्दौला, जो बंगाल का अंतिम स्वतंत्र राजा था और मुसलमान था, के साथ उसके प्रधान सेनापति, जो स्वयं एक मुसलमान था, ने गद्दारी की जबकि एक हिंदू सेनापति मोहनलाल अंत तक सिराजुद्दौला की तरफ से लड़ता रहा। भारतीय इतिहास की इस घटना से हम यह सबक लेते हैं कि जब तक कि गद्दारी को रोकने और उसे दंडित करने के लिए समय पर कदम नहीं उठाए जाएंगे, देश अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने की आशा नहीं कर सकता। दुर्भाग्यवश बंगाल की घटनाएँ समय पर भारत के लोगों की आंखें नहीं खोल पाई। बंगाल में सिराजुद्दौला की हार के बाद भी यदि भारत के लोग मिलकर अंग्रेजों से लड़ते तो वे बड़ी आसानी से इन अनचाहे विदेशियों को भारत की धरती से निकाल बाहर करने में सफल हो जाते। यह कोई नहीं कह सकता कि अपनी आजादी बचाए रखने के लिए भारत के लोगों ने लड़ाइयाँ नहीं लड़ीं, लेकिन वे एक साथ मिलकर कभी नहीं लड़े। जब अंग्रेजों ने बंगाल पर हमला किया तो किसी ने भी उन पर पीछे से हमला नहीं किया। बाद में, जब दक्षिण भारत में अंग्रेज टीपू सुल्तान से लड़ रहे थे, तो न तो मध्य भारत से मराठा और न उत्तर भारत से सिख टीपू सुल्तान की मदद को आए। बंगाल के पतन के बाद भी अंग्रेजों के लिए हमेशा यह संभव रहा कि वे भारत के एक हिस्से पर हमला करते थे, उसे जीतते थे और इस प्रकार धीरे-धीरे उन्होंने सारे देश पर अधिकार जमा लिया। भारतीय इतिहास के इस दुखद अध्याय से हम यह सबक सीखते हैं कि जब तक कि भारत के लोग शत्रु का सामना एकजुट होकर नहीं करेंगे, वे कभी भी अपनी आजादी नहीं पा सकेंगे, और यदि उन्होंने आजादी पा भी ली, तो उसे कभी बचाकर नहीं रख पाएंगे। भारत के लोगों की आँखें बड़ी देर में खुलीं। आखिरकार 1857 में वे जगे और देश के विभिन्न भागों में एक साथ उन्होंने अंग्रेजों पर हमला किया। जब लड़ाई शुरू हुई, वह लड़ाई जिसे अंग्रेज इतिहासकार 'सिपाही विद्रोह' कहते हैं और हम 'आजादी की पहली लड़ाईश कहते हैं, तो शुरू में अंग्रेज बड़ी आसानी से हार गए। लेकिन अंत में हम हार गए। इसके दो कारण थे। भारत के सभी क्षेत्रों ने इस लड़ाई में अपना योगदान नहीं दिया और जो बात अधिक महत्त्वपूर्ण है, वह यह कि तकनीकी काबिलीयत में हमारे सेनानायक दुश्मनों के सेनानायकों से पीछे थे।

यह सच है कि अठारहवीं सदी में यूरोप ने युद्धकला में बहुत तरक्की की, जबकि भारत के लोग समय के साथ नहीं चल सके। फलतः जब अंग्रेजी सेनाओं के साथ हमारी अंतिम लड़ाई हुई, तो हम कमजोर पड़ गए। 1857 की असफलता से हमने यह सबक सीखा है कि भारत के लोगों को दूसरे देशों में प्रत्येक क्षेत्र में हो रही प्रगति के बारे में अद्यतन जानकारी रखनी चाहिए। 1857 की हार के बाद अंग्रेजों ने भारत के लोगों से शस्त्र छीन लिए। उस समय उस निरशस्त्रीकरण को स्वीकार करना भारत के लोगों की सबसे बड़ी भूल और मूर्खता थी। यदि भारत के लोग निहत्थे होकर मजबूर नहीं हो गए होते तो थोड़े ही समय के बाद यह उनके लिए संभव था कि वे अपनी आजादी के लिए फिर से आक्रमण करते। लेकिन निशस्त्रीकरण के कारण अगले करीब तीस साल तक भारत के लोग राजनैतिक रूप से दबे और निराश रहे। अंत में 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म के माध्यम से एक राजनैतिक जागृति आई। शुरू में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस एक नरमपंथी संगठन था। आरंभ में कांग्रेस के नेता संपूर्ण आजादी की माँग करने और अंग्रेजों से अपना संबंध विच्छेद करने से डरते थे। लेकिन बीस वर्षो की छोटी अवधि में ही कांग्रेस में नए जीवन का संचार हो गया। 1905 आते-आते अरबिंदो घोष जैसे नेता भारत की पूर्ण स्वतंत्रता की माँग करने लगे। आजादी की इस माँग के साथ-साथ आजादी पाने के लिए और अधिक अतिवादी तरीकों का प्रयोग आरंभ हो गया। बंगाल में अंग्रेजी वस्तुओं के बहिष्कार को सूबे के विभाजन का विरोध करने के लिए प्रयोग किया गया था, और धीरे-धीरे सारे भारत में बहिष्कार का यह तरीका प्रचलित हो गया। भारतीय युवा केवल आर्थिक बहिष्कार से संतुष्ट नहीं थे। इसलिए उन्होंने बमों और रिवाल्वर के उपयोग का तरीका अपनाया। कई युवाओं को क्रांतिकारी तोड़-फोड़ की शिक्षा लेने पेरिस औरयूरोप में अन्य स्थानों पर भेजा गया, जबकि भारतीय युवा दुनिया के दूसरे हिस्सों-विशेषकर रूस और आयरलैंड में इस्तेमाल होने वाले क्रांतिकारी तरीकों का अध्ययन करने लगे।

पिछले महायुद्ध के दौरान धूर्त अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने अपने झूठे वादों से भारतीय नेताओं को ठगा, परिणामस्वरूप भारत का रक्त और धन ब्रिटेन की सहायता के लिए बहाया गया और इससे भारत कि गुलामी की बेड़ियाँ और मजबूत हो गई। लेकिन भारतीय क्रांतिकारियों के सम्मान में यह कहना पड़ेगा कि वे ब्रिटेन द्वारा ठगे नहीं गए। उन्होंने देश में क्रांति लाने की भरपूर कोशिश की। लेकिन यह भारत का दुर्भाग्य था कि वे इसमें असफल रहे। जब पिछला महायुद्ध समाप्त हुआ और भारतीय नेता उस स्वतंत्रता की माँग करने लगे, जिसका वादा उन्हें किया गया था, तो उन्होंने पहली बार यह पाया कि विश्वासघाती गोरों, अर्थात अंग्रेजों और उनके राजनीतिज्ञों ने उनके साथ धोखा किया था। उनकी माँग के उत्तर में 1919 का रौलट कानून या काला कानून आया जिसके कारण उनकी जो थोड़ी बहुत आजादी थी वह भी छिन गई।

जब उन्होंने इस काले कानून का विरोध किया तो इसके उत्तर में जलियांवाला बाग का नरसंहार हुआ। भारतीयों द्वारा पिछले विश्व युद्ध में दिए गए सभी बलिदानों के लिए उन्हें दो इनाम दिए गए - रौलट कानून और जलियांवाला बाग का नरसंहार।

1919 की ऊपर हुई दुखद घटनाओं के बाद भारत के लोग कुछ समय के लिए हक्के-बक्के और स्तंभित रह गए। आजादी पाने की हर कोशिश को अंग्रेजों और उनकी सेना ने बेरहमी से दबा दिया। संवैधानिक आंदोलन, अंग्रेजी वस्तुओं का बहिष्कार और सशस्त्र क्रांति - सभी उपाय आजादी प्राप्त करने में असफल रहे। आशा की कोई किरण बाकी नहीं रही और भारत के लोग - हालाँकि क्रोध से उनके हृदय जल रहे थे - संघर्ष के एक नए तरीके, एक नए अस्त्र के लिए अंधेरे में भटक रहे थे। ठीक इसी मनोवैज्ञानिक क्षण में महात्मा गांधी असहयोग या सत्याग्रह या सविनय अवज्ञा के अपने नए तरीके के साथ सामने आए। ऐसा लगा कि आजादी की राह दिखाने के लिए विधाता ने उन्हें भेजा था। तुरंत और स्वत:स्फूर्त तरीके से सारा देश उनके पीछे चल पड़ा। भारत बच गया। प्रत्येक भारतीय के चेहरे पर आशा और आत्मविश्वास की चमक आ गई। लोगों को अपनी अंतिम विजय का भरोसा हो गया।

बीस साल से भी अधिक समय तक महात्मा गांधी भारत की मुक्ति के लिए काम करते रहे। उनके साथ भारत के लोग भी काम करते रहे। ऐसा कहने में जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है कि यदि 1920 में वे संघर्ष के अपने नए तरीके के साथ सामने नहीं आए होते, तो शायद भारत आज भी पददलित होता। भारत की आजादी के लिए उनकी सेवाएँ अनूठी और अप्रतिम हैं। इन परिस्थितियों में कोई एक आदमी एक जीवनकाल में इससे अधिक सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। इतिहास में महात्मा गांधी जैसा यदि कोई दूसरा व्यक्ति हुआ है तो वह संभवत: मुस्तफा कमाल ही थे जिन्होंने पिछले महायुद्ध में तुर्की की हार के बाद अपने देश को बचाया और तुर्क लोगों ने उन्हें श्गाजीश की उपाधि दी।

1920 से लेकर अब तक भारत के लोगों ने महात्मा गांधी से दो बातें सीखीं हैं, जो आजादी प्राप्त करने के लिए अत्यंत ही आवश्यक शर्तें हैं। पहली चीज जो उन्होंने सीखी है, वह है आत्मसम्मान और आत्मविश्वास, जिसके कारण आज उनके हृदय में क्रांति की ज्वाला धधक रही है। दूसरी, आज उनका सारे भारत में संगठन हैं, जो भारत के छोटे-से-छोटे गाँव तक पहुँचा हुआ है। अब जबकि प्रत्येक भारतीय के हृदय तक आजादी का संदेश पहुँच गया है और उनका सारे देश में एक राजनैतिक संगठन है, वे आजादी की अंतिम लड़ाई लड़ने को तैयार हैं, जो स्वतंत्रता का अंतिम युद्ध होगा।

यह केवल भारत में ही नहीं हुआ है कि एक आध्यात्मिक जागृति के बाद आजादी का संघर्ष आरंभ हुआ है। इटली में रिसोरजिमेन्तो आंदोलन में भी मैजिनी ने इटली के लोगों को पहले आध्यात्मिक प्रेरणा दी थी। उनके बाद योद्धा और वीर गैरीबाल्डी आए, जिन्होंने एक हजार सशस्त्र स्वयंसेवकों के साथ रोम की ओर कूच किया। आधुनिक आयरलैंड में भी 1906 में गठित सिन फिन दल ने आयरलैंड के लोगों के सामने एक कार्यक्रम रखा जो महात्मा गांधी के 1920 के असहयोग आंदोलन से मिलता-जुलता था। सिन फिन दल के जन्म के दस वर्ष बाद अर्थात 1916 में आयरलैंड की पहली सशस्त्र क्रांति हुई।

महात्मा गांधी ने आजादी के मार्ग पर मजबूती से हमारे कदम जमा दिए हैं। वे और अन्य नेता आज जेल में बंद हैं। अत: जो काम महात्मा गांधी ने शुरू किया था उसे अब उनके देशवासियों को देश में और विदेश में पूरा करना है। देश में रहने वाले भारतीयों के पास आजादी की लड़ाई के लिए सब कुछ है, लेकिन उनके पास एक चीज की कमी है, और वह है एक मुक्ति सेना। इस मुक्ति सेना को देश के बाहर से आना है और यह वहीं से आ सकती है।

मैं आपको याद दिलाना चाहूंगा कि जब दिसंबर 1920 में नागपुर में हुए कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में महात्मा गांधी ने देश के सामने असहयोग आंदोलन का कार्यक्रम रखा था, तो उन्होंने कहा था, "यदि आज भारत के पास तलवार होती, तो उसने वह तलवार उठा ली होती।" आगे महात्मा जी ने कहा कि "चूँकि सशस्त्र क्रांति संभव नहीं है, इसलिए देश के सामने केवल असहयोग या सत्याग्रह का ही विकल्प है।" तब से वक्त बदल गया है और अब भारत के लोगों के लिए तलवार उठाना संभव हो गया है। हमें इस बात की खुशी और गर्व है कि भारत की मुक्ति सेना का गठन हो चुका है, और इसका आकार लगातार बढ़ रहा है। एक तरफ तो हमें इस सेना को पूरी तरह प्रशिक्षित करके जितनी जल्दी हो सके युद्धक्षेत्र में भेजना है।

इसके साथ ही हमें एक नई सेना खड़ी करनी है, जो युद्धक्षेत्र में गई सेना को मजबूत कर सके। आजादी की अंतिम लड़ाई लंबी और कठिन होगी और हमें लड़ते रहना है- तब तक जब तक कि अंतिम अंग्रेज को या तो जेल भेज दिया जाए या बाहर खदेड़ दिया जाए। मैं आपको सावधान करना चाहता हूँ कि जब हमारी मुक्ति सेना - आजाद हिन्द फौज - भारत की धरती पर कदम रखेगी, उसके बाद पूरे भारत को अंग्रेजों की गुलामी से आजाद कराने में कम-से-कम बारह महीने या शायद इससे भी ज्यादा समय लगेगा। इसलिए हम अपनी कमर कस लें और एक लंबे और कठिन संघर्ष की तैयारी में जुट जाएँ।

अंबरीष पुंडलीक

नेताजी और सावरकर

नेताजी और सावरकर साथ काम न करते हुए भी एक-दूसरे के लिए पूरक का कार्य कर रहे थे। कैसे, एक विश्लेषण

"भारतीय सेना के प्रमुख आगे बढ़कर अकेले सामने आए और उन्होंने दृढ और हृदयस्पर्शी शब्दों में ब्रिटिश सेना के भारतीय अधिकारियों से भारत तथा भारत की स्वतंत्रता के लिए अपने प्रेम को झुठलाने से बाज आने को कहा। जादू छँट चुका था। शूटिंग बंद हो गई। द्वितीय विश्वयुद्ध में सावरकर की सैन्यीकरण नीति ने आकार लेना शुरू कर दिया। भाषण समाप्त हो चुका था। उन भारतीय सैनिकों में खुशी की लहर दौड़ गई थी जो आजाद हिंद फौज में शामिल हो गए थे।"

जापानी लेखक ओहसावा की 'टू ग्रेट इंडियंस इन जापान' में वर्णित उपरोक्त प्रसंग का संदर्भ 15 फरवरी 1942 के दिन जापान के सिंगापुर विजय से है।

इस वर्णन की बाकी बातें तो समझी जा सकती हैं कि किस प्रकार ब्रिटिश आर्मी में काम कर रहे भारतीय सैनिक बिना लड़े ही आजाद हिंद सेना की तरफ आकर्षित हुए; कैप्टन मोहन सिंह ने किस प्रकार उन्हें मातृभूमि की कसम देकर देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ने को प्रोत्साहित किया; लेकिन एक वाक्य के पास आकर वाचक कुछ क्षण के लिए तो रुक जाएगा और विचार करने पर मजबूर हो जाएगा- "द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान सावरकर की सैन्यीकरण नीति ने आकार लेना शुरू कर दिया"; ये बात क्या हुई भला? जो फौज रास बिहारी बोस ने संगठित की, जिसका बाद में जाकर नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने नेतृत्व किया, उसका सावरकरजी से क्या संबंध? नेताजी और पंडित नेहरू ने, नेताजी और गाँधी जी ने कांग्रेस के दौरान साथ काम किया है; मतभेद होते हुए भी हमें ये कहना होगा कि साथ काम तो किया है। नेताजी और सावरकरजी ने कभी भी देश की स्वतंत्रता के लिए एक मंच पर आकर एक साथ काम नहीं किया। कांग्रेस के अध्यक्ष रहते हुए नेताजी ने एक बार सावरकरजी को कांग्रेस में शामिल होने का प्रस्ताव दिया था, लेकिन सावरकरजी ने उसे ठुकरा दिया। दोनों देशभक्त थे। देश के लिए सब कुछ न्योछावर कर देने की वृत्ति का प्रत्यय दोनों के जीवन से आता है।

विदेशी कपड़ों की होली जलाने वाले युवा विनायक सावरकर को पूना के प्रसिद्ध फर्ग्यूसन कॉलेज के हॉस्टल से निकाल दिया था; तो प्रेसिडेंसी कॉलेज के प्रोफेसर ओटन को पीटने का आरोप लगाकर सुभाष को भी युवावस्था में कलकत्ता की प्रेसिडेंसी कॉलेज ने निकाल बाहर किया था। अंग्रेजों के प्रति निष्ठा की शपथ से इनकार की वजह से सावरकर जी को बैरिस्टर की डिग्री से हाथ धोना पड़ा; तो इधर सुभाष भी इसी प्रश्न को जीवन-मरण का सवाल मानकर आईसीएस की डिग्री को लंदन के ही कूड़ेदान में फेंक कर भारत आए थे। भारत की स्वतंत्रता के लिए छत्रपति शिवाजी महाराज के नक्शेकदम पर चलना दोनों ही को अनिवार्य लगता था। अंडमान के कारागार में आजीवन कारावास भुगत रहे सावरकर बंधु तात्याराव और बाबाराव की अनुपस्थिति में उनकी भाभी - येसू भाभी ने अपने घर को बड़ी गंभीरतापूर्वक संभाला था; तो इधर मध्य प्रदेश के सिवनी में करावास भुगत रहे सुभाष और शरद इन बोस बंधुओं की अनुपस्थिति में शरद बाबू की पत्नी; सुभाष बाबू की भाभी विभावती ने इस मुश्किल दौर में बोस परिवार को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। सावरकर जब उच्च शिक्षा के लिये ब्रिटेन गए तो उनके बेटे प्रभाकर की मृत्यु का समाचार उन्हें मिला। उस समय का शोक उन्होंने

एक कविता में व्यक्त किया है- "प्रभाकर! अरे तेरे पैदा होने के बाद तुम्हारी माँ ने एक बार तुम्हें मेरे सामने लाया था और घर के बड़ों का आदर करने की मर्यादा का पालन करते हुए हम दोनों पति-पत्नी कुछ क्षण ही एक दूसरे के साथ बिता पाए। मैं तुम्हारा चेहरा बहुत मुश्किल से उस समय देख पाया था। उस दिन के बाद कभी तुम्हें देखा भी नहीं और आज तुम्हारी मृत्यु की ही खबर आ रही है।"

इधर जर्मनी से जापान जा रहे नेताजी दो माह पूर्व जन्मी अपनी पुत्री अनीता को सिर्फ एक बार देखकर जो जापान की तरफ निकल पड़े, तो मुड़कर कभी पत्नी और बेटी के पास आए नहीं। अनीता को नेताजी सिर्फ एक कथानायक की तरह याद है; पिता की तरह नहीं। सावरकरजी की मार्सलीस में लगाई छलांग एक अनोखी वीरता का परिचय देती है; तो पनडुब्बी से प्रवास करते समय बीच समंदर में जर्मन पनडुब्बी से रस्सी बाँधकर जापानी पनडुब्बी तक पहुँचना यह घटना समूचे दूसरे विश्वयुद्ध की अकेली घटना के तौर पर उल्लेखनीय है।

'माफी माँगने वाले सावरकरश विरोधियों के इस विशेषण ने आज तक सावरकर जी का पीछा नहीं छोड़ा; तो जापान की मदद लेने वाले नेताजी का भी उनके विरोधियों ने 'तोजो का कुत्ता' कहकर उपहास किया।

दोनों महापुरुषों के जीवन में साम्य दिखाने वाली ये सारी घटनाएँ हैं; लेकिन फिर भी इतिहास का कोई भी विद्यार्थी, अभ्यासी, वाचक नेताजी और सावरकरजी की विचारधारा एक है, ऐसा कहने का साहस नहीं करेगा। सावरकरजी हिंदुत्व की विचारधारा के उद्घोषक; तो नेताजी कभी-कभी साम्यवाद की चौखट तक जाने वाले प्रतीत होते हैं। लेकिन दो ऐतिहासिक व्यक्तियों का एक समान ध्येय की तरफ भिन्न-भिन्न मार्ग पर चलते हुए एक दूसरे के प्रति पूरक होना, यह भी इस प्रकार की चर्चा में एक पहलू हो सकता है। इसका अनुभव कराने वाला प्रसंग था दूसरा विश्वयुद्ध!

1 सितंबर 1939 के दिन हिटलर की वेगवान सेना ने पोलैंड पर धावा बोल दिया। देखते ही देखते पोलैंड का प्रतिकार ताश के पत्तों की तरह टूट गया। पोलैंड जर्मनी के हाथों पराभूत हुआ। पोलैंड के पश्चात नॉर्वे, डेन्मार्क, बेल्जियम, हॉलैंड और फ्रांस हिटलर ने पादाक्रांत कर दिए। अब जर्मन विमान इंग्लैंड पर बम वर्षा कर रहे थे। विश्वयुद्ध छिड़ चुका था। एक तरफ इंग्लैंड और फ्रांस तो दूसरी तरफ जर्मनी और इटली।

इस वैश्विक घटना को देख महात्मा गाँधी ने कह दिया, "दुश्मन जब संकट की स्थिति में घिरा हुआ हो, तब उसके खिलाफ कोई आंदोलन करना अनैतिक होगा" तो जवाहर लाल नेहरू ने भी दो कदम आगे जाते हुए यहाँ तक कह डाला कि "ऐसे समय में हमारी सहानुभूति इंग्लैंड के पक्ष में होनी चाहिए"। एक नेताजी थे जो कह रहे थे "यही समय है। सारे मतभेद भुलाकर देशभक्तों को एक पुरजोर आंदोलन खड़ा करना चाहिए। जिसके चलते अंग्रेजों को मजबूरन भारत छोड़ना पड़े।"

आने वाले विश्व युद्ध के आरंभ को लेकर ही 1939 में मराठी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष चुने गए सावरकरजी कहते हैं "कलम छोड़ो और बंदूकें अपनाओ!" प्रत्यक्ष युद्ध घोषणा के बाद वे कहते हैं "सरकार इस विश्वयुद्ध की तैयारी के लिए जो सैनिकीकरण कर रही है, उसके आड़े आकर बंदूकें हथिया लो। बाद में उनको किस तरफ मोड़ना है, ये तय किया जा सकता है।" इस सैनिकीकरण का समर्थन करने वाले वक्तव्य की वजह से सावरकर जी को आज तक आलोचना का शिकार होना पड़ता है।

इस युद्ध की रस्सीखेंच में ब्रिटेन के उलझे रहते ही कुछ करना होगा, यह सोचकर एक तरफ नेताजी भारत के बाहर जाने के रास्ते खोज रहे थे, तो दूसरी तरफ गाँधीजी से मिलकर देश के भीतर से ही एक जोरदार धक्का ब्रिटिशराज को देने के लिए बापू का मन बनाने की कोशिश में भी लगे थे। फॉरवर्ड ब्लॉक ने कलकत्ता स्थित हॉलवेल स्मारक के खिलाफ आंदोलन की घोषणा कर दी और इसी बीच 22 जून 1940 के दिन नेताजी की सावरकरजी से भेंट हुई। ये एक गुप्त वार्तालाप कहा जाता है। इस भेंट के बारे में दो पृथक वृत्तांत दोनों खेमे से आते हैं। नेताजी ने अपनी कृति "द इंडियन स्ट्रगल" में लिखा है, "सावरकर अंतरराष्ट्रीय स्थिति से बेखबर लग रहे थे और केवल यह सोच रहे थे कि ब्रिटेन की सेना में प्रवेश करके हिंदू सैन्य प्रशिक्षण कैसे प्राप्त कर सकते हैं?" तो सावरकर जी के निजी सचिव बालाराव सावरकर ने लिखी सावरकरजी की चार खंडात्मक जीवनी में इस भेंट के बारे में विस्तार से लिखा। वे लिखते हैं- "सावरकर जी ने सुभाष बाबू को हालवेल स्मारक जैसे आंदोलन में उलझकर जेल में जाने से बचने के लिए कहा। हो सके तो भारत के बाहर जाकर ब्रिटेन के शत्रुओं की मदद लेने के लिए भी प्रोत्साहित किया।"

तो क्या भारत के बाहर जाने का मार्ग सावरकर जी ने सुभाष बाबू को दिखाया था? क्या सावरकरजी की मुलाकात से पहले सुभाष बाबू इस विकल्प से बिलकुल अनजान थे? इस भेंट की पहले से ही भारत के बाहर जाने की तैयारी सुभाष बाबू ने की थी। इसके कुछ प्रमाण उनके चरित्र से मिलते हैं। लेकिन महायुद्ध के अवसर पर जो भी कुछ किया जा सकता है, इसके बारे में सोचते समय जो विकल्प नेताजी के मन में द्वंद्व निर्माण कर रहे थे, उन सब विकल्पों

में से सुभाष बाबू को भारत के बाहर जाने का ही विकल्प चुनना चाहिए और बाकी सारे उपायों को छोड़ देना चाहिए, यह बात अधोरेखित करने का कार्य इस भेंट ने जरूर किया। इस भेट में सावरकरजी ने रासबिहारी बोस के जापान से आए हुए कुछ पत्र सुभाषबाबू को दिखाए। हमें ज्ञात है कि रास बिहारी बोस दिल्ली के चाँदनी चौक में लॉर्ड हार्डिंग्स पर फेंके गए बम के साथ ही अंग्रेजों की नजर में आ गए थे। आगे 1915 में अंग्रेजों को चकमा देकर वे जापान चले गए। वह जापानी युवती से शादी करके जापान के नागरिक बन गए। अंग्रेजों के हाथों फांसी चढ़ने से बचने के लिए नहीं, बल्कि जापान में रहकर भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नरत रहने के लिए।

रासबिहारी बोस और सावरकर जी का नियमित पत्र व्यवहार होता था। मुंबई के वरली में स्थित एक बुद्ध विहार के भिक्षुओं के माध्यम से इन पत्रों का आदान-प्रदान होता था। सावरकर जी ने रास बाबू को जापान में जापान की हिंदू महासभा का अध्यक्ष भी घोषित किया। खिलाफत आंदोलन की असफलता के चलते 'हिंदू-मुस्लिम एकता तो होने से रही, क्या हिंदू-बौद्ध एकता को साकार किया जा सकता है?" यह टटोलने का प्रयास जापान में रहने वाले रासबिहारी बोस की मदद से सावरकरजी कर रहे थे।

इसी रास बिहारी बोस को जापानी युद्धमंत्री जनरल सुगियामा ने पर्ल हार्बर के हमले के पहले ही अपने कार्यालय में बुलाकर उनकी युद्ध परिस्थितियों में जापान से क्या अपेक्षाएँ हैं, ये पूछ लिया। और यह रास बाबू ही थे, जिन्होंने म्यांमार के आगे बढ़ने का जापान का इरादा ना होते हुए भी अपना युद्धक्षेत्र भारत तक बढ़ाने के लिए जापान को आग्रहपूर्वक प्रोत्साहित किया। मेजर फुजिवारा - रासबाबू को अलोर स्टार की लड़ाई में मोहनसिंह हाथ लगे और रास बाबू ने सिंगापुर की लड़ाई में हाथ लगे 45000 भारतीय सैनिक मोहन सिंह को सौंप दिए। यही आगे चलकर आजाद हिंद सेना का रूप लेने वाली थी। नेताजी उस समय एक नाटकीय घटनाक्रम के अधीन भारत से जर्मनी पहुँच चुके थे। वहाँ जर्मनी कुछ भारतीय सैनिकों की मदद से वायव्य दिशा (पेशावर की ओर से) भारत पर हमला करने की योजना बना रही थी। इसी बीच जर्मनी ने रूस पर आक्रमण कर दिया। इस वजह से सुभाष बाबू का मॉस्को के रास्ते भारत जाने का रास्ता बंद हो गया।

7 दिसंबर 1941 के दिन जापान ने अमरीका के पर्ल हार्बर नामक बंदरगाह पर आक्रमण कर युद्ध में जर्मनी की तरफ से प्रवेश किया, और एक के बाद एक जीत हासिल करते हुए जापान ने सिंगापुर हथिया लिया। यह सब देख कर सुभाषबाबू जापान जाने के लिए उतावले हो गए। उस समय रास बिहारी बोस द्वारा स्थापित इंडियन इंडिपेंडेंस लीग ने भी अपने मंच से सुभाष बाबू को जापान ले आने के लिए सरकार को आह्वान किया। जर्मनी-जापान संयुक्त प्रयास से सुभाषबाबू ने जापानी भूमि पर कदम रखा. सुभाष बाबू ने आजाद हिंद सेना की कमान संभाली और सेना का दायरा फौज-मुद्रा-बैंक और सरकार तक बढ़ाया।

50,000 युद्धबंदियों का आजाद हिंद सेना में शामिल होना कोई आसान बात नहीं थी। जापानी कारागार में बैठे सैनिकों को ब्रिटिश राज से अपनी तनख्वाह बराबर एक तारीख को मिल जाती थी। भारत में रहने वाले उनके परिवारजन वैसे देखा जाए तो निश्चिंत थे। गुजारा भी हो रहा था और युद्धक्षेत्र से दूर होने की वजह से जान जाने का भी खतरा नहीं था। आजाद हिंद सेना में शामिल होने का मतलब था अंग्रेजों से मिलने वाली तनख्वाह बंद हो जाएगी। सुभाष बाबू तनख्वाह तो दे नहीं पाएंगे, उपर से मरने का खतरा! तो हिसाब यूँ था कि देश की स्वतंत्रता के लिए जान देने का अवसर मिलना ही इन सैनिकों की तनख्वाह थी। इस बात को सुभाष बाबू ने अपने उस प्रसिद्ध आह्वान में स्पष्ट भी कर दिया था - "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा"। ये सब होते हुए भी 50,000 की संख्या में सैनिक इस मृत्यु की, अपनों से बिछड़ने की, भूखे रहने की तनख्वाह देने वाली सेना में शामिल होने के लिए होड़ लगाते हैं। ये देखकर क्या हमें कुछ आश्चर्य नहीं होता? क्या हमें जरा भी अंदाजा नहीं होता कि ये सावरकरजी के सेना में शामिल होने के आह्वान की वजह से हुआ है?

अंदाजा लगाने की भी जरूरत नहीं। 25 जून 1944 के दिन सिंगापुर आकाशवाणी से दिए हुए अपने भाषण में नेताजी खुद कहते हैं, "जब गुमराह राजनैतिक सनक और दूरदृष्टि की कमी के कारण कांग्रेस पार्टी के लगभग सभी नेता भारतीय सेना में शामिल होने वाले सैनिकों की 'भाड़े के सैनिक' जैसे शब्दों का उपयोग कर निंदा कर रहे है, उसी समय यह जानकर खुशी हो रही है, की सावरकर निडर होकर भारत के युवाओं को सशस्त्र बलों में भर्ती होने के होने का आह्वान कर रहे हैं। ये सूचीबद्ध युवा हमारे आईएनए के लिए प्रशिक्षित पुरुष और सैनिक साबित होंगे।"

हालांकि धनंजय कीर द्वारा लिखित सावरकर चरित्र में उल्लिखित इस भाषण का समावेश नेताजी के भाषण संग्रह में नहीं है। लेकिन पुन: यह एक आजाद हिंद सैनिक द्वारा सरदार पटेल को लिखे गए एक पत्र से पुनर्स्थापित हो जाती है। आजाद हिंद सेना के सैनिक के. एन. राव सराय सैनिक लिखते हैं, "...ऐसे भारतीय सैनिक हैं, जिनके दिल में आजाद हिंद सेना है, जो नेताजी को भगवान मानते है, जो 1942 में सावरकर जी के आह्वान पर फौज में दाखिल हुए थे। दीए में अभी भी वही रौशनी है..."

रासबिहारी बोस और सावरकर जी का नियमित पत्र व्यवहार होता था। मुंबई के वरली में स्थित एक बुद्ध विहार के भिक्षुओं के माध्यम से इन पत्रों का आदान-प्रदान होता था। सावरकर जी ने रास बाबू को जापान में जापान की हिंदू महासभा का अध्यक्ष भी घोषित किया। खिलाफत आंदोलन की असफलता के चलते 'हिंदू-मुस्लिम एकता तो होने से रही, क्या हिंदू-बौद्ध एकता को साकार किया जा सकता है?" यह टटोलने का प्रयास जापान में रहने वाले रासबिहारी बोस की मदद से सावरकरजी कर रहे थे

यह पूरा पत्र आजाद हिंद सेना अभियोग और मिलिट्री इंटेलीजेंस रिपोर्ट्स में संग्रहीत है। जापान की मदद से आजाद हिंद सेना ने इंफाल कोहिमा की लड़ाई में वीरता का जो परिचय दिया, उसका उल्लेख इतिहास में स्वर्ण अक्षरों से होगा ही। लेकिन आरकान के जंगलों में हुई बारिश के कारण और साथ ही हिरोशिमा नागासाकी पर हुए एटम बम हमले के चलते जापान - आजाद हिंद सेना युद्ध में हार गई। इससे हमें यह समझने की गलती नहीं करनी चाहिए कि नेताजी - सावरकरजी की योजना असफल हो गई। इस सेना का असली युद्ध तब शुरू होता है, जब आजाद हिंद सैनिकों पर राजद्रोह का अभियोग लाल किले पर चालू हुआ। इस अभियोग के चलते भारतीय जनमानस को पहली बार यह ज्ञात हुआ कि हमारी स्वतंत्रता के लिए ऐसा कोई युद्ध हुआ है, ऐसे 50 हजार सैनिक जो लड़ने के बदले सिर्फ शहादत ही पा सकते थे, लड़ने के लिए उठ खड़े हुए थे। इनमें से 25 हजार सैनिक शहीद हो चुके हैं, ये हकीकत जानकर जनमानस में इन आजाद हिंद सैनिकों के प्रति प्रेम-आदर-लगाव की लहर दौड़ गई। मुंबई, कोलकाता, मद्रास में भारी संख्या में आजाद हिंद सैनिकों के लिए आंदोलन होने लगे। सैनिकों को फाँसी देना सरकार के लिए मुश्किल साबित होने लगा। आखिर दिसंबर 1945 के खत्म होते-होते सरकार पर सारे सैनिकों को छोड़ देने की नौबत आई। ये सैनिक जब अपने अपने गाँव वापस लौटने लगे, तब भारी भीड़ उनका गौरव-स्वागत-सत्कार करने के लिए तैयार थी। ब्रिटिश सेना से विद्रोह कर नेताजी के साथ शामिल होने वाले सैनिकों का गौरव देख, उन्हें देशभक्त कहने वाले लोगों को देख जो सैनिक अभी भी ब्रिटिश सेना में थे, उनके मन में यह प्रश्न उठा कि ये विद्रोही देशभक्त हैं तो हम कौन हैं? ब्रिटिश सेना में भारी संख्या में विद्रोह का माहौल बनने लगा। अब कहीं जाकर विश्व युद्ध के दौरान हथियाई हुई बंदूकों को किस तरफ मोड़ना है ये धीरे-धीरे सैनिकों की समझ में आने लगा। जो सैनिकों के मन में चल रहा है, उसका अंदाजा सरकार को भी होने लगा। उन्होंने सेना में कटौती करना शुरू कर दिया।

विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेजों का पूरा सैन्य बल था पैंतीस लाख और उसमें से भारतीय सैनिक पच्चीस लाख की संख्या में थे, जो धीरे धीरे कम होकर तीन-साढे तीन लाख तक कम किए गए। लेकिन आजाद हिंद फौज का जो परिणाम होना था वो तो हो गया। 1946 में नौसेना में हुआ विद्रोह और जबलपुर का थल सेना विद्रोह इसका साक्षी है। अंग्रेजों को यह पता लग चुका था कि हम अब भारत में ज्यादा दिन पैर जमाए नहीं रख सकते। मिलिट्री ऑपरेशन डायरेक्टरेट तक पहुँचे पहले भारतीय अधिकारी जनरल सिन्हा को कुछ पत्र मिले

विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेजों का पूरा सैन्य बल था पैंतीस लाख और उसमें से भारतीय सैनिक पच्चीस लाख की संख्या में थे, जो धीरे धीरे कम होकर तीन-साढे तीन लाख तक कम किए गए। लेकिन आजाद हिंद फौज का जो परिणाम होना था वो तो हो गया। 1946 में नौसेना में हुआ विद्रोह और जबलपुर का थल सेना विद्रोह इसका साक्षी है। अंग्रेजों को यह पता लग चुका था कि हम अब भारत में ज्यादा दिन पैर जमाए नहीं रख सकते। मिलिट्री ऑपरेशन डायरेक्टरेट तक पहुँचे पहले भारतीय अधिकारी जनरल सिन्हा को कुछ पत्र मिले। जिसमें ब्रिटिश अधिकारी इस बात का जायजा लेते दिखाई दे रहे हैं कि क्या वे अपने गोरे सैनिकों के बूते रातों-रात भारत छोड़कर इंग्लैंड भाग सकते हैं।

लेकिन फिर नौसैनिक विद्रोहियों को शांत करने के लिए कांग्रेस के कद्दावर नेताओं ने हस्तक्षेप किया। अंग्रेजों को विभाजन का समय मिल गया और आगे जो हुआ वो हमें ज्ञात है।

जो अंग्रेजों भारत छोड़ो का आंदोलन 1942 में शुरू हुआ और 1944 में असफल होकर खत्म हुआ (ये बात अधिकांश कांग्रेस नेताओं ने स्वीकार की है) उससे 1947 में स्वतंत्रता मिली, ये कैसे मान लिया जाए? भारत छोड़ो से स्वतंत्रता मिलनी थी, तो आंदोलन के खत्म होते ही मिलनी चाहिए थी। तीन साल बाद क्यों? स्वतंत्रता प्राप्ति की संगति बिठानी है तो 1945 का आजाद हिंद सेना पर अभियोग, उसके चलते 1946 का नौसैनिक विद्रोह, उसके चलते 1947 में स्वतंत्रता। यही संगति उचित लगती है।

इस वजह से 1952 में जब सावरकरजी ने अभिनव भारत संगठन का विसर्जन किया, तो उस समारोह के अध्यक्ष के तौर पर नेताजी की तसवीर स्थापित की और उसका उचित सम्मान किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध का, उसके लिये सेना में शामिल होकर उचित समय पर विद्रोह कर अंग्रेजों पर बंदूकें तानने की कल्पना सावरकरजी ने विश्व युद्ध छिड़ने से पहले और उस दौरान की थी और उसी का क्रियान्वयन नेताजी सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद सेना ने किया। यह नेताजी - सावरकर फॉर्मूला ही स्वतंत्रता प्राप्ति के श्रेय का असली हकदार है। इस नेताजी - सावरकर युगल के एक साथ काम न करते हुए भी एक दूसरे के लिए पूरक का कार्य करना, अगर जापानी लेखक ओसावा भाँपा सकते हैं, तो हमारे लिए भी यह कोई खास कठिनाई की बात नहीं है। बस पूर्वाग्रह दूषित मानसिकता की पट्टी जो हमारी आँखों पर लगी है, उसे निकाल फेंकना होगा। स्वतंत्रता की 75वीं सालगिरह का मुहूर्त इसके लिए बहुत अच्छा है।

संदर्भ

1. द टू ग्रेट इंडियंस इन जापान - श्री रास बिहारी बोस एंड नेताजी सुभाष चंद्र बोस, जे.जी. ओसावा
2. सावरकर एक वादग्रस्त वारसा: 1924 ते 1966 - विक्रम संपत
3. बोस : ऐन इंडियन समुराई, जनरल जी.डी.बख्शी
4. नेताजी - वि. स. वाळिंबे
5. स्वातंत्र्यवीर सावरकर - अखंड हिंदुस्थान लढा पर्व - आचार्य बाळाराव सावरकर

डॉ. अनिर्बान गांगुली

सुभाष और श्यामा प्रसाद - एक चिंतन

नेताजी सुभाष चंद्र बोस और श्यामा प्रसाद मुखर्जी दोनों एक पृष्ठभूमि से तो थे ही, वैचारिक समानताएँ भी इनमें बहुत अधिक थीं। एक अंतर्दृष्टि

नेताजी सुभाष चंद्र बोस और डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के संबंधों के बारे में विस्तार से लिखना बंगाल और देश के इतिहास के एक बहुत ही जटिल कालखंड में गहराई से उतरना होगा। डॉ. मुखर्जी और नेताजी सुभाष चंद्र बोस, दोनों ही, शायद अधिक परिमाण में,प्रबल भावनाओं को जगाते रहे हैं, विशेषकर अपने प्रिय प्रांत बंगाल में, जो उनकी राजनैतिक गतिविधियों का प्रमुख आधारक्षेत्र भी था।

जहाँ डॉ. मुखर्जी की विरासत और योगदान अभी भी भारत के जनमानस में उतर रहा है, वहीं भारत के नव उत्थान के लिए नेताजी का योगदान अधिक गहराई और व्यापक रूप से इसमें व्याप्त हो चुका है। 2014 के बाद से, भारत की आजादी के बाद पहली बार, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में हमारे राष्ट्रीय जीवन में नेताजी की विरासत की सम्मानजनक पुनर्स्थापना हुई है। नेताजी को राष्ट्रीय स्तर पर दी जाने वाली श्रद्धांजलि में नवीनतम कार्य नई दिल्ली में कर्तव्य पथ पर उनकी एक भव्य प्रतिमा स्थापित करना और उनके नाम पर पहली बार एक राष्ट्रीय पुरस्कार की स्थापना करना था। यह एक ऐसी आकांक्षा और माँग थी जो दशकों से नेताजी के अनगिनत प्रशंसकों द्वारा की जा रही थी। इसकी पूर्ति के रूप में भारत के स्वतंत्रता संग्राम में उनके योगदान के गहरे और मौलिक महत्व को कृतज्ञ राष्ट्र ने सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया है।

जम्मू-कश्मीर में अनुच्छेद 370 को निष्क्रिय करना और राज्य के व्यापक विकास की ओर बढ़ती गति, श्रीनगर में जी 20 बैठक का सफल समापन और कानून-व्यवस्था की स्थिति में व्यापक सुधार शायद श्यामा प्रसाद को उनकी 70वीं पुण्य तिथि पर सबसे बड़ी श्रद्धांजलि है। उनके अंतिम संघर्ष का सार और सत्य प्रमाणित हो चुका है। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की प्रबल और स्थिर राजनैतिक इच्छाशक्ति, जनसंघ और भाजपा की अनुच्छेद 370 को निरस्त करने की माँग का लगातार समर्थन, राजनैतिक कार्यकर्ताओं और नेताओं की पीढ़ियों की दृढ़ता के कारण यह अनुच्छेद निष्क्रिय हो गया। यह एक ऐसी माँग थी जिसके लिए डॉ. मुखर्जी ने 1953 में 52 साल की आयु में अपने प्राण न्योछावर कर दिए थे।

नेताजी का बलिदान भारत की स्वतंत्रता के लिए था; श्यामा प्रसाद का बलिदान भारत की एकता, अखंडता को बनाए रखने, उसकी स्वतंत्रता और उसके भविष्य के लिए था। एकीकरण सुदृढ और संपूर्ण न होने तथा पृथकतावादी मानसिकता को छूट दिए जाने की स्थिति को लेकर भारत के सुरक्षा परिदृश्य और तत्संबंधी चुनौतियों के बारे में उनके जो पूर्वानुमान थे, वे उनकी मृत्यु के बाद के दशकों में कश्मीर में सत्य सिद्ध हुए।

इन दोनों प्रतिष्ठित दिग्गजों की विरासत हाशिये पर जाने के दौर से भी गुजरी। उनके राजनैतिक और वैचारिक विरोधियों ने दशकों तक, विशेषत: स्वतंत्रता के बाद, उनके योगदान को मिटाने, उनके सार्वजनिक कार्यों की स्मृति और हमारे राष्ट्रीय जीवन में उनके बहुमुखी योगदान की स्मृति को कमजोर करने के लिए एक प्रबल और प्रेरित प्रयास किया। उन्होंने ऐसा इसलिए किया क्योंकि श्यामा प्रसाद और सुभाष दोनों ही पूरी तरह से स्वतंत्र थे और दृढ़ निश्चय रखते थे, जिससे ये राजनैतिक ताकतें सहमत नहीं थीं। उनकी विरासतों को मिटाने की कोशिश में कांग्रेस और कम्युनिस्ट पार्टियाँ सबसे आगे थीं।

कम्युनिस्टों ने सुभाष और श्यामा प्रसाद का उनके जीवनकाल में भी अपमान किया।

जहाँ कम्युनिस्टों ने, 1947 में बंगाल के विभाजन की वकालत करने और भारतीय संघ के अभिन्न अंग के रूप में एक हिंदू बहुसंख्यक पश्चिम बंगाल प्रांत के निर्माण की आवश्यकता के लिए श्यामा प्रसाद की तुलना कुख्यात लॉर्ड कर्जन से की, वहीं सुभाष को 'क्विस्लिंग' और जापानी साम्राज्यवाद का 'गुर्गा' कहकर उनकी निंदा की गई। अपनी माँग की तुलना चार दशक पहले बंगाल के विभाजन की कर्जन की योजना से करने वाले कम्युनिस्टों के प्रेरित अभियान पर, श्यामा प्रसाद ने यह कहकर प्रतिक्रिया व्यक्त की कि, श्लॉर्ड कर्जन का विभाजन और एक नए प्रांत की हमारी माँग खंडित ध्रुवों की तरह हैं। कर्जन के विभाजन का उद्देश्य 'विद्रोही' बंगाली हिंदुओं को मर्मान्तक आघात देना था...दूसरी ओर हिंदू बंगाल के लिए हमारे वर्तमान प्रस्ताव का उद्देश्य बंगाली हिंदुओं और राष्ट्रवाद के विचार को बचाना है, जो उनका जीवन-रक्त है। 'श्यामा प्रसाद ने तर्क दिया कि नए प्रस्तावित प्रांत में एक भाषा होगी और इसकी 70 प्रतिशत जनसंख्या बंगाली हिंदू होगी। अंततः, विभाजन शब्द के मात्र उल्लेख से हमें मूर्छा की स्थिति में आने की जरूरत नहीं है। आइए हम उस उद्देश्य की जाँच करें जिसके साथ लॉर्ड कर्जन ने अपने साम्राज्यवादी मंसूबों को आगे बढ़ाने की कोशिश की, या वे उद्देश्य जो तीस साल बाद सांप्रदायिक निर्णय के कारण बने, और स्वयं से पूछें कि क्या हमारे वर्तमान प्रस्ताव का उद्देश्य उन्हीं उद्देश्यों को विफल करना और भारतीय जीवन के उस तत्त्व को राजनैतिक मृत्यु से बचाना नहीं है जो भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के विघटन के लिए किसी अन्य से अधिक जिम्मेदार है।'

उदाहरण के लिए, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के मुखपत्र 'पीपुल्स वॉर' ने लगातार नेताजी पर अपमानजनक लेख प्रकाशित किए। उसने आईएनए को 'बलात्कार' और 'लूट' करने वाली भाड़े की सेना करार दिया और कहा कि अगर ये लूट-पाट की वारदातों को अंजाम देने के लिए भारतीय धरती पर कदम रखने की हिम्मत करते हैं तो आईएनए को हमारे लोगों का 'क्रोध और आक्रोश महसूस होगा'। नेताजी पर अपशब्द कहना 'कम्युनिस्टों का पसंदीदा शगल बन गया'। स्वाभाविक रूप से, पीपुल्स वॉर को ब्रिटिश औपनिवेशिक प्रशासन से उदार संरक्षण प्राप्त हुआ। मुखपत्र की बिक्री में 124 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई, 'यह छः क्षेत्रीय भाषा के समाचार पत्रों के अलावा पाँच भाषाओं में आया। इसका कुल प्रसार 65,000 प्रतियों तक पहुँच गया', जो युद्ध के समय के मानकों के लिए एक बड़ी संख्या थी।

बंगाल के भाग्य पर, जब श्यामा प्रसाद का निधन हुआ, तो कई लोगों ने शोक व्यक्त किया कि 1945 और 1953 के बीच, लगभग आठ वर्षों के अंतराल में, प्रांत और इसके लोगों ने अपने दो सबसे महान और बहुमुखी प्रतिभासंपन्न पुत्रों, सुभाष चंद्र बोस और श्यामा प्रसाद मुखर्जी को खो दिया। पहला अगस्त 1945 में ताइपे में एक कथित विमान दुर्घटना के बाद गायब हो गया, जबकि दूसरा जून 1953 में श्रीनगर में शेख अब्दुल्ला की उप जेल में खत्म हुआ, जो भारत के सर्वोच्च न्यायालय की पहुँच से परे था, और शेख और जवाहरलाल नेहरू द्वारा निष्पादित एक संयुक्त अभियान में योजनाबद्ध तरीके से लालच देकर कैद कर लिया गया था।

श्यामा प्रसाद और सुभाष बोस, दोनों ने जिस भावना या मनोदशा को जगाया और बंगाली मानस में व्याप्त किया, उसे संभवतः एक कृतज्ञता पत्र द्वारा सबसे अच्छी तरह से चित्रित किया गया है, जिसे बंगाल के सबसे प्रतिष्ठित कवियों में से एक, काजी नजरूल इस्लाम ने जुलाई 1942 में श्यामा प्रसाद को लिखा था। कवि नजरुल बीमार थे और उनके परिवार के सदस्यों ने उस समय की कई प्रमुख मुस्लिम हस्तियों जैसे फजलुल हक, बंगाल के तत्कालीन प्रधानमंत्री, ख्वाजा नाजिमुद्दीन और हुसैन सुहरावर्दी से मदद माँगी थी, लेकिन उन्हें कोरी सांत्वना के साथ लौटना पड़ा

श्यामा प्रसाद और सुभाष बोस, दोनों ने जिस भावना या मनोदशा को जगाया और बंगाली मानस में व्याप्त किया, उसे संभवतः एक कृतज्ञता पत्र द्वारा सबसे अच्छी तरह से चित्रित किया गया है, जिसे बंगाल के सबसे प्रतिष्ठित कवियों में से एक, काजी नजरूल इस्लाम ने जुलाई 1942 में श्यामा प्रसाद को लिखा था। कवि नजरुल बीमार थे और उनके परिवार के सदस्यों ने उस समय की कई प्रमुख मुस्लिम हस्तियों जैसे फजलुल हक, बंगाल के तत्कालीन प्रधानमंत्री, ख्वाजा नाजिमुद्दीन और हुसैन सुहरावर्दी से मदद माँगी थी, लेकिन उन्हें कोरी सांत्वना के साथ लौटना पड़ा। श्यामा-हक गठबंधन सरकार में बंगाल के तत्कालीन वित्तमंत्री श्यामा प्रसाद, नजरूल के दारुण दुख को सुनकर, उनके बचाव के लिए दौड़े। श्यामा प्रसाद ने न केवल उनके इलाज में सहायता की, बल्कि नजरूल और उनके परिवार के लिए, बिहार के मधुपुर, जो अब झारखंड में है, में अपने भ्रमण स्थल में महीनों बिताने की व्यवस्था भी की। कृतज्ञ नजरुल ने श्यामा प्रसाद को लिखा कि कैसे वह गठबंधन सरकार के सदस्यों के बीच उनका सबसे अधिक सम्मान करते हैं। कवि की सबसे मार्मिक पंक्तियाँ श्यामा प्रसाद और सुभाष बोस दोनों के लिए ही थीं, जब उन्होंने लिखा, "मुझे पता है कि यह हम ही हैं जो भारत को पूरी तरह से स्वतंत्र करेंगे, और उस दिन, [जब भारत पूरी तरह से स्वतंत्र होगा], बंगाली याद रखेंगे आपको और सुभाष बाबू को, बाकी सभी से पहले, आप ही इस राष्ट्र के सच्चे नेता होंगे।' नजरूल ने सुभाष और श्यामा प्रसाद के लाखों स्वदेशियों की भावनाओं को आवाज दी थी।

उन कठिन वर्षों में, जब सुभाष चंद्र बोस ने भारत को मुक्त कराने के लिए विदेशी तटों से संघर्ष जारी रखने के लिए एक साहसिक यात्रा की थी, श्यामा प्रसाद ने विशेष रूप से बंगाल में मोर्चा संभाला था। प्रसिद्ध साहित्यकार, सांस्कृतिक टिप्पणीकार और लेखक, दिवंगत रवीन्द्र कुमार दासगुप्ता ने कहा, कि उन काले और कठिन दिनों में, जब 9 अगस्त 1942 को भारत छोड़ो की माँग के बाद स्वतंत्रता आंदोलन के पूरे राष्ट्रीय नेतृत्व को जेल में डाल दिया गया

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

मध्यप्रदेश

मध्यप्रदेश पेसा नियम

जनजातीय वर्ग के विकास के लिए अभूतपूर्व फैसला

जल के अधिकार

- तालाबों के प्रबंधन का अधिकार ग्राम सभा को
- ग्राम पंचायत करेगी 100 एकड़ तक की सिंचाई क्षमता के जलाशयों का प्रबंधन
- तालाब/ जलाशयों में मछली पालन, सिंघाड़ा उत्पादन की गतिविधियों का अधिकार, होगी आमदनी में वृद्धि
- जलाशयों को प्रदूषित करने पर कार्रवाई का अधिकार

जनजातीय गौरव के संरक्षण और संवर्धन के अधिकार

- परंपराओं और सांस्कृतिक पहचान का गौरव बढ़ेगा
- शराब/ भांग की दुकान ग्राम सभा की अनुमति बिना नहीं
- अस्पताल, स्कूल या धार्मिक स्थल के पास शराब/ भांग की दुकान को दूसरी जगह स्थानांतरित करने की अनुशंसा का अधिकार
- सार्वजनिक स्थानों पर शराब के उपयोग को प्रतिबंधित करने एवं अवैध बिक्री को रोकने का अधिकार
- स्कूल, स्वास्थ्य केंद्र, आंगनवाड़ी, आश्रम शाला एवं छात्रावासों में निरीक्षण एवं मॉनीटरिंग का अधिकार ग्राम सभा को
- ग्राम में हाट बाजार और मेलों के प्रबंधन का अधिकार
- एक तिहाई महिला सदस्यों के साथ शांति एवं विवाद निवारण समिति, यह समिति परम्परागत तरीके से विवाद निपटारा करने में होगी सक्षम
- सामाजिक सौहार्द और भाई-चारा कम करने वाली किसी भी गतिविधि का समर्थन नहीं करेगी ग्राम सभा
- धर्मान्तरण से संस्कृति संरक्षण के लिये अधिकार

श्रमिकों के अधिकार

- ग्राम सभा साल भर की कार्ययोजना बनाकर ग्राम के हर पात्र मजदूर को दिलाएगी मांग आधारित रोज़गार
- केंद्र और राज्य की रोज़गार मूलक योजनाओं में कार्यों का निर्धारण करेगी ग्राम सभा
- रोज़गार मूलक कार्यों में मस्टर रोल की गलतियों को ठीक करने का अधिकार
- गांव से पलायन और मजदूरों के शोषण को रोकने का अधिकार ग्राम सभा के पास
- नियत मजदूरी दर को गांव में सार्वजनिक स्थान पर एक बोर्ड पर प्रदर्शित किया जाएगा
- किसी साहूकार द्वारा शोषण पर ग्राम सभा अनुशंसा के साथ उपखण्ड अधिकारी को भेज सकेगी शिकायत
- किसी हितग्राही मूलक योजना में गांव के सबसे ज्यादा आवश्यकता वाले पात्र हितग्राही को मिलेगी प्राथमिकता

" पेसा नियम जनजातीय समुदाय के सर्वांगीण विकास के लिये लागू किये गये हैं। इनको सफल बनाने और इनकी भावना के अनुरूप प्रभावी क्रियान्वयन के लिए कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी जाएगी।"

शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

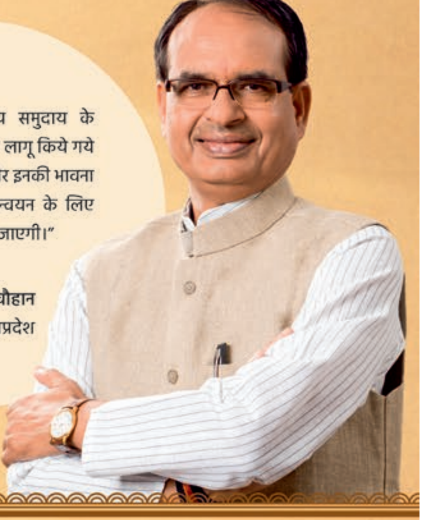

मध्यप्रदेश शासन

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी/2022

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2022

Follow us on :

@OilIndiaLtd @OilIndiaLimited @OilIndiaLtd @Oil India Ltd

www.oil-india.com

था, श्यामा प्रसाद भारतीय राष्ट्रवाद के संघर्ष की एकमात्र आवाज थे।

वह श्यामा प्रसाद ही थे जिन्होंने अगस्त आंदोलन के आदर्शों को पूरे भारत और दुनिया के सामने रखा। अगस्त 1942 से लगभग तीन महीने के भीतर, श्यामा प्रसाद ने राष्ट्रवादी भावना को कुचलने की कोशिश में ब्रिटिश प्रशासन और नौकरशाही की धोखाधड़ी को उजागर करते हुए बंगाल मंत्रिमंडल से इस्तीफा दे दिया। मिदनापुर क्रांतिकारी समूहों के समर्थन में श्यामा प्रसाद के विशाल प्रयास, 1943 में बंगाल के अकाल के पीड़ितों के लिए सबसे बड़े गैर-सरकारी राहत के आयोजन में उनके विशाल प्रयास ने उन्हें न केवल बंगाल बल्कि पूरे भारत के राजनैतिक क्षेत्र में सबसे निर्णायक आवाज के रूप में स्थापित किया। 23 नवंबर 1942 के अपने कठोर त्यागपत्र में उन्होंने कहा था कि 'प्रांतीय स्वायत्तता की तथाकथित प्रणाली के तहत काम करने वाला संविधान एक बड़ा मजाक है... प्राथमिक न्याय और मानवीय कारणों के लिए, बंगाल को एक व्यक्ति के रूप में खड़ा होना चाहिए जो विचारहीन और प्रतिक्रियावादी प्रशासकों द्वारा प्रांत पर थोपे गए मनमाने शासन को समाप्त करने की माँग करे।' बाधा डालने वाली ब्रिटिश नौकरशाही को, श्यामा प्रसाद ने 'एक सस्ते चतुर और तीसरे दर्जे के गवर्नर के नेतृत्व वाली एक संवेदनहीन नौकरशाही' के रूप में वर्णित किया। उस अत्यंत कठिन समय में श्यामा प्रसाद को 'दो बड़ी समस्याओं का सामना करना पड़ा, जिसने उनके प्रांत के लोगों के जीवन, स्वतंत्रता और खुशी को प्रभावित किया।' पहली 'स्कॉच्ड अर्थ पॉलिसी' थी जिसे 1942 की शुरुआत में अपनाया गया था, और यह केवल देश की पूर्वी सीमा और पूर्वी तटीय क्षेत्रों पर लागू थी; इससे बड़ी कठिनाई हुई और '1943 में बंगाल का भयानक अकाल' पड़ा। दूसरा 'अगस्त आंदोलन' के लोकप्रिय उभार को दबाने के लिए मिदनापुर जिले में अपनाए गए अत्यधिक दमनकारी उपाय थे।' आर के दासगुप्ता लिखते हैं, 'इस अंधेरे और कठिन समय के दौरान, श्यामा प्रसाद की दृढ़ और निडर आवाज ही हमारी एकमात्र सांत्वना. ..थी।' एक तरह से, श्यामा प्रसाद ने उस शून्य को भर दिया जो सुभाष की शारीरिक अनुपस्थिति ने युवा बंगाल के मन और हृदय में उत्पन्न कर दिया था।

जिस प्रकार युवा सुभाष पर स्वामी विवेकानंद का प्रभाव गहरा था, उसी प्रकार श्यामा प्रसाद पर भारत सेवाश्रम संघ के संस्थापक आचार्य प्रणवानंद का प्रभाव गंभीर था। युवा आचार्य श्यामा प्रसाद को बंगाल और भारत के हिंदुओं के संरक्षक के रूप में देखते थे। श्यामा प्रसाद के साथ स्वामी प्रणवानंद का संवाद, मुस्लिम लीग शासन के उत्पीड़न से त्रस्त बंगाल के हिंदुओं की सुरक्षा और भविष्य के लिए श्यामा प्रसाद के संघर्ष का सार्वजनिक अनुमोदन तो था ही; यह उनकी ओर से इस बात का संकेत भी था कि श्यामा प्रसाद बंगाली हिंदुओं के संरक्षक के रूप में खड़े हैं

सुभाष पर स्वामी विवेकानंद और श्री अरविंद का गहरा प्रभाव उनके पत्रों से स्पष्ट रूप से उभरता है। उनकी आध्यात्मिक खोज और उनकी प्रारंभिक राजनैतिक खोज में विवेकानंद और श्री अरबिंदो दोनों ने सुभाष के जीवन में एक प्रमुख प्रारंभिक भूमिका निभाई। अपने एक पत्र में वे लिखते हैं, 'स्वामी विवेकानंद की मृत्यु 1902 में हुई और अरबिंदो घोष के व्यक्तित्व के माध्यम से धार्मिक-दार्शनिक आंदोलन जारी रहा। अरबिंदो राजनीति से अलग नहीं रहे। इसके विपरीत, वह इसमें डूब गए और 1908 तक अग्रणी राजनैतिक नेताओं में से एक बन गए। उनमें आध्यात्मिकता राजनीति से जुड़ी हुई थी...' एक अन्य पत्र में, युवा सुभाष, जो सार्वजनिक जीवन में कदम रखने और भारत की स्वतंत्रता के लिए खुद को समर्पित करने वाले थे, लिखते हैं, 'अरबिंदो घोष मेरे लिए मेरे आध्यात्मिक गुरु हैं। मैंने अपना जीवन और आत्मा उन्हें और उनके मिशन को समर्पित कर दिया है। मेरा निर्णय अंतिम और अपरिवर्तनीय है।'

श्यामा प्रसाद पर श्री अरविन्द का प्रभाव भी कम नहीं था। बंगाल में सबसे कठिन समय के दौरान जब श्यामा प्रसाद ने मुस्लिम लीग की सांप्रदायिक राजनीति को दूर करने के लिए संघर्ष किया, तो श्यामा प्रसाद को श्री अरबिंदो के कई शिष्यों और अनुयायियों का समर्थन मिला, जो अपने आध्यात्मिक गुरु के संकेत के तहत उनके साथ थे। 1908 और 1909 के बीच अलीपुर जेल में जिस सेल में श्री अरबिंदो को कैद किया गया था, उस सेल का नामकरण करने वाली पहली स्मारक पट्टिका आजादी के बाद श्यामा प्रसाद मुखर्जी द्वारा स्थापित की गई थी। जब 1951 में श्री अरबिंदो के स्मारक के रूप में एक विश्वविद्यालय बनाने का निर्णय लिया गया, तो श्यामा प्रसाद को श्री अरबिंदो आश्रम की मदर द्वारा श्री अरबिंदो मेमोरियल कन्वेंशन की अध्यक्षता करने के लिए आमंत्रित किया गया था, जो श्री अरबिंदो के दृष्टिकोण को समर्पित एक शिक्षा केंद्र के विचार पर विमर्श के लिए पांडिचेरी में आयोजित किया गया था। शिक्षा और श्री अरबिंदो के दर्शन पर अपनी बेहतरीन अभिव्यक्ति में, श्यामा प्रसाद ने कहा, 'यह [श्री अरबिंदो का जीवन] भारत की राजनैतिक मुक्ति के आग्रह में शुरू हुआ। इसने एक चमत्कार, महान रहस्योद्घाटन का मार्ग प्रशस्त किया जो 1909 में उनकी जेल में हुआ। जो खिड़की बंद थी वह खुल गई और परमात्मा उसके सामने प्रकट हो गए। उसी त्याग के साथ, जिसके साथ उन्होंने भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता के लिए संघर्ष किया था, उन्होंने आत्मा की स्वतंत्रता के लिए अपनी लंबी धैर्यपूर्ण खोज शुरू की। दो अरबिंदो एक दूसरे में विलीन हो गए, राजनैतिक सेनानी और योगी। फिर भी उनकी प्रारंभिक देशभक्ति आध्यात्मिक उपछाया से रंगी हुई थी। इस प्रकार वह एक सच्चे भारतीय थे। जब हम उनकी किताबें पढ़ते हैं, तो वे हमारी प्राचीन पवित्र विद्या के पन्नों से बाहर आते प्रतीत होते हैं, जो वर्तमान आध्यात्मिक संकट के बारे में जागरूकता से गतिशील बनाए गए उनके सभी ज्ञान के प्रतिनिधि हैं।'

जिस प्रकार युवा सुभाष पर स्वामी

विवेकानंद का प्रभाव गहरा था, उसी प्रकार श्यामा प्रसाद पर भारत सेवाश्रम संघ के संस्थापक आचार्य प्रणवानंद का प्रभाव गंभीर था। युवा आचार्य श्यामा प्रसाद को बंगाल और भारत के हिंदुओं के संरक्षक के रूप में देखते थे। श्यामा प्रसाद के साथ स्वामी प्रणवानंद का संवाद, मुस्लिम लीग शासन के उत्पीड़न से त्रस्त बंगाल के हिंदुओं की सुरक्षा और भविष्य के लिए श्यामा प्रसाद के संघर्ष का सार्वजनिक अनुमोदन तो था ही; यह उनकी ओर से इस बात का संकेत भी था कि श्यामा प्रसाद बंगाली हिंदुओं के संरक्षक के रूप में खड़े हैं। एक व्यापक रूप से सम्मानित युवा हिंदू संत और क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय प्रभाव वाले सबसे लोकप्रिय युवा हिंदू नेताओं में से एक के बीच यह प्रेरक और सार्वजनिक साझेदारी बहुत रुचिकर थी। स्वामी प्रणवानंद द्वारा बंगाल के हिंदुओं के हितों की रक्षा के हिंदू महासभा के राजनैतिक लक्ष्य का खुला समर्थन और श्यामा प्रसाद के नेतृत्व का पूरे भारत के हिंदुओं पर गहरा प्रभाव पड़ा।

बोस बंधुओं के साथ श्यामा प्रसाद के संबंधों के बारे में इतिहासकार लियोनार्ड गॉर्डन लिखते हैं:

हिंदू महासभा बंगाल में एक संगठन के रूप में कभी भी मजबूत नहीं थी, लेकिन इसके नेता, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, इन वर्षों के दौरान इस दृष्टिकोण के एक प्रमुख और मुखर प्रवक्ता बन गए। 1929 में उन्होंने बंगाल विधान परिषद में शरत बोस की कलकत्ता विश्वविद्यालय वाली सीट संभाली और कई वर्षों तक परिषद में बने रहे। वह बोस के पारिवारिक मित्र भी थे, हालाँकि कई राजनैतिक मुद्दों पर वह उनसे अलग थे। वह उन्हें जेल से बाहर निकालने के लिए संघर्ष करते, और जब वे जेल में होते तो उनके स्वास्थ्य के बारे में सवाल करके सरकार पर दबाव डालते...

जब जुलाई 1940 में सुभाष ने होलवेल स्मारक को, जो 150 वर्षों से कलकत्ता के केंद्र में खड़ा था, भारत के अपमान और गुलामी का प्रतीक बताते हुए इसको हटाने की माँग करते हुए ऐतिहासिक आंदोलन का नेतृत्व किया तो औपनिवेशिक पुलिस ने एक गंभीर और हिंसक कार्रवाई शुरू की। सुभाष को कई अन्य लोगों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। जहाँ सुभाष ने बाहर आंदोलन का नेतृत्व किया, वहीं श्यामा प्रसाद ने विधानसभा में छात्रों पर पुलिस के अत्याचारों का 'जोरदार विरोध' किया और 'बहुत कड़ी और प्रबल' निंदा की।

हालाँकि श्यामा प्रसाद और सुभाष की राजनीति में कई मौकों पर, विशेषकर बंगाल में सांप्रदायिक सवाल पर, मतभेद थे, तथापि जब भी जरूरत पड़ी बोस और श्यामा प्रसाद बंगाल के हित में एक साथ आए। उदाहरण के लिए, जब मुस्लिम लीग सरकार ने माध्यमिक शिक्षा विधेयक पेश करने की माँग की, जो बंगाल की शिक्षा प्रणाली और तंत्र को पूरी तरह से लीग द्वारा नामित मुसलमानों के नियंत्रण में धकेल देता, तो श्यामा प्रसाद ने इस कदम का विरोध किया। लोकप्रिय और प्रभावशाली मॉडर्न रिव्यू ने अपने दिसंबर 1937 के अंक में इस विधेयक को 'बंगाल की माध्यमिक शिक्षा की गर्दन में सीधे' और 'महाविद्यालयी एवं विश्वविद्यालयी शिक्षा की गर्दन में परोक्ष रूप से फाँसी का फंदा डालने की कोशिश' कहकर आलोचना की। हिंदुओं को यह भी डर था कि उनके स्कूलों को पर्याप्त अनुदान मिलना बंद हो जाएगा और मुस्लिम स्कूलों को मिलने वाले अनुदान जितना तो नहीं ही मिलेगा। श्यामा प्रसाद को कांग्रेस सदस्यों का समर्थन प्राप्त हुआ और विधानसभा में कांग्रेस पार्टी के तत्कालीन नेता शरत बोस ने उनका समर्थन करते हुए सरकार को माध्यमिक शिक्षा के साथ छेड़छाड़ को लेकर आगाह किया। चार साल तक विधानसभा में चर्चा के बाद अंततः विधेयक को अस्वीकार कर दिया गया। यह श्यामा प्रसाद के लिए एक बड़ी जीत थी।

श्यामा प्रसाद की डायरी में 2 फरवरी 1939 की एक प्रविष्टि है। यह प्रविष्टि कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में सुभाष के दोबारा चुने जाने पर महात्मा गांधी के विरोध पर उनकी गहरी हताशा को दर्शाती है।

ट्रेन में हूँ। सुभाष चंद्र बोस के चुने जाने पर गांधी के बयान को ध्यान से पढ़ा। मैं इसके स्वर और विषय-वस्तु पर अपनी हताशा छिपा नहीं सकता। उन्हें सुभाष की जीत पर इतना परेशान क्यों होना चाहिए? आखिरकार उन्होंने ही तो पिछले साल उन्हें अध्यक्ष बनाया था। और अगर उन्हें ईमानदारी से लगता है कि सुभाष असफल हो गए हैं, तो उन्हें जनता को बताना चाहिए कि वह ऐसा क्यों सोचते हैं - किसी भी कीमत पर उन्हें कम से कम एक बार तो सुभाष से बात करनी ही चाहिये... उन्हें यह कहने का क्या अधिकार था कि सुभाष की पीठ के पीछे उन्होंने (गांधी सहित) निर्णय लिया था कि उन्हें दोबारा निर्वाचित करना अनावश्यक है और इससे भी अधिक यह कि एस (यानी सुभाष) का चुना जाना भारत के हितों के विरुद्ध होगा। आखिरकार सुभाष अभी भी अध्यक्ष थे और यदि कांग्रेस के लोगों का एक बड़ा वर्ग चाहता था कि वे दोबारा चुनाव लड़ें, तो इसमें कोई बहुत गंभीर बात नहीं थी। और सुभाष का घोषणापत्र पटेल एंड कंपनी द्वारा जारी किए गए अनुचित बयान का जवाब था - जिसके खिलाफ गांधी के पास बोलने के लिए एक शब्द भी नहीं था। यह लोकतंत्र नहीं बल्कि निचले प्रकार का फासीवाद है!

उदाहरण के लिए, नवंबर 1945 की शुरुआत में, श्यामा प्रसाद के नेतृत्व में हिंदू महासभा ने आईएनए के देशभक्त-सैनिकों

जिस प्रकार युवा सुभाष पर स्वामी विवेकानंद का प्रभाव गहरा था, उसी प्रकार श्यामा प्रसाद पर भारत सेवाश्रम संघ के संस्थापक आचार्य प्रणवानंद का प्रभाव गंभीर था। युवा आचार्य श्यामा प्रसाद को बंगाल और भारत के हिंदुओं के संरक्षक के रूप में देखते थे। श्यामा प्रसाद के साथ स्वामी प्रणवानंद का संवाद, मुस्लिम लीग शासन के उत्पीड़न से त्रस्त बंगाल के हिंदुओं की सुरक्षा और भविष्य के लिए श्यामा प्रसाद के संघर्ष का सार्वजनिक अनुमोदन तो था ही; यह उनकी ओर से इस बात का संकेत भी था कि श्यामा प्रसाद बंगाली हिंदुओं के संरक्षक के रूप में खड़े हैं

के समर्थन में पूरे देश में सफलतापूर्वक आईएनए दिवस मनाया, और 'उनकी कड़े शब्दों में की गई अपील प्रभावी साबित हुई।' 21-23 नवंबर को 'कलकत्ता में एक जनक्रांति' हुई जब एक छात्र जुलूस ने आईएनए कैदियों की रिहाई की माँग की और उनके और पुलिस के बीच एक हिंसक झड़प अपरिहार्य प्रतीत हुई।' श्यामा प्रसाद ने अपने 'समय पर और निडर हस्तक्षेप' के माध्यम से स्थिति को बचाया। उन्हें 'छात्रों द्वारा अपने मित्र, दार्शनिक और मार्गदर्शक के रूप में उच्च सम्मान' दिया गया।

भारतीय जनसंघ की स्थापना के लिए 21 अक्टूबर 1951 की तारीख चुनना एक सचेत निर्णय था क्योंकि यह ऐतिहासिक अवसर 1943 में सुभाष द्वारा आजाद हिंद सरकार के स्थापना दिवस के साथ मेल खाता था। 21 अक्टूबर की शाम को दिल्ली में एक बड़ी जनसभा को संबोधित करते हुए श्यामा प्रसाद ने याद किया कि सुभाष चंद्र बोस ने 'उसी दिन' आजाद हिंद सरकार की घोषणा की थी और उन्हें उम्मीद थी कि 'भारतीय जनसंघ देश की सेवा में आईएनए की लड़ाकू परंपरा को आगे बढ़ाएगा।'

सुभाष और श्यामा प्रसाद दोनों अपने-अपने ढंग से अद्वितीय थे। दोनों में से प्रत्येक राजनीति और राष्ट्रीय सेवा और मुक्ति के दर्शन के एक पहलू और आयाम का प्रतिनिधित्व करता था। दोनों ही की भारत की स्वतंत्रता से पहले और उसके बाद के दशकों और वर्षों में अपनी जगह और आवश्यकता थी। बंगाल और बंगालियों के प्रारब्ध और उनकी नियति की चिंता को लेकर अत्यंत उत्साह और निष्ठापूर्वक जुड़े होने के साथ-साथ दोनों ही भारत की महानता के प्रति एक स्पष्ट दृष्टिकोण रखते थे

सुभाष और श्यामा प्रसाद दोनों अपने-अपने ढंग से अद्वितीय थे। दोनों में से प्रत्येक राजनीति और राष्ट्रीय सेवा और मुक्ति के दर्शन के एक पहलू और आयाम का प्रतिनिधित्व करता था। दोनों ही की भारत की स्वतंत्रता से पहले और उसके बाद के दशकों और वर्षों में अपनी जगह और आवश्यकता थी। बंगाल और बंगालियों के प्रारब्ध और उनकी नियति की चिंता को लेकर अत्यंत उत्साह और निष्ठापूर्वक जुड़े होने के साथ-साथ दोनों ही भारत की महानता के प्रति एक स्पष्ट दृष्टिकोण रखते थे। उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय और अखिल भारतीय था। वे भारत और उसके भविष्य के व्यापक दृष्टिकोण में बंगाल को स्थापित कर सके थे। जहाँ सुभाष ने अपने विश्वव्यापी कार्यों के माध्यम से ब्रिटिश साम्राज्य को उसकी जड़ों से हिला दिया और भारत की स्वतंत्रता के दिन को निकट कर दिया, वहीं श्यामा प्रसाद ने यह सुनिश्चित किया कि बंगाल का एक हिस्सा, पंजाब और असम के साथ हमेशा के लिए स्वतंत्र भारत में एकीकृत हो जाए। बाद में, एक बड़े क्षेत्र में भारत के पूर्ण एकीकरण के लिए उनके संघर्ष ने भारत की एकता और स्वतंत्रता को मजबूत किया।

प्रत्येक को अपने युग और समय में बंगाल के सबसे बड़े नेताओं के रूप में पहचाना जाता था, प्रत्येक को बंगाल के अग्रणी चिंतकों और विचारकों के बीच गहन स्वीकृति प्राप्त थी, विशेष रूप से उन लोगों के बीच जिन्होंने बंगाली कल्पना और सांस्कृतिक आकांक्षाओं के निर्माण में कोई छोटा योगदान नहीं दिया। प्रत्येक ने भारत के राष्ट्रीय जीवन पर एक अमिट छाप छोड़ी। यह आकस्मिक या संयोगमात्र नहीं है कि अंततः श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने जिस राजनैतिक धारा, भारतीय जनसंघ, की स्थापना की, और जो दशकों में भारतीय जनता पार्टी के रूप में एक शक्तिशाली धारा बन गई, उसी राजनैतिक धारा ने नेताजी सुभाष चंद्र बोस की विरासत को भारत के राष्ट्रीय जीवन और लोकाचार में हमेशा के लिए फिर से स्थापित किया है। यहाँ तक कि अपनी विरासतों में भी प्रत्येक ने दूसरे को श्रद्धांजलि अर्पित की है। यह अभिसरण, यह तालमेल और आत्मसातीकरण ही है जो हमें प्रेरित करता है, और इसे भावी पीढ़ी के लिए अभिलेखित करके उन्हें सुनाया जाना चाहिए।

संदर्भ

1. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, लीव्ज फ्रॉम ए डायरी, नई दिल्लीः ऑक्सफोर्ड, 1993
2. श्यामा प्रसाद मुखोपाध्याय, राष्ट्र संग्राम ओ पंचशेर मन्नंतर (बंगाली), कोलकाताः मित्र ओ घोष, दूसरा पुनर्मुद्रण, 1421 (बंगाली युग)
3. श्यामा प्रसाद मुखर्जी, श्शुड बंगाल बी डिवाइडेड इंटू टू प्रॉविंसेज?श, 19 मार्च, 1947 को जारी वक्तव्य
4. प्रशांतो कुमार चटर्जी, श्यामा प्रसाद मुखर्जी ऐंड इंडियन पोलिटिक्स, नई दिल्लीः फाउंडेशन बुक्स, 2010
5. लियोनार्ड गॉर्डन, ब्रदर्स अगेंस्ट द राजः ए बायोग्राफी ऑफ इंडियन नेशनलिस्ट्सः शरत एंड सुभाष चंद्र बोस, नई दिल्लीः रूपा एंड कंपनी, (1990), चौथी प्रति, 2008
6. नबा कुमार अदक, श्यामा प्रसाद मुखर्जीः अ स्टडी ऑफ हिज रोल इन बंगाल पॉलिटिक्स (1929-1953), नई दिल्लीः कुणाल बुक्स, 2013
7. निखिलेस गुहा, डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जीः अपने समकालीनों की नजर में, कोलकाताः आशुतोष मेमोरियल इंस्टीट्यूट, अदिनांकित
8. स्वामी वेदानंद, श्री श्री जुगाचार्य जीवनचरित (बंगाली), कोलकाताः भारत सेवाश्रम संघ, 15वाँ पुनर्मुद्रण, 1426 (बंगाली युग)
9. सातोबारशेर, अलोय श्यामा प्रसाद (बंगाली), कोलकाताः डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी स्मारक समिति, 2002
10. चंदा पोद्दार, मोना सरकार, बॉबज्विकर संपादित, श्री अरबिंदो एंड द फ्रीडम ऑफ इंडिया, पुदुचेरीः श्री अरबिंदो आश्रम प्रकाशन विभाग, दूसरा संस्करण, 2012
11. अनिर्बान गांगुली, अवधेश कुमार सिंह संपादित, श्यामा प्रसाद मुखर्जीः हिज विजन ऑफ एजूकेशन, नई दिल्लीः विजडम ट्री और डॉ श्यामा प्रसाद मुखर्जी रिसर्च फाउंडेशन, 2017
12. सुनंदा सान्याल, सौम्या बसु, द सिकल एंड द क्रिसेंटः कम्युनिस्ट्स, मुस्लिम लीग एंड इंडियाज पार्टीशन, कोलकाताः फ्रंट पेज, 2011

नेताजी का सैन्याभियान

विनायक दामोदर सावरकर

10 और 11 मई 1952 को पूना में 'अभिनव भारत' परिपूर्ति समारोह संपन्न हुआ। देश के सभी जीवित क्रांतिकारियों का यहाँ समागम हुआ। इस समारोह में विनायक दामोदर सावरकर के तीन अद्‍भुत भाषण हुए, जो भारत के स्वातंत्र्य समर के इतिहास का समुचित बोध कराने वाले थे। दिनांक 11 मई को अपने तीसरे भाषण में उन्होंने नेताजी सुभाष चंद्र बोस के साथ हुए प्रसंग का विवेचन किया। उनके तीसरे भाषण का यह अंश 'मंथन' के इस अंक के लिए प्रासंगिक है, अतः वह यहाँ प्रस्तुत है:

संजोग से इसी अवसर पर तारीख 22 जून, 1940 के दिन तत्कालीन देश गौरव तथा वर्तमान नेताजी सुभाषचंद्र बोस अचानक 'सावरकर-सदन' में आकर मुझसे मिले। इस भेंट का वृत्तांत मेरे कुछ निकटवर्ती साथियों को ज्ञात था तथापि उसका प्रकट सभा में इस तरह उच्चारण मैं आज पहली बार ही कर रहा हूँ - वह भी हेतुपूर्वक और इस व्याख्यान के सूत्र तक सीमित तथा संक्षिप्त रूप में। सुभाष बाबू मुंबई में मुख्यतः हिंदू-मुसलमानों की एकता का प्रश्न नित्य के लिए सुलझाने आए थे। वृत्तपत्र में उस समय प्रयुक्त भाषा, जो मैंने पढ़ी, उसी में कहना हो तो जिन्ना को समझाने के लिए वे गांधीजी के भी चार कदम आगे जाने वाले थे।

इस वृत्तपत्र की भाषा पर वे स्वयं मुझसे ठहाका लगाते हुए कहने लगे - "अजी, अभी-अभी मैं जिन्ना से मिलकर आया हूँ। कैसे कहूँ भाई, मजे की बात जिन्ना ने मुझसे पूछा, "मि. सुभाष बाबू, पर आप किसकी ओर से यह समझौते की बातचीत करने आए हैं?" मैंने कहा, "कांग्रेस की ओर से"। इस पर जिन्ना ने कहा, "परंतु, आपको तो कांग्रेस ने बहिष्कृत किया है।" मैंने कहा, "परंतु फारवर्ड ब्लॉक का तो मैं अधिकृत नेता हूँ न! उनकी ओर से मैं बोल सकता हूँ।" इस पर जिन्ना ने कहा, "परंतु यदि आप मुझसे मुसलमानों के नेता के रूप में हिंदू-मुसलमानों के समझौते के लिए मिलना चाहते हैं तो उसी से बात करने में तुक है, जिसे हिंदुओं के प्रतिनिधित्व का अधिकार हो। क्या आपका फारवर्ड ब्लॉक अपने आपको हिंदू संस्था कहलवाता है?" "नहीं," मैंने कहा। "तो फिर एक हिंदू के रूप में मैं हिंदू-मुसलमान समझौते के विषय में बोलना चाहता हूँ।" उस पर जिन्ना ने कहा, "तो फिर आप पहले सावरकर से जाकर मिलें। वही हिंदुओं का प्रतिनिधित्वत कर सकते हैं। भाई, एक-एक व्यक्ति से चर्चा करने का क्या

फायदा? सावरकर आएँ तो हम कुछ चर्चा करेंगे।" तब मैं जिन्ना के घर से निकला और सीधा आपके पास आ गया।" इतना कहते हुए सुभाष बाबू हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए। फिर उन्होंने कहा, "वैसे भी अबकी बार मुझे आपके पास आना ही था।"

साहसी यत्नों के बिना स्वाधीनता-प्राप्ति असंभव

सुभाष बाबू द्वारा उठाए गए इस हिंदू-मुसलमान एका के मुख्य प्रश्न के विषय में मैंने चर्चा की, इसका इस व्याख्यान के विषय में उतना संबंध न होने के कारण तथा समयाभाव के कारण मैं उसे छोड़ देता हूँ। अन्य सभी चर्चा टालते हुए मैंने उनसे प्रमुख प्रश्न पूछा, "यह सब छोड़ दें। मुझे इतना बताइए कि वर्तमान महायुद्ध के संकट में हिंदुस्थान में रहकर हालवेल का पुतला कलकत्ता के मार्ग से उखाड़ने के आंदोलन जैसे सापेक्षतः तुच्छ आंदोलन के कारण ब्रिटिशों के बंदीगृह में जाकर सड़ते रहने में कुछ तुक है भला?" तब किंचित् निराशा भरे स्वर में सुभाष बाबू ने कहा, "जनता में कुछ भी करते हुए ब्रिटिशों के विरोध में प्रक्षोभ प्रज्वलित रखना होगा। अन्यथा क्या किया जाए?" मैंने कहा, "आपकी आस्था मैं समझ सकता हूँ। परंतु मैं पुनः

आपसे पूछता हूँ कि गवर्नर जनरल के साथ ये सत्ताधारी हजारों ब्रिटिश आततायी हिंदुस्थान में राज करते, हालवेल जैसे मृत ब्रिटिश प्रपीड़कों की प्रस्तर मूर्तियाँ स्थानांतरित करने में जिसका व्यय होता है, वह जनक्षोभ भी क्या निरर्थक नहीं है? तिस पर इसी कारणवश आप जैसे नेता का बंदीगृह में सड़ते रहना ठीक नहीं, जो शत्रु भी चाहता है? वास्तविक राजनीति वह है जो शत्रु को बंदीगृह में कैद करवाती है, न कि स्वयं बंद होना। देखिए, सुभाष बाबू, मैं आपसे स्पष्ट पूछता हूँ, आप सशस्त्र क्रांति कार्यों में सक्रिय न सही, तथापि उनसे संबंध रखते हैं। आप गोपनीयता रख सकते हैं। इससे पूर्व भी जब आप कांग्रेस के अध्यक्ष थे, आपकी और मेरी एक बार गोपनीय भेंट हुई थी। उतने ही विश्वास से तथा उसी सूत्र को पकड़कर मैं आपसे अनुरोध करना चाहता हूँ कि आजकल ब्रिटिश हिंदी सेना में अधिक-से-अधिक हिंदुओं की भरती करने के लिए हिंदू महासभा की ढाल के नीचे मैंने जो सैनिकीकरण का भारतव्यापी तथा अब प्रायः सफलता के पग चूमता हुआ आंदोलन छेड़ा है, वह मूलतः क्रांतिकारी आंदोलन है। मैं जानता हूँ कि आप उसके विरोध में प्रचार कर रहे हैं। आपने सोचा कि इस आंदोलन द्वारा मैं भी कांग्रेस के नरम पक्ष के अन्य नेताओं की तरह ब्रिटिशों की मनुष्य बल से सहायता कर रहा हूँ। परंतु वास्तविकता यह है, सुनिए, यहाँ पर मैंने प्रथम महायुद्ध में सशस्त्र क्रांतिकारियों द्वारा जर्मनी से की गई 'तुल्यारि मित्र संधि' तथा ब्रिटिश हिंदी सेना के उन हिंदी सैनिकों में से जो जर्मनी के हाथ लग गए थे -किस तरह क्रांतिसेना खड़ी की गई आदि प्रकरण की जानकारी दी, यह मैंने आज के और कल के व्याख्यानों में पहले ही संक्षेप में बताई है। मैंने आगे कहा, "रासबिहारी बोस का वह ताजा पत्र देखें। इससे दिखाई दे रहा है कि इस वर्ष के भीतर जापान युद्ध की घोषणा करेगा। यदि ऐसा हुआ तो अपने देश की स्वाधीनता के लिए जर्मनी, जापान के अत्याधुनिक शस्त्रों के साथ तथा लड़ाई में मुरब्बी बने हजारों हिंदी सैनिकों के साथ यह आक्रमण करने का स्वर्णावसर, जो अब तक कभी नहीं मिला था, अब साध्य होगा। ऐसे समय स्वदेश में अत्यंत क्षुद्र तथा झगड़ालू आंदोलन के कारण आप जैसे नेता को अपने आपको बलपूर्वक कैद करवाकर, बलपूर्वक बंदीगृह में बंद होकर सड़ते रहना बड़ा ही हानिकारक है। कांग्रेस अथवा उसके जैसे निःशस्त्र प्रतिकारवादी संस्था के किसी भी नेता के बजाय ब्रिटिश प्रशासन हमें ही प्रथमतः बंदी बनाने की ताक में है। ऐसे समय रासबिहारी जैसे अनेक सशस्त्र क्रांतिकारी नेता जिस प्रकार हिंदुस्थान से झाँसा देकर जापान, जर्मनी खिसक गए वैसे हम-आप भी तुरंत उन्हें चकमा देकर खिसक जाएँ। उधर इटली, जर्मनी के हाथों में पड़े हजारों हिंदी सैनिकों के नेता बनें। हिंदुस्थान की संपूर्ण स्वतंत्रता की घोषणा करें और जापान के युद्ध में कूदते ही जिस मार्ग से संभव हो उस मार्ग से बंगाल के उपसागर में या ब्रह्मदेश से हिंदुस्थान की ब्रिटिश सत्ता पर, बाहर से धावा बोल दें। इस तरह के कुछ सशस्त्र तथा साहसी पराक्रम के बिना हम हिंदुस्थान को स्वतंत्र नहीं कर सकते। इस तरह का पराक्रम तथा साहस करने के लिए जो दो-तीन लोग आज मुझे समर्थ दिखाई दे रहे हैं, उनमें एक आप हैं। तिस पर मेरी दृष्टि आप पर ही है।"

इतना कहकर मैं रुक गया। सुभाष बाबू सिर झुकाकर निस्तब्धता से नीचे देखते रहे जैसे कोई विचारों में खोकर नीचे टकटकी बाँधता है। यह दरशाने के लिए कि मेरी सूचना पर वे तुरंत हाँ या ना कहें, इस तरह मेरा कोई भी अनुरोध नहीं, मैंने बलात् विषयांतर करने के लिए उनके 'माय स्ट्रेंज इलनेस' शीर्षक लेख का विषय छेड़ा। परंतु वे स्वयं ही मुझसे कहने लगे, "अब मैं प्रथम कलकत्ता जाकर देखता हूँ, वहाँ क्या होता है, फिर मैं अपना अगला कार्यक्रम निश्चित करूँगा। इधर आया तो आपका दर्शन अवश्य करूँगा।" इस विषय पर इससे अधिक स्पष्टीकरण मैंने नहीं पूछा। न ही उन्होंने दिया।

थोड़े ही दिनों के पश्चात् सुभाष बाबू कलकत्ता गए और वहाँ पहुँचते ही पुतला कांड में पकड़कर उन्हें बंदी बनाया गया। यह घटना अपेक्षित ही थी।

कारावास में उनके मन में पनप रहे हिंदू-मुसलिम एका, हालवेल का पुतला आदि जो कुछ सापेक्षतः तुच्छ तथा निरर्थक कार्यक्रम थे, सबको झटककर बंदीवास से जैसे-तैसे छुटकारा पाकर जर्मनी, जापान की ओर खिसकने का साहस करने पर ही उन्होंने अपने सारे प्रयास केंद्रित किए - यह तो सभी प्रसिद्ध तथा सुप्रसिद्ध वृत्तों से उजागर हो गया है। उन्होंने बंदीवास में अन्न त्याग किया। ब्रिटिश प्रशासन की मानहानिकारक शर्तें मानकर भी अपना छुटकारा किया और इसके पश्चात् पुनः बंदीगृह में लौटने से पहले ही अत्यंत साहस, हिम्मत तथा कुशलतापूर्वक ब्रिटिश सत्ता को झाँसा देकर हिंदुस्थान से खिसक गए।

हिटलर, मुसोलिनी से संधि

जर्मनी पहुँचते ही सुभाष बाबू ने प्रकट रूप में हिटलर, मुसोलिनी के साथ तुल्यारि मित्र संधि करके ब्रिटिशों के विरोध में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम की घोषणा किस तरह की; इटली-जर्मनी के हाथों लगे हजारों ब्रिटिश हिंदी सैनिकों को जर्मनी के अत्याधुनिक शस्त्रास्त्रों से लैस करके किस

प्रकार भारतीय क्रांति सेना खड़ी की, जर्मन पनडुब्बी से वे जापान के जीते हुए सिंगापुर किस प्रकार पहुँचे, सिंगापुर से ब्रिटिश सेना के भाग जाने से वहाँ शेष बचे शस्त्रास्त्रों के अपार ब्रिटिश हिंदी सेना के संचय के साथ वहाँ के चालीस से पचास हजार हिंदी सेना के जापान के समर्थन से रासबिहारी बोस के नेतृत्व में हिंदुस्थान को मुक्त करने के लिए किस तरह क्रांति सेना खड़ी की और सुभाष बाबू के वहाँ पहुँचते ही उसी सेना के सर सेनापति बनकर उसी शस्त्रबल के आधार पर उन्होंने हिंदुस्थान की स्वतंत्रता की जागतिक घोषणा करके स्वतंत्र हिंदुस्थान का अस्थायी राज्य शासन किस तरह प्रस्थापित किया और सिंगापुर से 'चलो दिल्ली' की समरगर्जना करते हुए यह क्रांति सेना ब्रह्मदेश (अब म्यांमार) पार करते हुए असम के द्वार से सटकर ब्रिटिश सेना से रणक्षेत्र में किस तरह लड़ते रहे, यह सारा वृत्तांत हम सभी को कुछ अंशों में तो विदित हुआ ही है।

सैनिकीकरण से स्वतंत्र सेना को, सैनिक मिले

इस बीच यह जो पचास-साठ हजार की हिंदी सेना अत्याधुनिक शस्त्रास्त्रों के साथ सुभाषबाबू ने खड़ी की, वह इससे पूर्व ब्रिटिश सेना में हजारों हिंदू सैनिकों की भरती करने के हमारे सैनिकीकरण आंदोलन के कारण ही संभव हुआ। यह सुभाषबाबू ने स्वयं ही प्रकट रूप में घोषित किया। सिंगापुर में 'आजाद हिंद' -आकाशवाणी पर 25 जून, 1944 के दिन प्रक्षेपित किए गए भाषण में सुभाष बाबू ने कहा, "जहाँ एक तरफ कांग्रेस के प्राय: अदूरदर्शी नेता ब्रिटिश हिंदी सेना को केवल भाड़े के टट्टू तथा पेटपोसुए कहकर आते-जाते निंदा कर रहे हैं, एक उत्साहजनक बात यह है कि वीर सावरकर निर्भयतापूर्वक भारतीय युवकों को सशस्त्र सेना में प्रवेश करने के लिए सतत प्रोत्साहित कर रहे हैं। ब्रिटिश हिंदी सेना में प्रविष्ट इन्हीं हिंदी युवकों से आज हमारी हिंदी राष्ट्रीय सेना को, आजाद हिंद फौज को, समरकला में प्रवीण और मुरब्बी प्रशिक्षितों (Trained Men) का तथा सैनिकों का संभरण हो रहा है।"

बाहर से क्रांतिकारी

आजाद हिंद फौज के शस्त्र सज्जित सैनिकों के ब्रिटिशों पर आक्रमण करते ही हिंदुस्थान के भीतर भी नि:शस्त्रवादी तथा अहिंसक कहलाने वाले कांग्रेस ने नि:शस्त्र प्रतिकार का आक्रमण किया। 'क्विट इंडिया बट कीप योर आमी हियर' इस तरह प्रकट घोषणा की। ब्रिटिश लोगो, हिंदुस्थान छोड़ो परंतु सेना हिंदुस्थान में रखो!! कांग्रेस की यह घोषणा यद्यपि व्याघात का बढ़िया उदाहरण था तथापि सौभाग्य

आजाद हिंद फौज के शस्त्र सज्जित सैनिकों के ब्रिटिशों पर आक्रमण करते ही हिंदुस्थान के भीतर भी नि:शस्त्रवादी तथा अहिंसक कहलाने वाले कांग्रेस ने नि:शस्त्र प्रतिकार का आक्रमण किया। 'क्विट इंडिया बट कीप योर आर्मी हियर' इस तरह प्रकट घोषणा की। ब्रिटिश लोगो, हिंदुस्थान छोड़ो परंतु सेना हिंदुस्थान में रखो!! कांग्रेस की यह घोषणा यद्यपि व्याघात का बढ़िया उदाहरण था तथापि सौभाग्य से जनता ने उसमें से 'भारत छोड़ो' इतना पूर्वार्ध ही सुना तथा समझा। परंतु 'कीप योर आर्मी हियर' जैसा मूर्खतापूर्ण, नपुंसक उत्तरार्ध जनता ने सुना नहीं, समझा तो बिलकुल नहीं

से जनता ने उसमें से 'भारत छोड़ो' इतना पूर्वार्ध ही सुना तथा समझा। परंतु 'कीप योर आर्मी हियर' जैसा मूर्खतापूर्ण, नपुंसक उत्तरार्ध जनता ने सुना नहीं, समझा तो बिलकुल नहीं। 'क्विट इंडिया' के इस कांग्रेस आंदोलन ने भी देश भर में बड़ी खलबली मचाई। कांग्रेस के सैकड़ों देशभक्त नेता बंदी बन गए। उनके उस कार्य से संबंधित तथा कष्टों से संबंधित यथाप्रमाण आभार हैं ही। परंतु आप सभी को वह वृत्तांत ज्ञात है, अत: इस व्याख्यान में उसकी पुनरुक्ति न करते हुए इस 'क्विट इंडिया' आंदोलन से संबंधित जो बात कांग्रेसी लेखकों से, जो स्वयं को अहिंसक कहते हैं, जान-बूझकर उगली नहीं जाती, वही यहाँ ठोस शब्दों में कहता हूँ। बात यह है कि बंदी बनना, हड़ताल करना आदि केवल आत्मकेशी तथा नि:शस्त्र साधनों से उस आंदोलन को दबाने के लिए हिंदुस्थान के ब्रिटिश अधिकारियों का जो सशस्त्र अत्याचार कर रहे हैं, सामना करना तथा इस तरह परिणामकारक प्रतिकार करना कि ब्रिटिश सत्ता को झटका लगे, असंभव है। इस तरह सैकड़ों कांग्रेसी नेताओं के अनुभव करने से उन्होंने तथा उनके अनुयायियों ने अंत में सशस्त्र क्रांतिकारियों का मार्ग स्वीकार किया। उन्होंने तुरंत भूमिगत होकर गुप्त रूप से ब्रिटिश सरकार का सशस्त्र प्रतिकार करना शुरू किया और रक्तरंजित हंगामा खड़ा किया। अंत में नि:शस्त्रवादी कांग्रेस ही कुछ समय तक क्रांतिकारकों का मठ बन गई।

साभार: सावरकर समग्र, अष्टम खंड, भाषण 3, अभिनव भारत परिपूर्ति समारोह, पृ. 717 - 721

''पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विषय में जानकारियाँ बहुत ही सीमित हैं। डॉ. महेशचंद्र शर्मा ने इस विषय पर गवेषणात्मक अध्ययन किया है। इस शोध-ग्रंथ का प्रकाशन न केवल जनसंघ की राजनीति व विचारधारा के प्रति लोगों को लाभदायक जानकारियाँ देगा वरन् राजनीति शास्त्र की वैचारिक बहस को भी आगे बढ़ाएगा। दीनदयाल उपाध्याय व भारतीय जनसंघ को समझने के लिए यह शोध-ग्रंथ प्रामाणिक आधारभूमि प्रदान करता है।''

—**डॉ. इकबाल नारायण**

पूर्व कुलपति-राजस्थान विश्वविद्यालय,

काशी हिंदू विश्वविद्यालय तथा नॉर्थ-ईस्ट हिल्ज यूनिवर्सिटी,

पूर्व सदस्य-सचिव, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद्

''यदि मुझे दो दीनदयाल मिल जाएँ, तो मैं भारतीय राजनीति का नक्शा बदल दूँ।''

—**डॉ. श्यामा प्रसाद मुकर्जी**

पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तकें

ISBN 978-93-5186-262-8
₹ 500/-

प्रभात प्रकाशन
ISO 9001 : 2008 प्रकाशक
www.prabhatbooks.com

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार
डॉ. महेशचंद्र शर्मा

पं. दीनदयाल उपाध्याय
कर्तृत्व एवं विचार

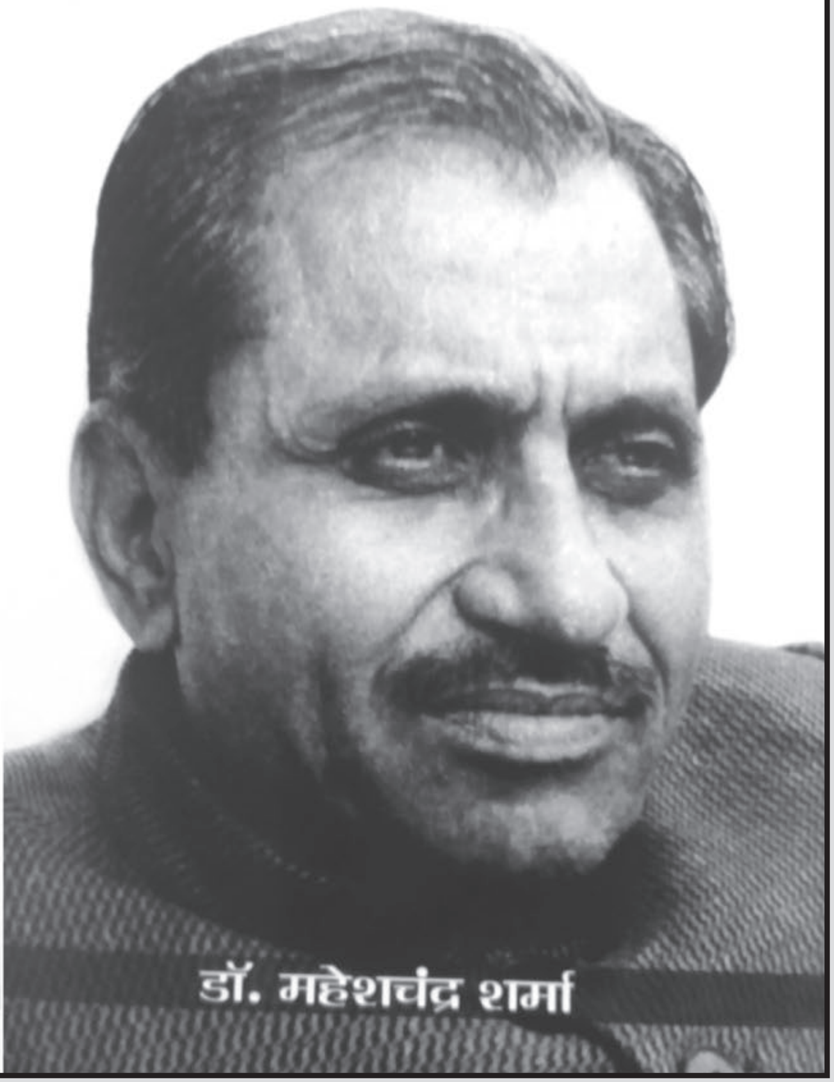

डॉ. महेशचंद्र शर्मा

मंथन

सामाजिक व अकादमिक सक्रियता का उपक्रम

'मंथन' की सदस्यता लें

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान से प्रकाशित शोध त्रैमासिक पत्रिका 'मंथन' की सदस्यता लें। भारत–विचार–दर्शन पर केंद्रित इस पत्रिका की सदस्यता के लिए व्यक्ति/संस्थान कृपया निम्न पते पर सूचित करें और शुल्क एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के नाम से स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, नई दिल्ली, एकाउंट नं. 10080533188, आईएफएससी–एसबीआईएन0006199 में जमा करें।

सदस्यता विवरण

नामः..

पताः ....

.... राज्यः .... पिनकोड : ....

लैंड लाइनः .... मोबाइलः (1).. (2)..

ई मेलः ....

जन–मार्च 2019 से पुनर्निधारित मूल्य

	भारत में	विदेश में
एक प्रति	₹ 200	US$ 9
वार्षिक	₹ 800	US$ 36
त्रिवार्षिक	₹ 2000	US$ 100
आजीवन	₹ 25,000	

प्रबंध संपादक

'मंथन' त्रैमासिक पत्रिका

एकात्म भवन, 37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली–110002

दूरभाष : +91-9868550000, 011-23210074

ई–मेल: info@manthandigital.com

The Planet

पर्यावरण के प्रति प्रतिबद्ध ओएनजीसी

We have been consciously working on a plan to save the only known home to life- Planet Earth. That is the reason you will find multiple initiatives by ONGC for a sustainable future.

ONGOING PROGRAMS

स्वच्छ विकास तंत्र परियोजना • वैश्विक मीथेन पहल • गैस फ्लेयरिंग में कमी • नवीकरणीय ऊर्जा • एलईडी कार्यक्रम • बारिश के पानी का संग्रहण • ग्रीन बिल्डिंग • कागज रहित कार्यालय

Clean Development Mechanism Projects • Global Methane Initiative • Reduction in Gas Flaring • Renewable Energy • LED Program • Rain Water Harvesting • Green Buildings • Paperless Offices

UPCOMING PROGRAMS

कार्बन तटस्थता • जल तटस्थता • कार्बन कैप्चर, उपयोग और भंडारण

Carbon Neutrality • Water Neutrality • Carbon Capture, Utilization and Storage

Oil and Natural Gas Corporation Limited

To know more about how we are leaving a greener footprint behind, please visit ongcindia.com

Regd. R.No. 32486/78 (Hindi)

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

सीएम राइज़ स्कूल
मध्यप्रदेश में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए अभिनव नवाचार

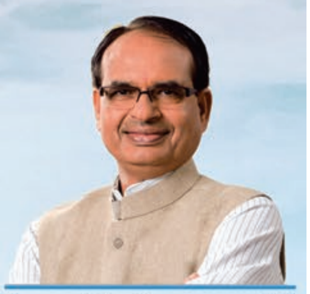

शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

सीएम राइज़ स्कूल :- भविष्य के लिए एक दूरदर्शी सोच - स्कूली शिक्षा में आधुनिकीकरण, नवीन संसाधनों का समावेश, बच्चों का सर्वांगीण विकास, स्कूलों की संरचना में व्यापक सुधार, बच्चों की शिक्षा एवं अन्य गतिविधियों में जागरुकता बढ़ाने के उद्देश्य से मध्यप्रदेश सरकार सर्वसुविधायुक्त सीएम राइज स्कूलों की स्थापना कर रही है।

"राज्य में उच्च गुणवत्ता के साथ परिणामोन्मुखी शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से सीएम राइज़ स्कूलों की स्थापना की जा रही है। इन स्कूलों का लक्ष्य विश्वस्तरीय शिक्षण विधियों द्वारा बच्चों के ज्ञान और कौशलवर्धन के साथ ही भारतीय परंपरागत मूल्यों, संस्कृति एवं नवाचारों को समावेशित कर बच्चों का सर्वांगीण विकास करना है।"

– शिवराज सिंह चौहान, मुख्यमंत्री

मुख्य विशेषताएं

- विश्वस्तरीय बुनियादी संरचना
- नर्सरी/केजी से 12वीं तक
- व्यावसायिक शिक्षायुक्त पाठ्यक्रम
- अभिभावकों की सहभागिता
- स्टाफ का क्षमता संवर्धन
- संसाधनयुक्त प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय और पाठ्येतर गतिविधियां
- शत-प्रतिशत शिक्षक एवं अन्य स्टाफ
- परिवहन सुविधा
- स्मार्ट कक्षाएं और डिजिटल लर्निंग
- 21वीं सदी के कौशल कार्यक्रम

सीएम राइज़ स्कूल होंगे 4 स्तरीय

- **52** जिला स्तरीय स्कूल
- **261** विकासखंड स्तरीय स्कूल
- **3,200** संकुल स्तरीय स्कूल
- **5,687** ग्राम समूह स्तरीय स्कूल

अन्य महत्वपूर्ण शैक्षणिक पहल

- **सुपर 100:** मेधावी छात्रों को उनके भविष्य के सपनों को साकार करने में सहायतार्थ निःशुल्क और उच्च गुणवत्तापूर्ण कोचिंग।
- **स्थानीय भाषाओं पर आधारित प्राथमिक पाठ्यक्रमः** स्थानीय भाषा में सहज-सरल और निर्बाध शिक्षण प्रणाली।
- **कक्षा 5वीं और 8वीं के छात्रों में सीखने की गुणवत्ता में सुधारः** वैज्ञानिक सर्वेक्षणों और छात्रों के लर्निंग डेटा के विस्तृत विश्लेषण द्वारा।

सर्वांगीण विकास के लिए अतिरिक्त प्रयास

अनुगूंज
कला के समावेश से शिक्षा को बढ़ावा देने में अग्रणी राज्य। यह कार्यक्रम बच्चों को अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करने का एक मंच प्रदान करता है।

उमंग
एक जीवन कौशल शिक्षा कार्यक्रम, जो स्वस्थ मानसिकता को बढ़ावा देने और सही दृष्टिकोण विकसित करने पर केंद्रित है, इससे बच्चों में निर्णय लेने की क्षमता का विकास होता है।

ईसीसीई प्रशिक्षण
आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं की क्षमता निर्माण हेतु राज्य स्तरीय प्रशिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण और डिजिटल मॉड्यूल द्वारा संचालित मिश्रित व्यक्तिगत प्रशिक्षण मॉडल।

मूलभूत साक्षरता का ज्ञान
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अनुसार तीसरी कक्षा तक सभी छात्रों में पढ़ने, लिखने और गणित में बुनियादी कौशल को विकसित करना।

D-16120/22